पुस्तक : कषाय-मुक्ति
(सुगम मोक्ष मार्ग)

लेखक : स्व. प्रतापचन्दजी भूरा

प्रकाशक : चैन रूप भूरा

प्रथम अनावरण : अगस्त, 2006

मुद्रक : सुराणा उद्योग, बीकानेर
0151-3630593, 2541207.

:: प्राप्ति स्थान ::
चैनरूप भूरा
ललवाणी मौहल्ला, नई लेन,
गंगाशहर (बीकानेर)
फोन : 0151-2272964

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति के विविध आयामों में कषाय मुक्ति के आयाम पर प्रबलतम बल दिया गया है। अनन्त की यात्रा में सांयन्त्रिक को प्रेरित किया है कि अगर तुम्हें जीवन को सर्वोपरि बनाना है तो सर्व प्रथम तू कषाय से विमुक्त बन। जब तक कषाय की शृंखला से आबद्ध है तब तक अपने मुख्य मुकाम अर्थात् लक्ष्य को साध नहीं सकता।

रामचरित्र मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसी ने भी क्या सटीक कहा है कि–

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण इक मंत्र है, परिहर वचन कठोर।।

संसार एक अजायबघर है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग रहते हैं। वे अपनी वृत्ति/व्यवहार के द्वारा सुख-दुःख की परिणति को प्राप्त करते हैं। यदि इन काषायिक वृत्तियों का परिहार करदे तो व्यक्ति स्वर्गिक छटा से अनुप्राणित होकर अपने गन्तव्य तक पहुँचने में सफल हो सकता है।

आगम में कषाय के विषय में विश्लेषण करते हुए बताया है कि देशोन कोटि (करोड़ वर्ष) पर्यन्त की गई तपश्चरण रूप क्रिया व चरित्र का जिस रूप में उपार्जन किया वह एक मुहूर्त काल तक की गई कषाय से नष्ट हो जाती है। इसलिए वैयक्तिक जीवन में काषायिक परिणति से दूर रहना चाहिए।

सदा समभाव की अवस्था में विचरण करते हुए लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा गया है कि–

प्रथमे यः शान्तः, ते शान्तः मे मतिः।
धातुक्षीयमानेषु शान्तः को न जायते।।

इन पुस्तकों में इन अवगुणों को छोड़ने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से साधना करने की विधियों पर प्रकाश डाला गया है। जैनागमों में स्वाध्याय-तप में विविधता को बहुत महत्त्व दिया गया है। अतः पुस्तक में कुछ बातों की विविधता दृष्गिगोचर हो रही है जो कि साधना का एक अंग है।

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्दजी सा. भूरा ने इन पुस्तकों को स्वयं जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर लिखा है, अतः ये आत्मा को छूती हैं। इनको पढ़ना, इनका स्वाध्याय करना और जीवन की प्रवृत्तियों में इनका समायोजन करना कर्मों के नाश में प्रबल सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीड़ित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तकों की महती आवश्यकता भी है जो अवगुणों को दूर करने एवं मानसिक तनाव को हटाने में अपनी अहं भूमिका अदा कर सकती हैं।

इन पुस्तकों की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमें से "समता-जीवन", "ध्यान एक अनुशीलन", "कषाय मुक्ति" पहला भाग और "कषाय मुक्ति" दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा के पाठ्यक्रम में समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणों से मुक्त होने के लिए क्षमा, विनय, सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति की पुस्तकों को केवल पढ़ना ही काफी नहीं है, किन्तु इन पुस्तकों का क्रमशः कुछ महीनों तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठकों की सुविधा के लिए समग्र पुस्तकों की सामग्री इसी एक पुस्तक में समाहित करदी गई है।

विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक "समता आचरण" के उच्च शिखर की ओर बढ़ाने के लिए स्फटिक-सोपानों की भाँति "कषाय-मुक्ति" का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी में भी कहा है—

कसिणा कसाया सिंचन्ति, जीवस्स पुणब्भवस्स।—उत्तराध्ययन चूर्णी

कषाय ही हमारे पूर्व भवों के आधार पर आगामी जन्मों की श्रृंखला तैयार करते हैं। अतः इनका परित्याग कर हम सिद्धि सौध को प्राप्त करें, यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुज्ञ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

दिनांक : 05-08-2006 — मेघराज बोथरा

बोथरा चौक, गंगाशहर

प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक और साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के संयोजक/पंजीयक स्व. प्रतापचन्दजी भूरा की इन कृतियों/पुस्तकों का संग्रह है–कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुबोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एवं चौथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पाँचवाँ भाग (स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवाँ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवाँ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवाँ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि में), दसवाँ भाग (अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा) ग्यारहवाँ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवाँ भाग (कषाय व मोह छोड़ने के उपाय) एवं ध्यान एक अनुशीलन।

पुस्तकें सर्वसाधारण पाठकों द्वारा उपयोगी समझी गई हैं व इनकी माँग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावकों तथा श्री साधुमार्गी जैन संघ गंगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है–प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, मई 1984, प्रति 2100; द्वितीय संस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200; द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, 1986, प्रति 2000; द्वितीय संस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200; तीसरा भाग, प्रथम संस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000; चौथा भाग, प्रथम संस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500; पाँचवाँ भाग, प्रथम संस्करण, जून 1989, प्रति 2500; छठा भाग, प्रथम संस्करण; सातवाँ भाग, प्रथम संस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000; आठवाँ भाग, प्रथम संस्करण; संयुक्त 4 से 8 भाग, संवत् 2049; नौवाँ भाग, प्रथम संस्करण; दसवाँ भाग, प्रथम संस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000; ग्यारहवाँ भाग, प्रथम संस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500; बारहवाँ भाग; संयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम संस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100; ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम संस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एवं मातुश्री की पुण्य स्मृति में कराया जा रहा है।

–चैनरूप भूरा

धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री प्रतापचंदजी भूरा
परिचय

जन्म स्थान	:	देशनोक
जन्म	:	विक्रम संवत् 1962
पिता	:	श्री सदासुखजी भूरा
माता	:	वृद्धिदेवी
दादा	:	श्री चौथमलजी भूरा
श्वसुर	:	श्री सेंसमलजी कोचर (मेहता), सोजत सिटी
धर्म पत्नी	:	स्व. नेमकंवर
शैक्षणिक योग्यता	:	Intermediate from Board of High School & Intermediate Education, United Provinces, Allahabad in 1928.
	:	B.A. from Agra.
	:	B.T. from Banaras Hindu University, Banarsa.
स्कूल काल की उपलब्धियाँ	:	करणी हाई स्कूल, देशनोक छात्र संघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया।
धार्मिक एवं सामाजिक उपलब्धियाँ	:	अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ द्वारा संचालित साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के संयोजक/पंजीयक के पद पर लम्बे समय तक अपनी सेवाएँ दी।
	:	श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर-गंगाशहर के मंत्री/उपमंत्री 1970 से 1986 तक।
		21-10-1984 से 06-09-1986 तक
		साधुमार्गी जैन संघ गंगाशहर-भीनासर के मंत्री 2019 से 2038 तक
		स्थानीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर, गंगाशहर-भीनासर द्वारा सम्मानित।

कषाय मुक्ति : समता आचरण

सुबोध मोक्ष – मार्ग

प्रथम भाग

1. अहंकार

आचार्यश्री नानालालजी म. सा. का श्रमणोपासक 10 जनवरी 1984 पृष्ठ नव पर कथन है–"समता भावना पाने के लिये सर्व प्रथम अहमत्व और ममत्व विसर्जन करना आवश्यक है।"

प्राणी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के उत्थान में अहंकार सबसे बाधक तत्त्व है। 1. अहंकार शराब की तरह मनुष्य को पागल जैसा बना देता है। शराब पीने से नशा आता है किन्तु अहंकार से तो वैसे ही चौबीसों घंटे नशा रहता है। अहंकार से मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। उसे अच्छे और बुरे का भेद दीखना बंद हो जाता है। वह गलत निर्णय पर पहुँच जाता है और गलत काम कर डालता है। ऐसे कामों के लिये उसे बाद में बहुत पछताना पड़ता है। 2. अहंकार से मित्रों की संख्या घट जाती है और शत्रुओं की संख्या बढ़ जाती है। दूसरे लोग उससे भीतर ही भीतर घृणा करने लगते हैं और उसे नीचा दिखाने की ताक में रहते हैं। मौका मिलने पर लोग अभिमानी का आर्थिक नुकसान भी करते हैं। 3. अहंकारी सभी को अप्रिय लगता है। उसे कोई मन से सहयोग देना नहीं चाहता। 4. अहंकार से अशुभ कर्मों का आगमन और बंधन होता है। 5. अहंकार से दान, शील, तप आदि अच्छी करणी का फल भी प्रायः निरर्थक-सा बन जाता है।

दूसरों को मूर्ख समझने वाला और स्वयं की बुद्धि का अभिमान करने वाला तन्दुल मत्स्य सातवें नरक में जाता है। वह सोचता है–"यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को बाहर नहीं जाने देता। सभी को निगल जाता।" अभिमान में की हुई भाव हिंसा से वह महा भयंकर अशुभ कर्मों का बंध करके सातवें नरक जाता है। अहंकार सभी बुराइयों की जड़ है।

बोध धर्म में अस्मिता-अभिनिवेश अर्थात् अहंकार को कर्मों के बंध का कारण माना गया है। जब भारत से धर्मबोधि नामक बौद्ध भिक्षु चीन गये तब

वहाँ के सम्राट बु ने उनका बड़ा सम्मान किया और पूछा–"मैंने भगवान बुद्ध के हजारों मंदिर बनवाये हैं उनकी लाखों मूर्तियाँ बनवाई हैं। मैंने बौद्ध धर्म के हजारों ग्रंथ लिखवाये हैं। मैंने घर-घर प्रचारक भेजकर बौद्धधर्म का बहुत प्रचार कराया है। मैंने हजारों बौद्ध भिक्षुओं को भोजन कराया है। मुझे इसका क्या फल मिलेगा ?" सम्राट बु सोचता था कि मुझे महान फल की प्राप्ति होगी। किन्तु उत्तर सुनकर उसे बहुत निराशा हुई।

बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने कहा–"सम्राट ! इससे तुम्हारा कुछ भी आत्म-कल्याण नहीं होगा।" इससे तुम्हारे अहंकार की पुष्टि और तुष्टि हुई है। संसार में अहंकार ही सब से बड़ा पाप है और अहंकार-शून्यता ही सब से बड़ा धर्म है।"

अहंकार करने वाला प्रायः सोचा करता है–1. मैं जो सोचता हूँ वह ठीक है। 2. मैं जो कहता हूँ वह सही है। 3. मैं जो करता हूँ वह अच्छा है। 4. मैं बुद्धिमान हूँ। 5. मैं दूसरों से अच्छा हूँ। 6. मैं बड़ा आदमी हूँ। 7. लोग मेरे जैसे बनें। ऐसे लोग तलवार के बल पर भी दूसरों को अपने जैसा धार्मिक बनाने की कोशिश करते हैं।

अहंकार कई रूपों में प्रकट होता है। कुछ लोग छोटी-छोटी बातों को अपनी इज्जत का प्रश्न बना कर अकड़ जाते हैं और व्यर्थ ही वातावरण को अशांत बना कर तनावग्रस्त हो जाते हैं। कुछ लोग शाहबलूत के पेड़ की तरह अकड़ जाते हैं। चाहे वे सामने वाले लोगों के विरोध में टूट जावें लेकिन वे झुकते नहीं। कुछ लोग कूप में रहने वाले घमंडी मेंढ़क की तरह अपने को बैल से भी बड़ा दिखाने के लिये फूल-फूलकर फट जाते हैं। कुछ लोग मूर्ख कौवे की भाँति चालाक लोमड़ी जैसे लोगों की बातों में आकर अपने मुँह की रोटी भी खो देते हैं। अपनी बड़ाई सुनने का इच्छुक प्राणी प्रायः दूसरों से ठगा जाता है।

कुछ अपवादों को छोड़कर धनिकों को धन का, सत्ताधारियों को अपनी सत्ता का, विद्वानों को अपनी विद्या का, वक्ताओं को अपने भाषणों का, लेखकों को अपने लेखों का, गायकों को अपने गाने का और धार्मिक पुरुषों को अपनी धार्मिक क्रिया का अहंकार प्रायः हो ही जाया करता है। किन्तु जिन त्यागी महात्माओं ने अपनी आत्म-साधना के लिये अपना धन, परिवार, सुख और सब कुछ छोड़ दिया है उन्हें तो अहंकार के प्रति सतत जागरूक रहना चाहिये। ऐसा नहीं हो कि अहंकार के कारण अपनी साधना के मूल उद्देश्य से वे भटक जावें। संत चाहे कितना ही बड़ा, ज्ञानी और तपस्वी हो,

उनकी क्रिया भी कितनी ही कठिन और उच्च हो, किन्तु जरासी असावधानी होने पर अहंकार से उनका सारा तप और धार्मिक क्रियाएँ मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्रायः निरर्थक-सी बन जाती है।

मनुष्य को सबसे बड़ा अहंकार अपनी बुद्धि का होता है। मूर्ख, अशिक्षित, अज्ञानी, दीन और भिखारी भी अपनी बुद्धि को सबसे बड़ी मानता है। किसी प्राणी को अपनी बुद्धि का अंत नहीं दीखता। यह मनुष्य का स्वभाव-सा बन गया है कि वह प्रायः दूसरों के कार्यों में त्रुटियाँ देखता रहता है। इससे उसके अहंकार की वृद्धि होती रहती है। जो प्राणी दूसरों में गुण देखने की कोशिश करता है वह अहंकार से बच जाता है और विनय गुण को प्राप्त करता है।

अहंकार जब उग्ररूप धारण करता है तो वह क्रोध के रूप में प्रकट होता है। वह लड़ाई-भगड़े और विनाश का कारण बन जाता है। बड़े-बड़े विश्व युद्ध भी अहंकार की प्रेरणा से होते हैं।

अहंकार मनुष्य की आँखों में, चेहरे पर, चाल में, बोली में, भाषण में, कामों में, पोशाक में और प्रायः प्रत्येक क्रिया में प्रकट होता रहता है। अहंकारी प्रायः सबसे आगे ऊँचे आसन पर बैठता है। भीड़ में वह सबके बीच में मुखिया बनता है। उसके मुँह से प्रायः अपनी प्रशंसा की बातें निकला करती है। उसके वाक्यों में 'मैं, मैंने, मुझे, मेरे द्वारा' आदि शब्द निकलते रहते हैं।

निरभिमानी व्यक्ति किनारे दूर क़ोने में रहता है। वह बहुत कम बोलता है। वह स्वयं को बड़ा नहीं बताता किन्तु हर काम का श्रेय दूसरों को देता है। उसकी बोली मधुर और प्रिय लगती है। उसकी बात सुनने से सुनने वालों को प्रसन्नता और शांति मिलती है।

अहंकार सब दुर्गुणों का मूल है। अहंकार छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। अहंकार छूटने के ये उपाय हैं–

अहंकार से होने वाली हानि का बार-बार प्रतिदिन अध्ययन और चिंतन किया जाय।

अपने अवगुणों की सूची बनावें, उनके लिये मन में पश्चात्ताप करें, उन्हें छोड़ने का संकल्प और प्रयास करें।

अपने से ऊपर बड़ों के गुण देखे जावें और उनसे अपनी तुलना की जावे। क्या मेरे पास शालिभद्रजी के बराबर धन, अभयकुमारजी के बराबर बुद्धि, गौतम स्वामी के बराबर ज्ञान है ? क्या मैं राजा हरिशचन्द्र जैसा दानी

या धन्ना मुनि जैसा तपस्वी या मुनि गजसुकुमाल जैसा समतामय हूँ। यदि नहीं हूँ तो फिर अहंकार किस बात का ?

सतत जागरूकता रखी जाय। मिनट-मिनट में सोचिये कि मेरे विचारों, बोली या कामों में कहीं अहंकार तो नहीं आ गया है ?

2. ममत्व

अहंकार के समान ही प्राणी का दूसरा प्रबल शत्रु है—ममत्व। ममता से कर्मों का बंधन होता है और समता से उनका क्षय होता है। प्राणी ममत्व भाव के कारण ही संसार में बंधा हुआ है। चवदह पूर्व के ज्ञान को धारण करने वाले, केवली तुल्य माने जाने वाले श्री गौतम स्वामी के केवलज्ञान की प्राप्ति में बाधक था केवल भगवान महावीर के देह के प्रति उनका प्रशस्त राग। वह राग भी अप्रशस्त नहीं था, फिर भी बाधक बना रहा। उसके दूर होते ही उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हो गई। प्रातः स्मरणीय मरुदेवी माता ने कोई व्रत धारण नहीं किया था। उन्होंने कुछ भी त्याग प्रत्याख्यान नहीं किये थे, सामायिक या नवकारसी भी नहीं की थी, फिर भी हाथी के ऊपर ही गृहस्थ वेश में बैठे हुए भी पुत्र-मोह के समाप्त होते ही उन्हें केवलज्ञान और परमात्म-पद की प्राप्ति हो गई थी।

परिवार या सम्पत्ति के मोह में बंधा हुआ प्राणी अनेक बार मरने के बाद वहीं सर्प, बिच्छु, भैंसा, बैल, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, मेंढ़क, छिपकली, कौवा आदि बनकर चक्कर काटता हैं और दुर्गति में जाता है।

ममत्व या राग से मुक्त होने के लिये तीन प्रकार की विचार-धाराओं में गहराई से उतरना चाहिये। प्रथम—सब प्राणी अलग-अलग हैं, एक दूसरे से पूर्णतः स्वतंत्र हैं। दूसरी—परिवार किसी को कर्म-दंड से बचा नहीं सकता। तीसरी—परिवार वालों से जैसा लेना-देना बाकी है वैसा ही बंध, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बनता है।

जीवन भर ममत्व-त्याग का उपदेश देने वाले संत महात्मा और चवदह पूर्व के ज्ञान के धारक गणधर गौतम जैसे ज्ञानी पुरुष भी समय पर राग में प्रवाहित हो जाते हैं। अतः ममत्व त्याग के लिये उपर्युक्त विचार-धाराओं का अधिक चौबीसों घंटे चिंतन-मनन करना आवश्यक है।

प्रथम विचार-धारा—निगोद के जीव इतने नजदीक-नजदीक हैं कि उनके एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव हैं जो एक साथ सांस लेते हैं, एक साथ भोजन ग्रहण करते हैं, एक साथ जन्म लेते हैं और एक ही साथ मरते हैं। फिर भी उन सभी के परिणमन अलग-अलग हैं, उनके मन के

परिणाम भी अलग-अलग हैं। वे मरने के बाद सब साथ नहीं रहते। कुछ वहीं रह जाते हैं, कुछ तिर्यंच बन जाते हैं, कुछ मनुष्य बन जाते हैं। वे सब अलग-अलग हो जाते हैं। वास्तव में सभी जीव अलग-अलग हैं, सब स्वतंत्र हैं, एक दूसरे से पृथक् हैं। कोई किसी का हमेशा का साथी नहीं है।

हम मानव तो बहुत विकसित प्राणी हैं। हमारे सबके पौद्गलिक शरीर भी अलग-अलग हैं, कार्मण शरीर भी अलग-अलग हैं, हमारे विचार, हमारे स्वार्थ, जीवन पथ, करणी, मन के परिणाम, हमारे पिछले जन्मों के स्थान जहाँ से हम आये हैं और भविष्य के जन्मों के स्थान जहाँ हमें इस देह को छोड़ कर जाना है वे सभी अलग-अलग हैं, हर दृष्टि से हम लोग अलग-अलग हैं। कोई किसी का आश्रित नहीं है, किसी का स्थायी साथी नहीं है।

परिवार में कोई किसी का 'अपना' नहीं है। भाई-भाई, पिता-पुत्र, यहाँ तक कि पति-पत्नी में भी अनेक बार अपने-अपने विचारों और स्वार्थ भेद के कारण भयंकर झगड़े और अलगाव पैदा हो जाते हैं। सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पांडव, सुन्द-उपसुन्द भाई-भाई ही तो थे। उग्रसेन-कंस, श्रेणिक-कोणिक, हिरण्यकश्यप-प्रह्लाद, शाहजहां-औरंगजेब पिता पुत्र ही तो थे। राजा प्रदेशी और सूरिकता पति-पत्नी ही तो थे। व्यवहार में परिवार परिवार दीखता है किन्तु निश्चय में कोई किसी का नहीं है। आप हमेशा चिंतन करते रहिये–

सब अलग अलग, सब अलग अलग।

सब अलग-अलग की भावना को दोहराने के साथ-साथ स्वयं को दूसरों से और दूसरों को स्वयं से अलग होने की स्थिति में देखने और अनुभव करने का अभ्यास भी करना आवश्यक है। इस सिद्धांत को अपने जीवन की सत्य घटनाओं में घटित हुए रूप में देखिये। सोचिये कि अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे संबंधी हैं। मैंने उनके साथ अनेक बार अलग-अलग होने का व्यवहार किया है। मैंने उनका 'अपना' होकर कभी उनको सहयोग नहीं दिया। हम निश्चय दृष्टि से तो अलग-अलग ही हैं किन्तु व्यवहार में भी अलग-अलग हैं। इस प्रकार की सत्य घटनाओं के चिंतन से ममत्व तोड़ने की साधना में सफलता मिलेगी।

दूसरी विचार-धारा–कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग हैं। सब अपने-अपने कर्मों का फल स्वयं ही अलग-अलग भोगते हैं। हमारे कष्ट के समय दूसरे प्राणी–माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री, पत्नी–सब

असहाय होकर केवल देखते रहते हैं। कर्मों के कठोर फल को भोगते हुए प्राणी को परिवार कर्म-दंड से नहीं बचा सकता। वह उसके अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकता, उसके दुःख दर्द को दूर नहीं कर सकता, उसका नाथ नहीं बन सकता, उसको शरण नहीं दे सकता, शरीर छोड़ कर जाते हुए को रोक नहीं सकता। प्राणी के अशुभ कर्मोदय के समय उसका परिवार उसे अधिकतम सहयोग देने की उत्कट भावना रखते हुए भी उसको सहयोग नहीं दे सकता। कर्मों की प्रेरणा वश सभी उससे अलग हो जाते हैं। अतः कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग हैं। अतः चिंतन का सूत्र है–

परिवार किसी को कर्म-दंड से नहीं बचा सकता।

तीसरी विचार-धारा कहती है–'कर्ज पुराना पड़ा हुआ है, इसी हेतु परिवार बना है। कुछ लेने कुछ देने आये, किन्तु मोह में सब भरमाये।'

परिवार प्राणियों के अस्थायी मिलाप की एक ऐसी संस्था है जहाँ प्राणी अपने पूर्व जन्मों के अपने हित या अहित में निमित्त बनने वालों के साथ, राग या द्वेष के सम्बन्ध में जुड़कर उनके हित या अहित में निमित्त बनने के लिए, व्यवहार में अपने साथ किये गये उपकारों या अपकारों का बदला देने या लेने के लिए, मित्र या शत्रु भाव से पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पिता, स्वामी-सेवक या अन्य किसी का रूप लेकर, अपने कर्मों से नियत समय पर, नियत समय (आयु) के लिए, परिवार में आते हैं और अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हुए, परिवार के हित या अहित में निमित्त बनते हुए, राग या द्वेष से नवीन कर्मों का बंध करते हुए, अथवा निस्वार्थ, निष्काम समता भाव एवं आत्म-भाव से सबकी सम्यक् आत्म-सेवा को अपनी ऋण-मुक्ति का कार्य मानकर उसे करते हुए, अपने कर्मों का क्षय करते हुए चले जाते हैं। संक्षेप में परिवार में अपना-अपना पुराना लेना-देना लिया दिया जाता है। वहाँ एक दूसरे के प्रति राग-द्वेष करने का कोई कारण नहीं है।

परिवार के या बाहर के अपने संपर्क में आने वाले किसी प्राणी के साथ हमारा उपकार या अपकार का बदला या सुख दुःख का पुराना लेना या देना जैसा बाकी है उसे लेने या देने के लिये कर्मों की प्रेरणा से वैसा ही कर्मों का बंध, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बन जाता है। यदि पूर्व जन्मों का राग और प्रेम पूर्वक कुछ लेना बाकी है तो लेने वाला पुत्र, पुत्री, जंवाई या मित्र बनकर या गोद आकर या अन्य किसी रूप में आकर

अपना लेना ले लेता है। यदि द्वेष से या दुःख देकर लेना बाकी है तो वह चोरी करके, डाका डालकर, या व्यापार में धोखा देकर या रिश्वत से अपना लेना ले लेता है और जिससे लेता है उसे दुःखी भी बना देता है। इसी प्रकार देने वाला भैंसा या बैल बनकर या नौकर बनकर भी अपना देना चुकाता है। यह लेना देना कर्मोदय के अनुसार सुख या दुःख के रूप में लेना-देना पड़ता है। यह छूटता नहीं है। इस लेन-देन में समता रखने वाला कर्मों की निर्जरा कर लेता है और राग-द्वेष और आर्तध्यान, रौद्रध्यान करने वाला नवीन कर्मों का बंधन कर लेता है।

जैसा लेना वैसा योग।
वैसा बंधन वैसा भोग।

चिंतन का सूत्र–परिवार में कर्ज चुकाया जाता है। वहाँ कोई किसी का 'अपना' नहीं है। सब अलग-अलग हैं।

आत्मोन्नति चाहने वाले प्राणी को निश्चय के साथ-साथ व्यवहार दृष्टि पर भी ध्यान देना चाहिये।

निश्चय दृष्टि चित्त धरी, पाले जे व्यवहार।
पुण्यवंत ते पामशे, भव सागर नो पार।

निश्चय दृष्टि से कोई किसी का अपना नहीं है। सब प्राणी अलग-अलग हैं किन्तु व्यवहार दृष्टि कहती है कि जब तक हम गृहस्थ हैं, परिवार में साथ-साथ रहते हैं, तब तक एक दूसरे के हित में निमित्त बनना हमारा कर्तव्य है। यह व्यवहार है, यह नीति है और यह आत्म-धर्म भी है। परिवार में साथ-साथ रह कर भी ममत्व-शून्यता का बहाना करके अपने परिवार वालों की उचित सेवा नहीं करना, उनको सम्यक् सहयोग नहीं देना, उन्हें निराश करना, धोखा है, हिंसा है, पाप है।

ममत्व-शून्यता का यह अर्थ नहीं है कि हम परिवार में रहकर परिवार की सेवा नहीं करें। परिवार पर मोह नहीं रख कर सबको आत्मा, मात्र आत्मा मान कर उनकी आवश्यक उचित सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और गृह त्याग के बाद सारे समाज और प्राणी मात्र की आत्म-सेवा करना प्रत्येक त्यागी संत महात्मा का कर्तव्य है। तीर्थंकरों ने भी समाज की आत्म-सेवा हित साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका–इन चार तीर्थों की स्थापना की है और उन्हें दिव्य आत्मोपदेश देकर अपने कर्तव्य का पालन किया है।

दूसरों की सेवा करने वाला व्यवहार में तो दूसरों की सेवा करता हुआ दीखता है किन्तु निश्चय दृष्टि में तो वह दूसरों की सेवा नहीं किन्तु

स्वयं की ही सेवा कर रहा है। अपने लिये ही अच्छी करणी कर रहा है। उसका अच्छा फल उसे ही मिलेगा। किसी को 'अपना' मत समझो, किन्तु आत्मा समझकर उसकी सम्यक् सेवा करो।

साधना का तरीका—साधनाएँ अनेक प्रकार की होती हैं और अनेक प्रकार से की जाती हैं। किन्तु इसमें मूल रूप में दो ही बातें हैं। प्रथम है—चित्त की अधिक से अधिक एकाग्रता और दूसरी है—साधना में अधिक से अधिक समय लगाना। चित्त की एकाग्रता बनती है कुछ दिनों तक अभ्यास करने से, प्रतिदिन नियमित समय पर साधना करने से, एकांत स्थान में शांत वातावरण में बैठकर चिंतन करने से। कमजोर या बीमार पुरुष लेट कर भी चिंतन-मनन और ध्यान कर सकता है। समय की दृष्टि से सभी समय इस कार्य के लिये उपयुक्त है किन्तु रात्रि को सोते समय और प्रातः उठते ही उषाकाल में चित्त अधिक शांत रहता है अतः ये दोनों समय अधिक उपयुक्त है।

कुछ लोग आधी रात का समय भी उपयुक्त बताते हैं। कुछ साधक दिन रात्रि का संधि-काल अर्थात् सूर्यास्त और सूर्योदय को साधना करने का अच्छा समय बताते हैं। किन्तु ममत्व शून्यता की स्थिति प्राप्त करने के लिये नियमित समय के अलावा दूसरा समय भी इस कार्य में लगाना आवश्यक है। अतः इस चिंतन के लिये तो सभी समय उपयुक्त है। यह चिंतन-मनन, ध्यान, जप चौबीसों घंटे चलते रहना चाहिये। चिंतन घर में, दुकान में, बिस्तर पर लेटे समय भी किया जा सकता है।

कहा जाता है—"सौ बार दोहराने से ज्ञान आता है। हजार बार दोहराने से वह स्थिर होता है। हजार गुणा हजार अर्थात् दस लाख बार दोहराने से वह जन्म-जन्मांतर के लिये स्थायी बन जाता है।" जितना अधिक चिंतन-मनन होगा उतनी ही शीघ्र सफलता मिलेगी। बार-बार दोहराने से वह अचेतन मन में उतर कर स्थायी भाव बन कर आचरण का अंग बन सकेगा।

3. शत्रुत्व—

किसी प्राणी को अपना शत्रु समझना भूल है। कोई भी प्राणी आपके कर्मों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। आपके अशुभ कर्मोदय के बिना कोई अन्य प्राणी आपके दुःख में निमित्त नहीं बन सकता। आपको यदि दुःख मिल रहा है तो वह आपके स्वयंकृत अशुभ कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो मात्र निमित्त बन सकता है, उसे शत्रु मानना भूल है।

अशुभ कर्मोदय से एक प्राणी पत्थर के ऊपर गिर जाता है, उसका पैर टूट जाता है। वह किसे शत्रु माने ? कैंसर होने से किस पर क्रोध किया जावे ? व्यापार में धन चला जावे या आग में सारी सम्पत्ति जल जावे तो किसे शत्रु माना जावे ? वास्तव में कोई किसी का शत्रु नहीं है। यह तो स्वयंकृत अशुभ कर्मों का दंड है जिसके फल-भोग से तीर्थंकर भी नहीं बच पाते।

भगवान महावीर ने अपने कानों में कील ठोकने वाले को शत्रु नहीं माना। मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल को उपकारी माना। व्यवहार से शत्रु दीखने वाले पर हमें क्षमा भाव रखना चाहिये। कहा जाता है "66 क्रोड़ मास खमण के तप से भी क्षमा बड़ी है।" किसी ने कहा है–"क्षमा मर्त्यलोक से मोक्ष जाने का पुल है।"

शत्रुत्व का, द्वेष भावना का क्षय करने के लिये कुछ महीनों तक मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कन्दक, मुनि अर्जुनमाली आदि की अद्भुत क्षमा एवं समता का गुण-गान और ध्यान कीजिये। इससे आपको अपूर्व शांति मिलेगी और आप स्वयं किसी दिन मुनि गजसुकुमाल बन सकेंगे। बार-बार चिंतन-मनन कीजिये–

शत्रु नहीं कोई शत्रु नहीं है।
शत्रु नहीं है, शत्रु नहीं है।।

4. मुनि गजसुकुमाल का चिंतन

मुनि गजसुकुमाल अपने बड़े भाई महाराज श्रीकृष्ण के साथ हाथी पर बैठकर भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने गये। राह में सोमिल ब्राह्मण की पुत्री, अद्वितीय सुन्दरी, रमणिरत्न सोमा को देखकर, गजसुकुमाल के सर्वथा योग्य समझकर महाराज श्रीकृष्ण ने उसे सोमिल की स्वीकृति से कुंआरे अन्तःपुर में भिजवा दिया, किन्तु कर्मों का विधान कुछ और ही था। गजसुकुमाल दीक्षित होकर श्मशान भूमि में जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। सोमिल ने जब उन्हें इस साधु स्थिति में देखा तो पूर्व जन्म के वैर के कारण, बदला लेने के लिए क्रोध में आकर उसने मुनि गजसुकुमाल के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बनाकर उनके सिर पर जलते अंगारे रख दिये। मुनि गजसुकुमाल का सिर जलने लगा। उनके शरीर में अथाह वेदना होने लगी, किन्तु वे शांत भाव से ध्यान में स्थिर होकर चिंतन करने लगे। उन्होंने कुछ-कुछ इस प्रकार का चिंतन किया होगा–

सोमिल मेरा शत्रु नहीं है। संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं होता।

अच्छी करणी करता हुआ आत्मा ही अपना मित्र होता है और बुरी करणी करता हुआ आत्मा ही अपना शत्रु होता है। व्यवहार में ही हमारा अहित करता हुआ प्राणी हमें हमारा शत्रु दीखता है किन्तु सर्वज्ञ की दृष्टि में वह शत्रु नहीं माना जाता, वह तो मित्र, निर्जरा-सहायक, कर्म-रोग चिकित्सक परम उपकारी माना जाता है।

प्राणी अपनी करणी का फल पाता है। वह चाहे संसार के किसी कोने में जाकर रह जावे किन्तु वह कर्म-फल पाने से बच नहीं सकता। वह किसी शक्तिशाली प्राणी के पास चला जावे, किन्तु कोई उसे बचा नहीं सकता। कर्म प्राणी के संस्कार बन कर, कार्मण शरीर के रूप में सदा सर्वदा उसके साथ उसके अन्दर ही रहते हैं। वे दूर जाते ही नहीं। उन्हें तप से क्षय करने के सिवाय उनसे बचने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। उदय में आये हुआ और निकाचित कर्मों से तो किसी भाँति बचा ही नहीं जा सकता। हजारों लाखों वर्षों के बाद भी समय पर अपना फल देकर वे क्षय होते हैं।

कर्म अपने कर्त्ता को फल देने में कभी भूल नहीं करते। सरकार अपराधी को या किसी को दण्ड देने में भूल कर सकता है किन्तु कर्म भूल नहीं करते। वे कभी धोखा भी नहीं खाते। चतुर या बुद्धिमान प्राणी अपने तर्क एवं प्रयास से सरकार से उचित दण्ड पाने से बच सकता है और कम बुद्धिवाला व्यक्ति निर्दोष होते हुए भी दण्ड पा सकता है किन्तु कर्म व्यवस्था में ऐसा नहीं होता। मैंने कभी कोई ऐसा अपराध किया होगा, किसी को ताप दिया होगा, किसी के सिर पर अंगारे रखें होंगे, तभी आज मेरे सिर पर ये अंगारे रखे गये हैं।

व्यवहार में तो सोमिल ने मेरे सिर पर अंगारे रखे हैं किन्तु निश्चय दृष्टि से तो मैंने स्वयं ही अपने सिर पर अंगारे रखे हैं। मैंने कभी पहले मजाक में या स्वार्थवश ऐसा नाटक रचा होगा, उसीकी यह प्रतिक्रिया है। यह मेरे निज कर्म का ही फल है।

अकृत से दुःख या सुख की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा नहीं हो सकता कि मैंने कुछ अपराध नहीं किया हो, फिर भी ये अंगारे अकारण ही मुझ पर रखे जावें। यदि बुरी करणी किये बिना ही दुःख मिलता तो अच्छी करणी किये बिना ही सुख भी मिलता। फिर लोग सुख के लिए दान-शील-तप-भावना का मार्ग क्यों अपनाते ? यह निश्चित है कि ये अंगारे मेरी ही बुरी करणी का फल है। इन्हें अपने सिर पर रखने वाला मैं ही हूँ, सोमिल नहीं।

"सोमिल मेरा शत्रु नहीं, सहायक है, उपकारी है। वह आज मेरी कर्म निर्जरा में सहायक बना है। आज नहीं तो कभी-न-कभी तो इस कार्य के फल को मुझें भोगना ही पड़ता। यह अच्छा हुआ कि आज मेरी सद्‌बुद्धि की अवस्था में, समता भावना की स्थिति में, इस कर्म-फल को समता भाव से भोगने का शुभ अवसर सोमिल ने मुझे दिया है। मैं उसका कृतज्ञ हूँ। आज मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, आत्मा की शुद्धि हो रही है और संभवतः मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है। सोमिल ने मेरा अहित नहीं किया है, मेरा हित ही किया है। अहित तो उसने अपना ही किया है। उसने मेरे निमित्त से भारी कर्मों का बंध किया है, जिसका दंड भोगना उसके लिए बहुत कठिन होगा। परमात्मा उसे सद्‌बुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे और इस कर्म के फल को समता पूर्वक भोगने की शक्ति दे।"

कुछ लोग अपने दुःख में निमित्त बनने वाले को अपना शत्रु मानकर उससे बदला लेते हैं और कुछ लोग उसे क्षमा भी कर देते हैं किन्तु क्या कोई किसी को क्षमा प्रदान कर सकता है ? क्या पीड़ित के द्वारा क्षमा प्रदान किये जाने से पीड़क उस पाप के फल-भोग से छूट जाता है ? यदि ऐसा होता हो तो मैं एक बार नहीं, किन्तु हजार बार सोमिल को क्षमा प्रदान करता हूँ। मेरी ओर से वह पाप और पाप के दंड से मुक्त बने।

अपराधी सोमिल नहीं है। अपराधी तो मैं हूँ। मैंने पूर्व में भी पाप किया और निमित्त बनकर सोमिल के विचारों को विकृत एवं दूषित बनाकर उसमें बदला लेने की भावना उत्पन्न की और आज भी उसके लिए नवीन भयंकर कर्म बंध का निमित्त बना। क्षमा मुझे माँगनी चाहिए। वह तो आज मेरा उपकारी बना है। कर्म निर्जरा में सहायक बना है। मित्र सोमिल ! मेरे अपराध के लिए मैं क्षमा की भीख माँगता हूँ।

मेरे सिर पर जो रखे गये हैं वे अंगारे नहीं हैं। वे तो मेरे कर्म रोग काटने की गोलियाँ हैं। मेरे रोग को मिटाने की अचूक दवा है। मुझे इस दवा को समतापूर्वक पीना है। दवा तो दवा ही होती है। वह कभी मीठी और कभी कड़वी भी हो सकती है। ज्ञानी ऐसी दवा को ही कर्म-रोग काटने की दवा मानते हैं। उसका आनन्दपूर्वक सेवन करते हैं। वे चिकित्सक को शत्रु नहीं किन्तु अपना मित्र और एवं उपकारी मानते हैं। आज मैं इस दवा को पीकर रोग मुक्त बन सकूंगा। यह अमृत है, इसे पीकर अमर बन सकूंगा।

भगवान नेमिनाथ ने मुझ पर असीम कृपा की है। उन्होंने मुझे मेरे

कर्म काटने का सरल, सुगम, शीघ्र लाभदायक और अचूक मार्ग बताया है। उनकी कृपा से मैं समतापूर्वक इस कर्म-रोग से मुक्त हो सकूंगा। महापुरुष तो हमेशा दूसरों पर दया ही करते हैं।

"मैं आत्मा हूँ। देह से भिन्न हूँ। मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ। मैं अजर-अमर और शाश्वत हूँ। आग मुझे जला नहीं सकती। शस्त्र काट नहीं सकते। पानी गला नहीं सकता। हवा सुखा नहीं सकती। मैं अछेद्य हूँ, अभेद्य हूँ। मैं आत्मा हूँ, आत्मा का आत्मा के सिवाय अपना कुछ भी नहीं होता। यह शरीर मेरा नहीं है। मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर के जाने से मेरा कुछ भी नहीं जाता। मैं निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ ...."

मुनि गजसुकुमाल की भावना उच्च से उच्चतर और उच्चतम भूमिका पर पहुँच गई। उन्होंने इस नश्वर देह को त्याग कर परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

धन्य हैं मुनि गजसुकुमाल, धन्य है उनकी समता। उन्हें बार-बार वंदन है, वंदन है, वंदन है। यह निश्चित है कि मुनि गजसुकुमाल की क्षमा और समता की अनुमोदना में भाव विभोर होने वाले प्राणी के अशुभ कर्मों की महान निर्जरा होगी।

5. आत्म-भावना

श्रीमद् रायचन्द्रजी ने कहा है–"आत्म भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे।" देहात्म-भेद-ज्ञान को जैन दर्शन ने सम्यक्त्व का मूल बताया है। जब तक प्राणी को अपने आत्मा के अस्तित्व और साथ ही उसके नित्यत्व, कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व एवं मुक्तत्व में पूर्ण विश्वास और दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो जाती तब तक वह मिथ्यात्व से घिरा रहता है। आत्म-भावना भाने वाले प्राणी अहमत्व, ममत्व, शत्रुत्व दुःखानुभूति और सुखानुभूति इन पाँचों से बच सकता है और परमात्म-पद का अधिकारी बन सकता है।

"आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ। मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ। ज्योति पुंज हूँ, ज्ञान रूप हूँ, आनन्द घन हूँ, चेतन हूँ। निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।" आत्मा हूँ–मैं आत्मा हूँ, मात्र आत्मा हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर के जाने से मेरा कुछ भी नहीं आता। मैं (आत्मा) और शरीर दोनों से भिन्न-भिन्न हूँ। मैं चेतन हूँ, सूक्ष्म हूँ, अमूर्त हूँ, शाश्वत हूँ। शरीर जड़ है, स्थूल है, मूर्त है और नाशवान है। दोनों में महान अंतर है और वे अलग-अलग हैं। मैं अमूर्त हूँ–अमूर्त होने के कारण मैं (आत्मा) शरीर की इन्द्रियों से अग्राह्य हूँ। मैं

इन भौतिक आँखों से देखा नहीं जा सकता। कान, नाक, जीभ और त्वचा से मैं जाना नहीं जा सकता। इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में मुझे नहीं जान सकने के कारण लोग सरलता से मेरे अस्तित्व का ज्ञान नहीं कर पाते। मेरे अस्तित्व में लोगों को शीघ्र ही श्रद्धा भी नहीं हो पाती।

मैं शरीर नहीं हूँ। मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ। न बाल हूँ, न वृद्ध हूँ। न जैन हूँ, न अजैन हूँ। न शैव हूँ, न वैष्णव हूँ। न हिन्दू हूँ, न मुसलमान हूँ। न छूत हूँ, न अछूत हूँ। न बड़ा हूँ, न छोटा हूँ। न बुद्धिमान हूँ, न मुर्ख हूँ। न अच्छा हूँ, न बुरा हूँ। मैं तो मात्र आत्मा हूँ। आत्मा के सिवाय और कुछ भी नहीं हूँ।

मैं चेतन हूँ—मेरे अस्तित्व का ज्ञान मेरी चैतन्यता के माध्यम से ही पाया जा सकता है। यह शरीर चेतना के सहारे ही खाता-पिता है, चलता-फिरता है, सुनता-बोलता है और देखता-जानता है। मेरे द्वारा इस शरीर को छोड़ दिये जाने के बाद यह शरीर कुछ भी नहीं कर सकता, बेकार हो जाता है, मिट्टी बन जाता है। लोग इसे क्षण भर भी घर में नहीं रखते। घर से बाहर श्मशान में ले जाकर इसे जलाकर इसकी भस्म बना देते हैं। मेरे अस्तित्व का सबसे प्रबल प्रमाण मेरी चेतना है, जो इस शरीर को चलायमान रखती है और जिसके निकल जाने पर जड़ देह जलाने योग्य बन जाती है।

मैं अवद्य हूँ—शस्त्रों द्वारा मेरा छेदन, भेदन या वध नहीं हो सकता। आग मुझे जला नहीं सकती। पानी मुझे गला नहीं सकता। हवा सुखा नहीं सकती। मैं अजर-अमर हूँ, मैं शाश्वत हूँ।

मैं ज्योति पुंज हूँ, मैं ज्योति हूँ, अद्भुत ज्योति हूँ। संसार की सभी ज्योतियों से भिन्न हूँ। अतः मेरी कल्पना करना भी कठिन है।

मैं ज्ञान रूप हूँ—मैं (आत्मा) ज्ञानरूप हूँ, ज्ञान का भंडार हूँ। ज्ञान की न्यूनाधिकता का कारण मेरे ऊपर आया हुआ ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण है, उसके हटते ही मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन जाता हूँ।

मैं आनन्द घन हूँ—मैं आनंदमय हूँ। बाहरी मूर्त पदार्थों में सुख नहीं है, वहाँ तो सुखाभास है जिसका परिणाम कभी-न-कभी दुःख की प्राप्ति में मिलता है। मैं (आत्मा) स्वयं में स्थिर होकर स्वयं के द्वारा स्वयं की अनुभूति से, अकथनीय आनन्द पा सकता हूँ। वहाँ चिन्ता, भय, दुःख का नाम निशान भी नहीं है। आनन्द के लिए बाहर झाँकने की जरूरत नहीं है।

मैं निराकार हूँ—मेरा कोई आकार नहीं है। शरीर अवस्था में मैं शरीर

प्रमाण बड़ा या छोटा हो जाता हूँ।

मैं निर्विकार हूँ—शुद्ध रूप में मैं काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, मद, मोह इन सबसे रहित हूँ।

मैं विमल ज्योति हूँ—मैं निर्मल ज्योति हूँ, मैं शुद्ध चेतना हूँ। मैं आत्मा हूँ। आत्मा के सिवाय मैं और कुछ भी नहीं हूँ। आत्मा का आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं होता। मेरे सिवाय मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है। मेरे बाबत कुछ कहा नहीं जा सकता। मुझे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता। मेरा न कोई रूप है, न कोई रेखा है।

"आत्म-ज्ञान ही परम ज्ञान है, स्वानुभूति सम्यक् दर्शन है। आत्म-रमण संयम है, तप है, आत्म-ध्यान ही परम धर्म है।" आत्म दर्शन के उपाय—आत्मा अमूर्त है। उसे इन चर्म चक्षुओं से देखा नहीं जा सकता। उसकी अनुभूति और उसके साक्षात्कार के लिये आध्यात्मिक ग्रंथों के अध्ययन एवं संत महात्माओं के मुखारविंद से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ नीचे लिखी विधि से ध्यान भी किया जा सकता है—

प्रथम चिंतन—शरीर की प्रत्येक क्रिया आत्मा की चैतन्य शक्ति के कारण ही संभव है। जैसे दूध में घी मिला हुआ है वैसे ही शरीर के कण-कण में आत्मा रमा हुआ है। इसका गहरा और बार-बार चिंतन किया जावे।

दूसरा चिंतन—शरीर से भिन्न किन्तु शरीर में ही आत्मा की स्थिति की कल्पना करना, कल्पना द्वारा ध्यान करना, ध्यान द्वारा आत्मा की अनुभूति करना और उसका दर्शन करना चाहिये। यह काम आसान तो नहीं है किन्तु अभ्यास करने से सफलता मिलेगी।

तीसरा उपाय—अपने शरीर से आत्म-प्रदेशों को ऊपर उठाने की कल्पना की जावे और इस साधना में ध्यान द्वारा आत्म-दर्शन का अभ्यास किया जावे।

चौथा उपाय—अपनी आत्मा को लोक के अग्र भाग में पुरुषाकार में, सिद्ध स्वरूप में, अटल अवगाहना में देखने का ध्यान किया जावे।

पाँचवां उपाय—अपने आत्मा को शरीर से ऊपर उठाकर निर्जीव शरीर का दाह-संस्कार देखा जावे। इससे देह की आसक्ति हटेगी।

छठा—सिद्धों का अटल अवगाहना की स्थिति में ध्यान किया जावे।

सातवां—दूसरे प्राणियों के शरीर में आत्मा की स्थिति की कल्पना की जावे।

आठवां–मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कंदक आदि के जीवन के अंतिम समय में उनके शरीर से निकलकर ऊपर उठते हुए आत्मा का कल्पना द्वारा ध्यान किया जावे।

आत्म-भावना या आत्म ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति भी संभव हो सकती है।

6. समता आचरण

समता आचरण का अर्थ है कि मनुष्य दुःखद और सुखद दोनों प्रकार की परिस्थितियों में अशुभ विचार और अशुभ काम नहीं करे। वह कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहे। वह अच्छे विचारों और अच्छे कामों में ही लगा रहे। वह ऐसे विचार और ऐसे काम करे जिससे उसका अपना भला होवे और दूसरों का भी अहित नहीं होकर आत्म-हित होवे। समता आचरण समता विचारों से ही बना है। समता भावना के बिना समता आचरण नहीं बनता।

समता आचरण के लिये चार बातों से बचना आवश्यक है। 1. दुःख चेतना से बचना, 2. दुःख चेतना में अशुभ संकल्प-विकल्प से बचना, 3. सुख चेतना से बचना और 4. सुख चेतना में अशुभ संकल्प-विकल्प से बचना।

दुःख चेतना का अर्थ है–दुःखद परिस्थिति में दुःखी होना, व्याकुल होना, दुःख की अनुभूति करना। दुःख-चेतना से बचने का अर्थ है कि बाहर चाहे दुःखद स्थिति बन जावे किन्तु प्राणी के भीतर मन में दुःख नहीं आवे। वह आर्तध्यान नहीं करे, उसकी शांति भंग नहीं हो। मन में चिंता, भय, शोक, उदासी नहीं आने पावे।

मन में दुःख की चेतना आने पर प्राणी अनेक प्रकार के अशुभ विचारों में उलझ जाता है। वह अनेक प्रकार के अशुभ संकल्प-विकल्प करता है–यह काम करूं ? वह काम करूं ? क्या करूं ? क्या नहीं करूं ? दुःख से कैसे बचूं ? ऐसे विकल्पों से बहुत से बुरे काम भी हो जाते हैं। जो प्राणी दुःख चेतना से बचेगा, उसके विचार और उसका आचरण समता विचार और समता आचरण बने रहेंगे।

मुनि अर्जुनमाली का साधु जीवन पूर्ण समता आचरण का सर्वोत्तम उदाहरण है। दीक्षा लेने के बाद जब वे गोचरी जाते तब कुछ लोग उन्हें गालियाँ देते। कोई उन्हें पीट भी देता। कहीं अन्न मिलता तो जल नहीं मिलता। कहीं जल मिलता तो अन्न नहीं मिलता।

मुनि अर्जुनमाली चिन्तन करते–मैंने पूर्व जन्मों में और इस जन्म में लोगों को अन्तराय दी है। उस अन्तराय कर्म का फल मुझे अन्न-जल के

अन्तराय रूप में भोगना पड़ेगा। मैंने अनेक प्राणियों की हत्या की है, अनेकों को अनाथ बनाया है, उन्हें असाता पहुँचायी है। उसका फल भी मुझे दुःख और कष्ट के रूप में भोगना पड़ेगा। मुझे जो कष्ट मिल रहा है उससे अधिक दंड पाने का मैं पात्र हूँ।

महापुरुषों ने दुःख और कर्म काटने का उपाय बताया है–समता आचरण। समता रखने से दुःख दवा बन जाता है। वह दुःख को मिटाती है और कर्मों को भी काटती है। उससे नये कर्मों का आना भी रुक जाता है।

मेरी समता भावना के कारण मेरा दुःख अब औषध बन चुका है। वह मेरे दुःख को मिटा रहा है। वह मेरे कर्मों को काट रहा है, मेरे कर्म अब मेरे आत्मा से झड़ रहे हैं। मेरी आत्मा शुद्ध हो रही है। वे अपनी आत्मा से कर्मों को झड़ते हुए देखने की कल्पना करते हुए अनेक बार ध्यानस्थ हो जाते थे।

इस प्रकार अपने गृहस्थ जीवन में 1141 स्त्री-पुरुषों की हत्या करने वाले मुनि अर्जुनमाली ने अपने पापों के लिये पश्चात्ताप किया और अपने समता आचरण द्वारा उसी भव में कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त किया। "धन्य है मुनि अर्जुनमाली, धन्य है उनका साधु जीवन, धन्य है उनकी पश्चात्ताप भावना, धन्य है उनका समता आचरण, धन्य है उनका ध्यान।" उनके आचरण का अनुमोदन और अनुसरण करने वाला परमात्म-पद का अधिकारी बन जाता है।

इस दृष्टि से प्राणी तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जो दुःख को दुःख मान कर दुःखी होते हैं और आर्तध्यान से भारी कर्मों का उपार्जन करके अपनी आत्मा का पतन कर लेते हैं। जैसे चक्रवर्ती की रानी श्रीदेवी अपने पति की मृत्यु पर छः मास तक विलाप करती है और छठे नरक में जाती है।

दूसरे वे जो मुनि अर्जुनमाली की भाँति अपने पापों का प्रायश्चित करते हैं, समता आचरण का पालन करते हैं, समता के कारण अपनी कल्पना में दुःख को दवा मान कर उससे अपने कर्मों को झड़ते हुए देखने का ध्यान करते हैं और कर्म-बंधन से मुक्त हो जाते हैं। यह मुक्ति दुःख-चेतना-मुक्ति से ही संभव होती है।

तीसरे वे जो अपने आत्म-ध्यान में, अपने ज्ञान-ध्यान में इतने लीन हैं कि उनके कानों में चाहे कीलें ठोकी जावें, उनके शरीर से चाहे चमड़ी उतारी जावे, उनके मुँह से आह तक नहीं निकलती, उनके चेहरे पर दुःखानुभूति का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। संभव है कि उन्हें अपने ध्यान

में दुःख की अनुभूति ही नहीं होती होगी। वे दुःख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात मूर्त रूप हैं।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है– विषय-भोगों में मस्त, इन्द्रिय-सुखों में डूबा हुआ, सांसारिक-सुखों में आसक्त, मांस-मदिरा-कुशील-सेवन में लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे संकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरों के हित-अहित का ध्यान नहीं करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना में डूबा हुआ है और सांसारिक सुख-भोगों की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगों के संकल्पों-विकल्पों से भी मुक्ति, इन सभी बातों से उदासीनता।

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राणी के अधिकांश अशुभ विचार और अशुभ काम प्रायः किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते हैं। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरों को दुःखी बना कर स्वयं सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध में लड़ते हुए मरने वालों को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारों से उनके मन में सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वयं को भयंकर ताप देकर महान तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होंगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्रायः मानसिक सुखानुभूति के लिये बड़े-बड़े कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सुख बाहरी पदार्थों में नहीं है। वह तो मन के भीतर विचारों से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल में महिलाओं के मुँह से गीतों में गाली सुनने से क्रोध नहीं आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामों से एक समय में लोगों को सुख होता है उन्हीं कामों से दूसरे समय में उन्हीं लोगों को दुःख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगों से होने वाले भावी दुःखों का चिन्तन करे, भौतिक सुखों को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त में दुःख पाने वाले यादवों और कौरवों के ऐतिहासिक उदाहरणों का

अन्तराय रूप में भोगना पड़ेगा। मैंने अनेक प्राणियों की हत्या की है, अनेकों को अनाथ बनाया है, उन्हें असाता पहुँचायी है। उसका फल भी मुझे दुःख और कष्ट के रूप में भोगना पड़ेगा। मुझे जो कष्ट मिल रहा है उससे अधिक दंड पाने का मैं पात्र हूँ।

महापुरुषों ने दुःख और कर्म काटने का उपाय बताया है–समता आचरण। समता रखने से दुःख दवा बन जाता है। वह दुःख को मिटाती है और कर्मों को भी काटती है। उससे नये कर्मों का आना भी रुक जाता है।

मेरी समता भावना के कारण मेरा दुःख अब औषध बन चुका है। वह मेरे दुःख को मिटा रहा है। वह मेरे कर्मों को काट रहा है, मेरे कर्म अब मेरे आत्मा से झड़ रहे हैं। मेरी आत्मा शुद्ध हो रही है। वे अपनी आत्मा से कर्मों को झड़ते हुए देखने की कल्पना करते हुए अनेक बार ध्यानस्थ हो जाते थे।

इस प्रकार अपने गृहस्थ जीवन में 1141 स्त्री-पुरुषों की हत्या करने वाले मुनि अर्जुनमाली ने अपने पापों के लिये पश्चात्ताप किया और अपने समता आचरण द्वारा उसी भव में कर्मों को काट कर मोक्ष प्राप्त किया। "धन्य है मुनि अर्जुनमाली, धन्य है उनका साधु जीवन, धन्य है उनकी पश्चात्ताप भावना, धन्य है उनका समता आचरण, धन्य है उनका ध्यान।" उनके आचरण का अनुमोदन और अनुसरण करने वाला परमात्म-पद का अधिकारी बन जाता है।

इस दृष्टि से प्राणी तीन प्रकार के होते हैं। प्रथम वे जो दुःख को दुःख मान कर दुःखी होते हैं और आर्तध्यान से भारी कर्मों का उपार्जन करके अपनी आत्मा का पतन कर लेते हैं। जैसे चक्रवर्ती की रानी श्रीदेवी अपने पति की मृत्यु पर छः मास तक विलाप करती है और छठे नरक में जाती है।

दूसरे वे जो मुनि अर्जुनमाली की भाँति अपने पापों का प्रायश्चित करते हैं, समता आचरण का पालन करते हैं, समता के कारण अपनी कल्पना में दुःख को दवा मान कर उससे अपने कर्मों को झड़ते हुए देखने का ध्यान करते हैं और कर्म-बंधन से मुक्त हो जाते हैं। यह मुक्ति दुःख-चेतना-मुक्ति से ही संभव होती है।

तीसरे वे जो अपने आत्म-ध्यान में, अपने ज्ञान-ध्यान में इतने लीन हैं कि उनके कानों में चाहे कीलें ठोकी जावें, उनके शरीर से चाहे चमड़ी उतारी जावे, उनके मुँह से आह तक नहीं निकलती, उनके चेहरे पर दुःखानुभूति का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। संभव है कि उन्हें अपने ध्यान

में दुःख की अनुभूति ही नहीं होती होगी। वे दुःख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात मूर्त रूप हैं।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है– विषय-भोगों में मस्त, इन्द्रिय-सुखों में डूबा हुआ, सांसारिक-सुंखों में आसक्त, मांस-मदिरा-कुशील-सेवन में लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे संकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरों के हित-अहित का ध्यान नहीं करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना में डूबा हुआ है और सांसारिक सुख-भोगों की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगों के संकल्पों-विकल्पों से भी मुक्ति, इन सभी बातों से उदासीनता।

कुछ अपवादों को छोड़कर प्राणी के अधिकांश अशुभ विचार और अशुभ काम प्रायः किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते हैं। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरों को दुःखी बना कर स्वयं सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध में लड़ते हुए मरने वालों को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारों से उनके मन में सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वयं को भयंकर ताप देकर महान तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होंगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्रायः मानसिक सुखानुभूति के लिये बड़े-बड़े कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सुख बाहरी पदार्थों में नहीं है। वह तो मन के भीतर विचारों से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल में महिलाओं के मुँह से गीतों में गाली सुनने से क्रोध नहीं आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामों से एक समय में लोगों को सुख होता है उन्हीं कामों से दूसरे समय में उन्हीं लोगों को दुःख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगों से होने वाले भावी दुःखों का चिन्तन करे, भौतिक सुखों को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त में दुःख पाने वाले यादवों और कौरवों के ऐतिहासिक उदाहरणों का

चिंतन-मनन करने लगे, तो उनकी विचारधारा बदल सकती है। वे भौतिक-सुख-चेतना और उससे संबंधित अशुभ संकल्पों-विकल्पों से बच सकते हैं। उनके विचार समता-विचार और उनके आचरण समता आचरण बन सकते हैं।

मांस-मदिरा-कुशील-कुव्यसन आदि सुख भोगों से बहुत हानियाँ होती है। 1. भोगों से शरीर में रोग आने का भय हमेशा बना रहता है। भोगी प्रायः रोग से घिरे रहते हैं। 2. उनका धन भोगों में खर्च हो जाता है और वे गरीब बनकर बहुत दुःख पाते हैं। 3. उनका आत्म-पतन हो जाता है। 4. वे अनेक प्रकार के कुव्यसनों में फंस जाते हैं। 5. कुव्यसनों के कारण कुसंगति में फंस कर दुःख पाते हैं। 6. कुव्यसनों और कुसंगति के कारण वे अनेक शत्रुओं से घिरे रहते हैं और बार-बार संकट में फंस जाते हैं। 7. भोगी इस जन्म में भी दुःख पाते हैं और भविष्य के जन्मों में भी दुर्गति में जाकर दुःख ही पाते हैं।

दुःख और भौतिक-सुख दोनों की चेतना से मुक्त प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से प्रायः बच जाता है। वह क्रोध, मान, माया, लोभ से भी काफी बच जाता है। उसे किसी प्राणी से राग-द्वेष करने का कोई कारण नहीं बनता। उसे कोई प्राणी या पदार्थ या घटना प्रिय या अप्रिय नहीं लगती। वह आर्तध्यान और रौद्र ध्यान से भी प्रायः बच जाता है। सातों कुव्यसन भी उससे दूर ही रहते हैं।

जो प्राणी अपनी समता भावना के कारण अपनी कल्पना में अपने दुःख को कर्म-रोग काटने की दवा मानकर अपने कर्मों को अपने आत्मा से झाड़ रहा है, जो भौतिक सुखों को सुखाभास मान कर उनमें आसक्त नहीं होता, उसके मन में अशुभ संकल्पों-विकल्पों को स्थान ही नहीं मिलता। वह समता आचरण वाला वीतराग प्राणी परमात्म-पद का अधिकारी बनता है।

दुःख चेतना और उससे पैदा होने वाले संकल्पों-विकल्पों से बचने के लिये चिंतन-सूत्र है—"समता के कारण दुःख दवा बन जाता है, वह कर्म-रोग को मिटा देता है। मुनि अर्जुनमाली के सभी कर्म पश्चात्ताप, समता भावना और शुभ ध्यान से कट गये।" स्वयं पर दुःख आवे तब बार-बार दोहराइये "समता के कारण मेरा दुःख कर्म-काटने की दवा बन चुका है। मेरे कर्म कट रहे हैं।"

भौतिक सुख-चेतना और उससे पैदा होने वाले अशुभ संकल्पों-विकल्पों से बचने के लिये चिंतन सूत्र है—सुख चेतना का फल है रोगोत्पत्ति, धन

हानि, आत्म-पतन, कुव्यसन, कुसंगति, संकट, इस जन्म में दुःख और अगले जन्म में दुर्गति।"

अन्य प्रकार की साधना के साथ-साथ उपर्युक्त सूत्रों को दोहराइये, मन की एकाग्रता से जप कीजिये। जप से पैदा होने वाली ध्वनि तरंगों की अजीब और अदृश्य शक्ति किसी भी गुण को स्थायी भाव बना कर प्राणी के आचरण में उतारने में समर्थ है। शुभ भावना से किया गया जप स्वाध्याय तप का अंग है।

7. राग-द्वेष

किसी प्राणी को अपना मानना या उसे अकारण ही बड़ा या अच्छा या धनवान आदि समझना राग है और किसी को शत्रु मानना या अकारण ही गरीब भिखारी आदि समझना द्वेष है। सद्भावना से किसी को अनिष्ट एवं पतन से बचाने के लिए आवश्यक कारणवश वस्तुस्थिति का निष्पक्ष भाव से अपनी जानकारी के अनुसार कथन करना राग द्वेष नहीं होता किन्तु अकारण किसी के संबंध में उसके अच्छा या बुरा होने का कथन करना राग द्वेष ही है।

प्राणी के बुद्धिमान या मूर्ख, बड़ा या छोटा, रंक या राव, भला या बुरा, सज्जन या दुर्जन, अपना या पराया, मित्र या शत्रु होने का विचार करना पर-द्रव्य का चिंतन है और राग-द्वेष है। प्राणी को मात्र प्राणी समझना, उसको मूलरूप में विशुद्ध आत्मा के रूप में देखना, उसे मात्र आत्मा मानना, वीतराग भाव है।

दुःख में दुःखी होना या सुख में फूलना राग-द्वेष है किन्तु दुःख में समता रखना, उसे समभाव से भोग लेना और सुख में आसक्त नहीं होना, उदासीन रहना, उससे होने वाले भावी दुःखों पर विचार शुरू कर देना राग-द्वेष-मुक्ति है।

8. कर्म बंध और क्षय

कर्म है प्राणी के द्वारा किये गये पुरुषार्थ के बदले में उसे मिलने वाला फल जिसे लोग दैव भाग्य या होनहार भी कहते हैं। संसार में एक प्रकार के अति सूक्ष्म कर्म-वर्गणा के पुद्‌गल भरे हुए हैं। जब-जब प्राणी के मन या वचन या काया या तीनों योगों से जरा भी हलन-चलन होती है तो ये पुद्‌गल प्राणी की ओर आकर्षित होते हैं, मन के अच्छे या बुरे विचारों के अनुसार अच्छे या बुरे संस्कार बनकर कर्म के रूप में आत्मा के साथ जुड़

जाते हैं और समय पर उदय में आकर अपना फल देते हैं। मन का प्रत्येक विचार या संकल्प-विकल्प कर्मों के बंधन का कारण बनता है और क्षय का कारण भी बनता है, विचारों में, ममत्व द्वेष, आर्तध्यान, रौद्रध्यान आसक्ति आदि से कर्मों का बंधन होता है और आत्म-भावना, समता भावना, अनासक्ति, अनुकम्पा, अनित्य भावना, अन्यत्व भावना आदि से कर्मों का क्षय होता है।

कर्मों के निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

1. जितने समय तक कोई विचार चलता है उतने समय तक मन के परिणामों के अनुसार कर्मों का आना, बंधना या क्षय होना चलता रहता है।

2. एक विचार यदि दस वार आता है तो कर्मों का आना या जाना भी दस वार होता है।

3. कर्म का बंधन क्षण भर में हो जाता है किन्तु उसका फल बहुत समय तक भोगना पडता है।

4. साधारणतया प्राणी एक दिन में जितने कर्म भोग कर समाप्त करता है उससे बहुत अधिक कर्मों का बंधन वह एक ही दिन में कर लेता है।

5. कर्मों का बंधन होता है—सांसारिक कामों के संकल्प-विकल्प से। जैसे मैं यह काम करूं ? या वह काम करूं या कौनसा काम करूं ? योजनाओं के बनते रहने से कर्मों के बंधन का काम चलता ही रहता है। किन्तु सकल्प-विकल्प से बचने वाला कर्म बंधन से बच जाता है।

6 कर्मों का बंधन होता है दुःख में दुःखी होने से और सुख में फूलने से। इनसे बचने वाला प्राणी कर्म बंधन से बच जाता है।

7. पूर्ण कषाय रहित भावना से काम करने वाला प्राणी कर्म के स्थिति बंध और अनुभाग बंध से बच जाता है। उसके कर्म फल दिये बिना ही दूर हो जाते हैं।

8 कर्म नष्ट होते हैं—मन के ज्ञान-धारा में लगने से। आत्मवाद एवं कर्मवाद का चिंतन, आत्म ध्यान में लीनता, तप के साथ धर्म चिंतन, अनित्यादि भावना, अपने पापों का प्रायश्चित, दान शील तप भावना की अनुमोदना कर्मों को नष्ट करती है।

9. मोहनीय कर्म सबसे प्रबल और भयंकर कर्म है। उसका क्षय होता है वैराग्य भावनाओं के चिंतन से।

10 वैराग्य भावना में उत्कृष्ट रसायन आने पर लाखों वर्षों के [illegible] क्षण भर में दूर हो जाते हैं।

11. कोई प्राणी अपने बिना भोगे हुए नष्ट होने योग्य कर्मों को तप से नष्ट कर सकता है किन्तु दूसरों के कर्मों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

12. आचार और विचार में समता रखने से कर्म निर्जरा होती है।

मन के अशुभ विचारों से अशुभ कर्मों का बंधन होता है। जैसे—1. अशुभ संकल्प-विकल्प—यह काम करूं ? वह काम करूं ? कौनसा काम करूं ? 2. दुःख की अनुभूति, 3. दुःख की अनुभूति से किये गये अशुभ विचार और अशुभ काम, 4. सुख की अनुभूति, 5. सुख की प्राप्ति हेतु या आसक्ति से किये गये बुरे विचार या बुरे काम, 6. दूसरों का बुरा सोचना या बुरा करना, 7. अशुभ कर्मों की अनुमोदना, 8. शुभ कामों की निन्दा, 9. समाचार-पत्र या कथा पढ़ते सुनते समय उत्तेजित होकर किसी को दंड देने या मारने की भावना करना और तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई की भाँति जीवित भैंसों के नहीं मिलने पर अपने शरीर के मैल के भैंसे बनाकर उन्हें मारकर भाव हिंसा द्वारा नरक ले जाने वाले कर्म बंधन करना।

मन के शुभ परिणामों से शुभ कर्मों का बंधन होता है जो आत्म-हित-साधना में सहायक बनते हैं—

1. सद् भावनायुक्त कार्य—जिसमें चार बातें हों (क) दूसरे को सुख पहुँचाने का विचार हो, (ख) सुख के साथ-साथ उसका आत्म-हित भी जुड़ा हो, (ग) किन्तु उसको दुःख नहीं पहुँचे और (घ) उसका पतन भी नहीं हो।

नहीं दुःख हो, नहीं पतन हो
किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो।।

2. शुभ विचार करना और शुभ काम करना।

3. दान, शील, तप, शुद्ध भावना और अच्छे कामों की अनुमोदना करना।

निम्नलिखित उपायों से कर्मों का क्षय होता है—

1. सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप।
2. दान, शील, तप और शुद्ध भावना।
3. समता आचरण=दुखानुभूति शून्यता, सुखानुभूति शून्यता और अशुभ संकल्प-विकल्प-मुक्ति।
4. कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) मुक्ति।
5. ममत्व-मुक्ति से मरुदेवी माता को मोक्ष प्राप्त हुआ।
6. अहंकार मुक्ति से बाहुबलीजी को कैवल्य की प्राप्ति हुई।
7. अनित्य भावना से भरतजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

8. पश्चात्ताप से चन्दडरुद्राचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
9. पश्चात्ताप से कूरगडुक मुनि को कैवल्य प्राप्त हुआ।
10. पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
11. अनुमोदना–मुनि गजसुकुमाल आदि की समता की अनुमोदना, विजय सेठ और विजया सेठानी के आजीवन अखंडित शील पालन की अनुमोदना, सुमुख गाथापति के दान की अनुमोदना और जीर्ण सेठ के दान भावना की अनुमोदना तिराने वाली हैं।
12. "आत्म-भावना भावता, जीव लहे केवलज्ञान रे"–ऐसा श्रीमद् रायचन्द्रजी ने कहा है।

9. सत्य की शक्ति

"सच्चं खु भगवं" सत्य ही भगवान है। सत्यवादी को ईश्वर के और संसार की सभी शक्तियों के आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। सत्यवादी स्वयं ही परमात्मा तुल्य है। सत्यवादी में देवताओं से भी अधिक शक्ति होती है।

आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का "हरिशचन्द्र तारा" पृष्ठ 76 पर कथन है–"विश्वामित्र के तपवल से वंधी हुई अप्सराओं को महाराज हरिशचन्द्र ने अपनी सत्य वल की शक्ति द्वारा वंधन मुक्त कर दिया। वे कहने लगी–"ऋषि का वह तप-बल जिसका प्रभाव मेटने में हम देवियाँ भी असफल रहीं, वह तप-वल हरिश्चन्द्र के सत्यवल से परास्त हो गया।" सत्य में देवताओं और तपस्वियों से भी अधिक वल होता है।"

आनन्द प्रवचन भाग नव पृष्ठ चार पर आचार्यश्री आनन्दऋपिजी म. सा. का कथन है–"सत्य से समुद्र में जहाज डूवता नहीं। सत्यवादी अग्नि में जलते नहीं, पहाड़ पर गिरने से मरते नहीं, युद्ध में वच जाते हैं, वध, वंद, अभियोग शत्रुता से भी मुक्ति पा लेते हैं। सत्य से आकृष्ट होकर देवता भी सत्यवादी की सेवा करते हैं। सत्य में हजार हाथियों का वल है।"

धर्मशास्त्रों में कहा गया है–"सत्यं चेत्तपसा च किं" अर्थात् सत्य में तप से अधिक सत्य है। "नास्ति सत्यात्परो धर्म" अर्थात् सत्य से वड़ा कोई धर्म नहीं।

सांच वरावर तप नहीं, झूठ वरावर पाप,
जाके हृदय सांच है, वाके हृदय आप।।

10 शील की महिमा

"धन्य हैं, धन्य हैं आप दोनों। आपकी भक्ति करने से और आपको पारणा कराने से चोरासी हजार मुनियों की भक्ति करने और पारणा कराने

के बराबर फल होता है, ऐसा केवलज्ञानी मुनि विमल ने हमें बताया है। आप दोनों विवाहित होकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। धन्य हैं आप, धन्य है आपका अखंडित ब्रह्मचर्य, धन्य है आप दोनों का जीवन।" विजय सेठ और विजया सेठानी की विनयपूर्वक स्तुति और भक्ति करते हुए, शील के महात्म्य को बताते हुए, दूर चम्पा नगरी से आये हुए, बारह व्रतधारी श्रावक श्रेष्ठी जिनदास ने सबके सामने रहस्योद्घाटन किया। इस रहस्य को और शील की महिमा की बात सुनकर वहाँ बहुत लोग एकत्रित हो गये। विजय सेठ के माता-पिता तो पौत्र देखने की आशा वर्षों से लगाये हुए थे। उन्हें क्या पता था कि उनके पुत्र ने शुक्ल पक्ष में अखण्ड शील पालन का और उनकी पुत्रवधू ने कृष्ण पक्ष में शील पालन का व्रत विवाह के पूर्व ही ले लिया था।

अखण्ड शील की बात प्रकट होने पर विजय सेठ और विजया सेठानी अपने पूर्व निश्चय के अनुसार दीक्षा लेकर मुनि विजय और साध्वी विजया बन गये और अपने कर्मों को क्षय करके उन्होंने परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

दोनों तरुण थे, सुन्दर थे, विवाहित थे, पति-पत्नी थे, रात्रि में एक कमरे में एक ही पलंग पर सोते थे। आध्यात्मिक वार्तालाप भी करते थे किन्तु काम-वासना उन्हें छू भी नहीं सकी। ऐसे दम्पति की भक्ति से चौरासी हजार मुनियों की भक्ति का लाभ हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? मुनि विजय और साध्वी विजया ने अपने आजीवन अखंडित शील-पालन और संयम से मोक्ष प्राप्त किया।

1. विजय सेठ और विजया सेठानी के शील-पालन की अद्भुत घटना और इसके महात्म्य की बात सुनने से प्राणी के मन में शील-पालन की शुद्ध भावना का जन्म होता है।

2. इस घटना का गुणगान और अनुमोदन करने से उत्पन्न होने वाली भाव-तरंगों से उस शील-भावना का पोषण और उसकी वृद्धि होती है।

3. अपनी भौतिक आँखें बंद करके कल्पना द्वारा उस घटना की काल्पनिक चित्रावली का ध्यान करने से प्राणी का मन शील-भावना पर एकाग्र हो जाता है। मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह आँखों को या कान को छोड़कर दूसरी जगह चला जावे।

4. शीलव्रत के महात्म्य का जप करने से मौन जप से उत्पन्न होने वाली आंतरिक ध्वनि-तरंगे शील-भावना को मजबूत बनाती है।

5. बहुत दिनों के शील भावना के ध्यान के अभ्यास से शील भावना स्थायी भाव बन कर प्राणी के अचेतन मन में उतर जाती है और उसके आचरण का अंग बन जाती है। इस साधना में लगा हुआ प्राणी किसी दिन साधु विजय या साध्वी विजया बन जाता है। जरूरत है दृढ़ श्रद्धा के साथ प्रतिदिन कुछ महीनों तक ध्यान करने की।

11. कुछ भ्रम

बहुत लोग सोचते हैं कि धन और भौतिक सुख केवल वर्तमान अशुभ खोटे पुरुषार्थ से मिलता है। जैसे खाद्य पदार्थों में मिलावट, काला बाजारी, तस्करी, दो नम्बर के धंधे, सरकारी कर चोरी, धोखा, झूठ, चोरी, ठगी, डाका, रिश्वत, गरीब शोषण एवं हिंसक धंधा।

यदि उपर्युक्त विचार ठीक हों तो वर्तमान में खोटे धंधे करने वाले हजारों प्राणी दीन-हीन, गरीब और दुःखी क्यों हैं ? सभी खोटे धंधों से धन कमा कर सुखी क्यों नहीं बनते ?

तर्क में कहा जाता है कि वर्तमान पुरुषार्थ का फल तुरन्त मिलता है। लाल मिर्च खाते ही मुँह जलने लगता है और गुड़ खाते ही जलन कम होने लगती है। किन्तु कर्म सिद्धान्तानुसार कर्मों का फल 88,00,000 जन्मों के बाद भी मिलता है। उसका तुरन्त ही मिलना जरूरी नहीं है।

यदि केवल वर्तमान काल की क्रिया का ही फल मिला करता है तो क्या पूर्व-कृत पुरुषार्थ से उपार्जित कर्म-फल बेकार है ?

संसार के सभी महापुरुषों और धर्मों का कहना है कि अशुभ कर्मों का फल बुरा होता है। इस मान्यता के अनुसार वर्तमान में खोटे धंधे करने वालों को दुःख ही मिलना चाहिये। किन्तु अभी बुरा काम करने वाले बहुत से प्राणियों को धन और सुख मिल रहा है। ऐसा दीखता है कि वर्तमान क्रिया का फल वर्तमान में ही मिलना जरूरी नहीं है। वह अठयासी लाख भव बाद भी मिल सकता है।

धन और सुख की प्राप्ति में केवल वर्तमान पुरुषार्थ ही काफी नहीं है। इसके लिये पुण्य का उदय होना जरूरी है। पुण्य चाहे पूर्व-कृत पुरुषार्थ से संचित हो, चाहे वर्तमान परिश्रम से उपार्जित हो।

पुरुषार्थ तो मात्र क्रिया है। क्रिया के साथ पुण्योदय हो तो धन और भौतिक सुख मिलता है और पापोदय हो तो वही पुरुषार्थ धन-हानि और दुःख का कारण बन जाता है। व्यापार पुरुषार्थ है। व्यापार में पदार्थ का भाव गिर कर व्यापारी को हानि हो सकती है, माल आग में जल सकता है, पानी

में वह सकता है, उसे कीड़े खा सकता है। चोरी, ठगी या धोखा भी हो सकता है।

यदि प्राणी के अन्तराय कर्म या अशुभ कर्म का उदय है तो उसे किसी भी पुरुषार्थ से धन और सुख मिलने वाला नहीं है। यदि शुभ कर्म का उदय है तो वर्तमान में किसी भी पुरुषार्थ के नहीं बनने पर भी केवल पूर्व-कृत शुभ पुरुषार्थ से संचित पुण्य के उदय से धन और सुख की वर्षा भी हो सकती है। शालिभद्रजी के साथ ऐसा ही हुआ। सेठ सुदर्शन ने सूली से रक्षा के लिये कुछ भी नहीं किया, किन्तु देवों ने सूली का सिंहासन बना दिया। भगवान पार्श्वनाथ की रक्षा भी केवल निमित्तों द्वारा हुई। प्रह्लाद की अग्नि से रक्षा हुई।

कभी-कभी वर्तमान काल के पुरुषार्थ के बिना और किसी भी सहायक निमित्त के बिना भी प्राणी के किसी पूर्व-संचित पुण्य से उसका काम बन जाता है, उसकी रक्षा हो जाती है। जैसे गोशालक की तेजोलेश्या से भगवान महावीर की रक्षा हुई। अर्जुनमाली के मुद्गर से सेठ सुदर्शन की रक्षा हुई। बेहोशी की दशा में नदी में बहाये गये भीम की सर्प-दंशों द्वारा मृत्यु न होकर रक्षा होना पूर्व-संचित पुण्य का ही तो फल है।

यह केवल भ्रम है कि वर्तमान अशुभ खोटे धंधों से अधिक धन और सुख मिलता है। शुभ कर्म के उदय में साधारण शुभ पुरुषार्थ से ही धन और सुख मिल सकता है। खोटे धंधों से आने वाला धन समय आने पर दुःख का ही कारण बनेगा।

जिस महान पुण्योदय से आपको मानव देह मिली है, अच्छा कुल, अच्छा धर्म, त्यागी धर्म-गुरु और प्रायः सभी साधन मिले हैं उसी पुण्य से आपका जीवन-निर्वाह हो सकेगा—इस बात पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए, नीति-मार्ग पर चलते हुए, विचारों में समता और आचरण में समता रखते हुए, मानव-जीवन के मूल लक्ष्य, परमात्म-पद की प्राप्ति की ओर आगे बढ़िये।

12. अमृत-बिन्दु

यह विचार कि मैं किसी प्राणी की या समाज की सेवा कर रहा हूँ—शायद हृदय के किसी कोने में छिपे हुए अहंकार ने भेजा है और यह विचार कि मैं दूसरों के परिश्रम और कृपा से ही बना हूँ, मुझे उनकी सेवा द्वारा उनके ऋण से मुक्त बनना चाहिये—विनय के आगमन की सूचना है।

कषाय - मुक्ति एक विवेचन

भाग – 2

अन्तिम और अन्तरिम लक्ष्य

जीवन का अंतिम लक्ष्य है–आत्म शुद्धि, आत्मा के सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति और अन्तरिम लक्ष्य है–कषाय आदि अवगुणों की निवृत्ति।

हम अनादि अनंत काल से विषय विकारों में फंसे हुए हैं और इतने मुग्ध हो चुके हैं कि हमें इनसे निवृत्त होने का विचार भी नहीं आता। यदि कभी किसी दुर्घटना या किसी के उपदेश से विरक्ति का क्षणिक विचार आता भी है, तो वह क्षण भर ठहर कर कपूर की भाँति उड़ जाता है। इसके दो कारण हैं–प्रथम, हमारे विचारों में विषय विकारों में सुख प्राप्ति का दिखाई देना। और दूसरा, इन भोगों में लम्बा अनंत काल का हमारा इन्हें भोगते रहने का अभ्यास।

इन गलत विचारों में परिवर्तन लाने और सुधार करने के लिए प्रथम निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

(क) धार्मिक एवं सत्साहित्य का अध्ययन, आध्यात्मिक पुस्तकों का स्वाध्याय, सत्संगति, संत वाणी का श्रवण आदि।

(ख) अपने अवगुणों का अवलोकन, उनकी सूची बनाना, उन दुष्कर्मों के लिए पश्चात्ताप करना एवं दंड प्रायश्चित लेना।

(ग) उन अवगुणों को छोड़ने के लिए कुछ उपायों का विचार करना, संकल्प करना, उन संकल्पों को दिन रात अधिक से अधिक बार दोहराते रहना।

(घ) अपनी आत्मा को निर्देश देने के लिए चुने हुए सिद्धांतों को संक्षिप्त वाक्य या सूत्र रूप में लिख लेना, उनका जप करना एवं उनके अर्थ पर विस्तारपूर्वक चिंतन करना।

(ङ) इतिहास, साहित्य, अपने पड़ोसियों के एवं अपने जीवन में आई हुई दुर्घटनाओं पर चिंतन करके उन विचारों एवं सिद्धांतों पर अपनी श्रद्धा को दृढ़ करना जिससे वे चेतन मन से अवचेतन मन में उतर कर स्थायी भाव बना सकें।

अवगुणों को छोड़ने के लिए दूसरा उपाय है—दीर्घ अभ्यास। अभ्यास का अर्थ है—जीवन में घटने वाली घटनाओं में उन सिद्धांतों को लागू करना। जैसे क्रोध जीतने का अभ्यास करने वाला किसी घटना पर जो उसे बुरी लगे उस पर क्रोध नहीं करे और यह विचार करे—"यह कष्ट तो मेरे पूर्वकृत कर्मों का ही फल है। इस पर समता रखने से ही मेरा यह कर्म नष्ट होगा। यह दुःख तो मेरे कर्मरोग की दवा है, चिकित्सा है। इस दवा को समतापूर्वक पीना है। अपने मन को इन विचारों में या अन्य विचारों में लगाता हुआ क्रोध से बचने का उपाय करे। प्रत्येक क्रोध पैदा करने वाली घटना के समय समता रखने का अभ्यास करे। दीर्घकाल के अभ्यास से क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आजकल मानिसक तनाव को दूर करने एवं जीवन के अंतिम लक्ष्य निर्विकार दशा एवं परमानंद की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधना एवं ध्यान किये जाते हैं, जैसे एक बिंदु या पदार्थ पर दृष्टि जमाकर त्राटक ध्यान द्वारा मनोविजय पाना। विपश्यान ध्यान, नासाग्र पर दृष्टि जमाना, श्वास या शरीर-तंत्र-प्रेक्षा, शरीर के किसी शक्ति-केन्द्र को जागृत करना। ये सब प्रयास मन को वश में करने के लिए किये जाते हैं। ये केवल साधन हैं—मन को वश में करने के।

हमारे जीवन का लक्ष्य है—कषाय-मुक्त होना, जिसमें प्रथम स्थान है क्रोध का। क्रोध एक ऐसा दुर्गुण है जो बड़े-बड़े तपस्वियों और साधकों को भी आसानी से नहीं छोड़ता। अतः अपना समय अन्य साधनों की बजाय सीधा क्रोध की निवृत्ति की साधना में लगाना ज्यादा उपादेय रहेगा। दूसरों के द्वारा दिये गये कष्ट को दुःख नहीं मानकर कर्म काटने की औषधि मानने की साधना से क्रोध निवृत्ति और समता की प्राप्ति हो सकेगी।

जब हम कष्ट में समता रखकर उसे दवा मान लें और निमित्त बनने वाले को परम उपकारी, अपना हितैषी और क्रोध रोग काटने की दवा देने वाला चिकित्सक मान लें और 24 घंटे इसका चिंतन-मनन-स्मरण करें, इसे क्षण भर भी नहीं भूलें, तो क्या हमारा क्रोध समाप्त नहीं होगा ?

क्रोध निवृत्ति की साधना

जैनागमों में चार प्रकार का क्रोध बताया गया है। प्रथम है अनन्तानुबंधी क्रोध जो पत्थर की तेड़ के समान है। यह क्रोध की तीव्रतम दशा है, जो जीवन भर नहीं मिटती। इससे नरक गति की प्राप्ति होती है और मनुष्य कभी सुखी नहीं बनता।

दूसरा है अप्रत्याख्यानी क्रोध जो सूखे हुए तालाब में बनी हुई दरार के समान है। यह भी क्रोध की तीव्र दशा है जो वर्ष भर नहीं मिटती। इससे प्राणी को तिर्यंच (पशु-पक्षी) की गति की प्राप्ति होती है। यह भी दुःखदायी है।

तीसरा है प्रत्याख्यानी क्रोध। यह गाड़ी के जाने से रेत में बनी लकीर के समान है और स्वयं ही मिट जाती है। यह क्रोध की मंद दशा है, जिससे प्राणी को मनुष्य गति की प्राप्ति होती है।

चौथा है संज्वलन क्रोध जो पानी में बनी लकीर के समान है। यह क्रोध की मंदतम दशा है, जिसमें प्राणी का देवगति का बंध होता है। क्रोध जितना ही कम होगा, आत्मा पर कर्मों का उतना ही कम बंध बनेगा और आत्मा के उत्थान की उतनी ही अधिक संभावना होगी।

अच्छा यह रहेगा कि हम सर्वप्रथम क्रोध-निवृत्ति की साधना से प्रारंभ करें। इससे हमारा सारा ध्यान एक ही दुर्गुण की निवृत्ति की ओर लगेगा जिससे सफलता जल्दी मिलेगी।

मनुष्य का एक प्रबल अवगुण है–क्रोध। इसके संबंध में कहा जाता है कि जिसने क्रोध को जीत लिया, उसने अपने जीवन की तीन चौथाई साधना पूर्ण करली। देखने में भी आता है कि कुछ बड़े-बड़े विद्वान् पंडित तपस्वी, संत महात्मा भी समय पर इसके शिकार होने से नहीं बच पाते। क्रोध आने पर प्राणी अपना आपा भूल जाता है और क्रोध में ऐसा भयंकर अनर्थ कर बैठता है कि जन्म भर उसके दुःखद परिणाम को भोगना पड़ता है। क्रोध अनेक शत्रुओं को पैदा कर देता है और प्राणी जीवन भर भय, चिंता, संघर्ष और झगड़ों में फंसा रहता है।

क्रोध आने के कई कारण हैं। जब प्राणी की इच्छापूर्ति में कोई बाधक बनता है तब बाधक पर क्रोध आता है। प्राणी की इच्छा होती है सुख भोगना, दुःख से भागना, किसी को मारना, किसी को तारना, आराम करना, अपना काम करना, धन-संग्रह करना। इनमें बाधा देने वाले पर क्रोध आता है। यदि कोई व्यक्ति हमारा अपमान करता है या हमें कड़वी बात कहता है तब भी हमें क्रोध आ जाता है। अतः हमें हमेशा सजग रहना चाहिए कि हम कोई ऐसा काम नहीं करें जिससे अनावश्यक रूप में झगड़ा बढ़े।

क्रोध आने पर प्राणी साधारणतया तीन प्रकार के कार्य करता है। प्रथम–पदार्थों की तोड़-फोड़ करता है। दूसरे–सामने वाले प्रतिपक्षी को गाली देना, उसे पीटना, धोखा देना, उसकी हत्या करना आदि में लग सकता है। तीसरे–वह स्वयं भूखा रहने, घर से भागने, अपने शरीर को चोट

पहुँचाने, या आत्म-हत्या करने के कार्य में लग सकता है। ये सभी त्यागने योग्य हैं। हमें सजग रहकर इससे बचना चाहिए।

क्रोध से रोगोत्पत्ति, धन-हानि, मान-हानि एवं अनेक प्रकार के संघर्ष एवं दुःख हो जाते हैं। क्रोध करने वालों ने हमेशा दुःख ही उठाया है। जैसे–कौरव, कर्ण, रावण।

क्रोध निवृत्ति से स्वास्थ्य, धन, मान, सुख एवं परमात्म-पद की प्राप्ति होती है। इसके उदाहरण हैं–मुनि गजसुकुमाल, मुनि-मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि स्कंदक और वे पाँच सौ नव दीक्षित नव-युवक संत जिन्हें पालक ने घाणी में पिलवा दिया था। इन संतों की मृत्यु घटनाओं की कथा का श्रवण, अध्ययन, इसके समता-भाव का अनुमोदन, इनसे प्रमोद भावना का आना और इन्हें बार-बार भावपूर्वक भाववंदन करना क्रोध का नाश करता है। इससे कर्मों की निर्जरा, आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोध के समय प्राणी उसे दुःख देने वाले व्यक्ति के कामों में दोष ढूंढ़ने, उसके अपराधी होने के प्रमाण पाने, उसे दंड देने, धोखा देने, हानि पहुँचाने, नीचा दिखाने और उससे बदला लेने की योजना बनाने आदि में लग जाता है। प्राणी को सजग होकर इन बातों से बचना चाहिए।

क्रोध से बचने के लिए सर्वप्रथम कर्म सिद्धांत का अध्ययन एवं उसमें गहरी श्रद्धा बनाना आवश्यक है। उसे यह समझना एवं मानना चाहिए कि संसार का कोई भी प्राणी निश्चय में किसी दूसरे प्राणी को अर्थात् मुझे सुख या दुःख नहीं दे सकता। मुझे जो दुःख मिल रहा है वह मेरे ही किए हुए दुष्कर्मों का फल है। दूसरा प्राणी तो केवल निमित्त ही बन सकता है। मैं मेरे दुष्कर्मों के उदय से आये हुए इस दुःख या कष्ट से बच नहीं सकता। अतः मुझे पूर्ण समताभाव रखकर इस आये हुए कष्ट को कर्म-रोग के काटने की दवा समझकर समतापूर्वक पी लेना चाहिए। यह मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। मेरे अशुभ कर्मों की निर्जरा हो रही है। मेरे आत्मा की शुद्धि हो रही है। और संभव है मुझे मुक्ति की प्राप्ति भी हो जावे।

यह प्राणी जो मेरे इस कष्ट में निमित्त बना है, जो मुझे शत्रु दिख रहा है, वह न तो मेरे लिए बुरा है और न मेरा शत्रु ही है। वह मेरा हितैषी और परम उपकारी है। मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा के लिए डॉक्टर बनकर आया है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि खंदक आदि ऐसा चिंतन करके क्रोध-निवृत्त हुए और वे संसार भ्रमण से मुक्त बने।

क्रोध दूर करने के कुछ साधारण उपाय भी हैं। जैसे–प्रतिकूल स्थिति के समय उस स्थान से कुछ दूर चले जाना या जल पी लेना या कोई सुन्दर रोचक पुस्तक या कहानी पढ़ने में लग जाना। मन को किसी भी दूसरे रोचक कार्य में लगा देने से क्रोध वाली घटना भूली जा सकती है। क्रोध से होने वाली हानि पर विचार किया जावे। क्रोध पर विजय से होने वाले लाभ पर विचार किया जावे। क्रोध से दुःख और क्रोध निवृत्ति से सुख पाने वाले लोगों के उदाहरण पर चिंतन मनन किया जावे। ऐसे अनेक उपाय हैं।

अवगुण निवृत्ति की साधना के संबंध में मनोविज्ञान का कहना है कि गलत और बुरे विचारों और संस्कारों को दूर करने के लिए सही और अच्छे विचारों और संस्कारों का बार-बार चिंतन-मनन कीजिए। किसी अच्छे विचार को दस-बीस मिनट तक बार-बार दोहराने से आपके मन में उस विचार की तरंगें पैदा होंगी और वे बुरे विचारों की तरंगों को तोड़ देगी। इसमें समय लगेगा किन्तु सफलता अवश्य मिलेगी। साधकों का कहना है कि आप जो कुछ दोहराते हैं उस पर यदि आपको प्रारंभ में पूर्ण विश्वास नहीं भी हो तो भी आपका दोहराना और जप करना व्यर्थ नहीं जावेगा। बार-बार दोहराने से वे विचार आपके मन में स्थान बना लेंगे, अवचेतन मन में उतर जावेंगे, स्थायी भाव का रूप ले लेंगे, और आपके जीवन का आचरण बन जावेंगे। कहा जाता है कि दस लाख बार दोहराया हुआ विचार जन्म जन्मान्तर में भी साथ रहता है। अतः आप जो विचार अपनाना चाहते हैं उसे जपिये, बार-बार दोहराइये, पट्टी या कागज पर लिखिये, कुछ देर तीव्र गति से जपिये, फिर मंद गति से जपिये, उसके अर्थ पर भी चिंतन कीजिये और उसकी सत्यता पर अनेक दृष्टियों से चिंतन-मनन भी करके उसमें दृढ़ श्रद्धा बनाइये।

दुःख-चेतना-निवृत्ति और क्रोध-निवृत्ति के लिये चिंतन करिये–"दुःख मेरे पाप कर्मों का फल है।" दुःख में समता रखते हुए सोचिये–"दुःख मेरे पाप कर्मों को काटने की दवा है और निमित्त मुझे पाप कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।"

आप उपर्युक्त सूत्रों को दिन रात में बार-बार दोहराइये, इनके अर्थ पर चिंतन कीजिये। रात्रि के शांत वातावरण में सोते समय दस-बीस मिनट इनको दोहरावें, सबरे उठते ही काफी समय तक इनको दोहरावें। इन उपायों से किसी को पाँच-दस महीनों में और किसी को दो-चार वर्षों में क्रोध से मुक्ति और पूर्ण समता की प्राप्ति हो सकेगी। दिन रात के 24 घंटों

में केवल एक घंटे ध्यान साधना करना और 23 घंटे आर्त-रौद्र ध्यान करना और अवगुणों का अभ्यास करना कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है जैसे 24 घंटों में एक रुपया कमाना और 23 रुपये खर्च करना। अतः शीघ्र सफलता के लिये एक घंटे के नियमित समय के एकावधान के अतिरिक्त जब-जब भी समय मिल सके, तब-तब दिन में कई बार अपने लक्ष्य का चिंतन एवं स्मरण करते रहना चाहिये। उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय अपना लक्ष्य अपनी स्मृति में रहना चाहिये, तभी सफलता मिलेगी।

ध्यान में एक ही विषय पर एकावधानता का होना आवश्यक है किन्तु ध्यान के उसी विषय में विषयांतर होना ध्यान में बाधक नहीं, किन्तु साधक है। जैसे क्रोध निवृत्ति के ध्यान में–क्रोध क्या है ? उसके कितने भेद हैं ? उसके कारण क्या-क्या हो सकते हैं ? उसमें प्राणी क्या-क्या विचार करता है और क्या-क्या अनर्थकारी काम करता है ? उससे होने वाली हानि क्या है ? उसकी निवृत्ति से क्या-क्या लाभ होते हैं ? उनके उदाहरणों पर भी विचार किया जावे। क्रोध निवृत्ति के भिन्न-भिन्न क्या-क्या उपाय हैं ? उनका ध्यान, चिंतन-मनन भी आवश्यक, उपादेय और साधना में साधक है। इसे विषय में विषायन्तर होना कहा जा सकता है किन्तु यह कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन की थकान को दूर करने वाला और उसे अधिक सक्रिय बनाने वाला है। इससे विचारों में पूर्णता एवं दृढ़ता आती है। ऐसा ध्यान सहज-ध्यान या सहज-योग कहा जा सकता है।

क्रोध से बचने का साधारण उपाय–क्रोध आने की जहाँ घटना हो रही है, वहाँ से उठ कर दूसरी जगज चले जाना, ठंडा पानी पी लेना, कोई कहानी पढ़ने में लग जाना या किसी दिलचस्पी वाले काम में लग जाना।

क्रोध पर विजय पाने का दूसरा उपाय–इसके दो सूत्रों का दिन में कई बार कुछ महीनों तक प्रति दिन जप करना अर्थात् उन्हें दोहराते रहना और उनके अर्थ का चिंतन करते रहना। वे दो सूत्र ये हैं–(क) दुःख में समता रखूंगा यह दुःख कर्म-रोग काटने की दवा है। (ख) दुःख में निमित्त बनने वाला मुझे कर्म-रोग काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।

क्रोध जीतने का तीसरा उपाय है कि चार प्रकार के अभ्यास किये जावें। प्रथम अभ्यास है–भूतकाल की क्रोध की एक घटना को याद करके उसके लिये पश्चात्ताप किया जावे और कुछ दंड प्रायश्चित लिया जावे। जैसे दो दिन मिठाई छोड़ना, नमक छोड़ना, कुछ दान देना, उपवास या एकत करना। इसके साथ ही कल्पना द्वारा उस घटना में अपने आचरण

को समतामय बनाने का अभ्यास करना अर्थात् यह सोचना कि यह दंड, कष्ट, दुःख या संकट मेरे ही किसी पूर्वकृत पापकर्म का फल था। वह मुझे कभी-न-कभी भोगना ही पड़ता। यह कष्ट मेरे किसी पूर्वकृत पापकर्म को काटने आया था। लेकिन मैं समता नहीं रख सका। भविष्य में कोई प्राणी मुझे कितना ही दुःख देवे, मैं पूर्ण समता रखूंगा। मुनि गजसुकुमालजी ने तो दुःख को दवा माना और दुःख में निमित्त बनने वाले को कर्म-रोग काटने की दवा देने वाला डॉक्टर माना।

दूसरा अभ्यास–निकट भविष्य में घटने वाली सम्भावित घटनाओं की सूची बनाइये और एक-एक घटना को याद करके कल्पना द्वारा प्रत्येक घटना को अपने किसी पाप का फल मानकर उसमें पूर्ण समता रखने का संकल्प कीजिये।

तीसरा अभ्यास–वर्तमान में होने वाली प्रत्येक घटना में उपर्युक्त दोनों सूत्रों का तीन-चार बार चिंतन करके अपने आचरण को पूर्ण समतामय रखें। यदि कुछ कमी रह जावे तो उसके लिये पश्चात्ताप कीजिये और दंड प्रायश्चित भी लीजिये।

चौथा अभ्यास–जिन व्यक्तियों से आपकी थोड़ी भी नाराजगी हो उनके नाम ले लेकर उनके पास सबेरे और रात्रि में पॉच-दस मिनट मित्र भावना का और शुभकामना का संदेश भेजिये–"मैं आपका मित्र हूँ। आपका भला चाहता हूँ। आपका भला हो, भला हो, भला हो।" आप इस संदेश को भेजते समय आप अपने मन में कल्पना कीजिये कि यह बात आप उसके कान में कह रहे हैं। सबेरे और रात्रि में भेजा गया यह मौन संदेश, संभव है, जादू का सा काम करे और आप दोनों में मित्रता स्थापित हो जावे। प्राणीमात्र के कल्याण की भावना बहुत उत्कट और उद्यतरूप धारण करले तो इससे तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन भी हो सकता है।

साधना के लिए सर्व प्रथम एक दुर्गुण को छोड़ने की साधना प्रारंभ करना ठीक है। इसका कारण यह है कि मन की सारी शक्ति एक ही बात पर केन्द्रित हो सकेगी। आप उठते बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, दिन में पचास बार दोहराइये "क्रोध छोड़ना है, इस पुनरावृत्ति से सजगता रहेगी जो सफलता की जननी है।

दुर्भावना-निवृत्ति

मनुष्य की दूसरी बड़ी कमजोरी है–दुर्भावना। हमारे मन में कुछ ऐसे संस्कार जम गये हैं कि जब हम अन्य किसी प्राणी का पतन देखते हैं या

सुनते हैं तो मन में एक प्रकार की विचित्र संतुष्टि की हलकी-सी लहर पैदा हो जाती है मानो मुझे कुछ प्राप्ति हो गयी है। "मैं उस व्यक्ति से कुछ ऊपर उठ गया हूँ। वह मेरे सामने सिर उठाने, बोलने लायक नहीं रहा। उसका यह पतन बुरा होते हुए भी मेरे लिए तो अच्छा ही है। मैंने तो उसका पतन नहीं कराया। मैं तो निर्दोष हूँ। किन्तु मेरे मन लायक बात हो गयी।" कभी-कभी इससे हमें विचित्र सुख जैसा कुछ अनुभव होने लगता है। यह भावना ऊपर से दुष्कर्म नहीं दिखते हुए भी गहराई में भयंकर भाव दुष्कर्म है। लोग चाहे इसे दुष्कर्म नहीं मानें, किन्तु यह महान दुष्कर्म है और उस प्राणी के आध्यात्मिक विकास को रोक देता है।

जो अनुभवहीन हैं उनकी दुर्भावना प्रकट हो जाती है और जो इससे भी नीचे स्तर वाले लोग हैं, वे ऐसी घटनाओं पर अपनी प्रसन्नता को मिठाई बॉटकर भी प्रकट करते रहते हैं। दूसरों के संकट या पतन में खुश होना केवल अपने लिए अनावश्यक भयंकर अशुभ कर्मों का बंध करना है। अतः प्राणी को हमेशा दुर्भावना से बचना चाहिए और दूसरों के लिए शुभ भावना भाकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

जो प्राणी दुर्भावना से भरा हुआ है उसके लिए विकास और साधना के सभी दरवाजे बंद हो जाते हैं। वह किसी का कुछ भी बुरा नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की भाँति सातवीं नरक के आयुष्य का बंध कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक छोटा-सा चावल के दाने जितना मत्स्य होता है। वह बड़े-बड़े मत्स्य के भौंह पर बैठा रहता है। बड़ा मत्स्य मुँह खोले हुए पड़ा रहता है। अनेक मछलियाँ जल प्रवाह के साथ उसके मुँह में जाती हैं और सुरक्षित ही खेलती हुई उसके मुँह से बाहर निकल जाती है। वह चावल जितना छोटा तन्दुल मत्स्य सोचता है–"यदि मैं इस बड़े मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को मुँह में आने के बाद बाहर नहीं निकलने देता।" वह खाता तो एक भी मछली को नहीं है, किन्तु केवल दुर्भावना के कारण ही सातवीं नरक जाता है।

दुर्भावना का दूसरा रूप है दूसरों को दुःख देने का विचार करना। ऐसा प्राणी केवल भाव-हिंसा से ही महान भयंकर नरक के आयुष्य का वंध कर लेता है। दुर्भावना से बचने और भावना को शुभ एवं शुद्ध बनाने के लिये बार-बार दोहराइये–

सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।

परिवार-मोह-ममता की निवृत्ति

प्राणी की तीसरी प्रबल कमजोरी है—परिवार की मोह-ममता। एक ही परिवार में, सास-बहुओं में, देवरानी-जेठानी में, ननद-भौजाई में, देवर-भौजाई में तो भेदभाव और अलगाव का होना अस्वाभाविक नहीं भी हो सकता है क्योंकि वे अलग-अलग माताओं की संतानें हैं किन्तु एक ही माता की संतानों में, बहन-भाइयों में, भाई-भाई में, पुत्र की शादी के बाद माता-पुत्र में और पिता-पुत्र में भी कभी-कभी भयंकर अलगाव और संघर्ष पैदा हो जाता है। फिर भी लोग परिवार के मोह में फंसकर आत्म-कल्याण और न्याय की बात पर विचार नहीं करते। इस संबंध में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है।

प्रथम दृष्टिकोण है—आत्म-स्थिति का। इस दृष्टिकोण से सभी प्राणी अलग-अलग हैं। सबकी आत्माएँ, शरीर, विचार, स्वार्थ आदि अलग-अलग हैं।

दूसरा दृष्टिाकोण है—कर्म-फल-भोग का। एक ही परिवार में एक हँसता है, दूसरा रोता है। एक भरपेट स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करता है, दूसरा भूखों मरता है। एक स्वस्थ है, दूसरा रोगों से पीड़ित पड़ा हुआ कराह रहा है। एक अमीर है, दूसरा गरीब है। एक स्वामी है, दूसरा सेवक है। एक पंडित और बुद्धिमान है, दूसरा अशिक्षित और मूर्ख है। एक सुखी है, दूसरा दुःखी है। कोई किसी को अपना पुण्य, अपनी आयु, अपना सुख दे नहीं सकता और दूसरे का पाप, उसकी मौत, उसका दुःख ले नहीं सकता। फिर दोनों का एक ही परिवार में होना या दो परिवारों में होना समान-सा ही है। परिवार में सव अलग-अलग हैं। कोई किसी का नहीं होता।

तीसरा दृष्टिकोण—पूर्व जन्मों के कर्म विपाकों से, राग-द्वेष से जुड़ी हुई आत्माएँ पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि के भिन्न-भिन्न रूप धर कर, परिवार में आती हैं और परिवार वालों के कर्म-फल प्राप्ति में सिर्फ निमित्त वनकर अपना पुराना कर्ज चुकाती हुई या दिया हुआ कर्ज वसूल करती हुई या वदला लेती या देती हुई नाटक के पात्रों की तरह अलग-अलग चली जाती हैं।

चौथा—प्राणी कर्म रूपी मदारी के हाथ में वंदर या रीछ की भाँति नाच दिखाता हुआ, अपना कर्म-फल भोगता हुआ, परिवार में रहता हुआ भी एक अपेक्षा से सवसे अलग ही है।

पॉचवां—यह जीवन एक यात्रा है और सभी प्राणी यात्री से अधिक कुछ भी नहीं है। परिवार केवल यात्रियों का झुंड है। यात्रियों में कोई किसी का "अपना" नहीं होता।

छठा—सभी प्राणी एक दूसरे के लिए निमित्त से अधिक कुछ नहीं है। निमित्त को "अपना" समझना और उस पर मोह करना भूल है।

सातवां—प्राणी ने मनुष्यों, देवों, तिर्यंचों के अनेक परिवारों में अनेक वार जन्म लिया है। वह किस परिवार को अपना परिवार माने ? वह उन्हें पहचान भी नहीं सकता।

आठवां—एक महिला पीहर को अपना परिवार माने या ससुराल को ? जिस महिला ने दो-तीन बार तलाक दिया है वह अपना परिवार किसे समझे। पीहर को या प्रथम ससुराल को या दूसरी ससुराल को या तीसरी ससुराल को ? एक मनुष्य के कई पत्नियाँ हैं। क्या आने वाले भविष्य के जन्म में भी यह परिवार कायम रहेगा ? राजा सगर के साठ हजार पुत्र वताये गये हैं और कौरव सौ भाई थे। क्या भविष्य में भी ये परिवार ऐसे ही परिवार बने रहे थे या सब अलग-अलग हो गये थे ?

नवां—मनुष्यों के कर्म, मन के विचार और भावनाएँ अलग-अलग होती हैं। वे मर कर अलग-अलग गतियों में अलग-अलग परिवारों में जाते हैं। अतः परिवार किसी का स्थायी नहीं रहता, वे हमेशा बदलते रहते हैं।

दसवां—एक प्राणी की दसवीं पीढ़ी में उसके सैकड़ों परिवार बन जाते हैं। वह किसे अपना परिवार माने ? किसमें जन्म ले ?

ग्यारहवां—यदि परिवार में सब अपने ही अपने होते तो "अपनों" में अलगाव, मन-मुटाव, शत्रुता और बदला लेने की भावना क्यों रहती है ? सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पांडव, रावण-विभीषण, उग्रसेन-कंस, हिरणकश्यप-प्रह्लाद आदि इस बात के प्रमाण है कि परिवार में शत्रु भी जन्म लेते हैं। परिवार के सभी सदस्य आपस में "अपने" नहीं होते। संसार में कोई किसी का "अपना" नहीं होता। प्राणी को अकेले से दुकेला तो उसके कर्म ही बनाते हैं।

बारहवां—प्राणी की सबसे बड़ी चाह है सुख की प्राप्ति। किन्तु वह भूलता है कि हमारे सुख में निमित्त बनना भी परिवार के हाथ में नहीं है। सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है शुभ कर्मो से, पुण्योदय से। हमें सुख देना किसी अन्य प्राणी या हमारे परिवार के हाथ में नहीं है। हमें पर-कृत या परिवार-कृत का फल नहीं मिल सकता। इस ज्ञान में दृढ़ श्रद्धा का उत्पन्न होना ही परिवार-ममता-मोह को दूर करता है। याद रखिये—"पर-कृत या परिवार-कृत कर्म का फल हमें नहीं मिल सकता, परिवार बेचारा क्या करे ?"

तेरहवां—कुछ मनुष्य जन्म से ही विकलांग पैदा होते हैं। कोई अंगहीन है, कोई अंधा है, कोई लूला-लंगड़ा है, कोई वहरा है, कोई गूंगा है, कोई जन्म से ही असाध्य भयंकर रोग से पीड़ित है, कोई अति क्रोधी और दुष्ट स्वभाव वाला है, कोई विलकुल ही मूर्ख और बुद्धिहीन है, कोई बिलकुल ही पुण्यहीन है, उसके सुख के लिये वेचारा परिवार क्या करे ? परिवार हजार-हजार उपाय करके भी उसके हित में कुछ भी नहीं कर सकता। अतः परिवार-मोह-ममता हटाने के लिये स्वाध्याय का एक सूत्र है—"परिवार किसी को उसके पाप-कर्म फल-भोग से वचा नहीं सकता। परिवार बेचारा क्या करे ?"

"परिवार का मेला मानो, कठपुतली का खेला है।
अपने-अपने कर्म भोगता, जाता जीव अकेला है।"

किसी भी प्राणी को, एक भी प्राणी को उसके पाप-कर्म-फल-भोग से तीर्थंकर भी नहीं बचा सकते। अपने परम भक्त राजा श्रेणिक को भगवान महावीर भी नरकगमन से बचा नहीं सके। परिवार बिचारा क्या करे ?

चेतावनी

यह निश्चित है कि परिवार में भी कोई किसी को कुछ देता लेता नहीं है। किन्तु पूर्व जन्मों का जो लेना-देना बाकी है वह तो निमित्त बनकर लेना-देना ही पड़ेगा। इससे कोई भी प्राणी किसी हालत में बच नहीं सकता। अतः हमें परिवार में अपने कर्तव्य का पालन समता भाव से, तटस्थ भाव से, राग-द्वेष रहित भाव से करके ऋण मुक्त एवं कर्म मुक्त बनना चाहिये। जो प्राणी ममता-त्याग के बहाने अपने कर्तव्य से विमुख होता है वह साधक नहीं बन सकता और अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता किन्तु वह अपने-आप को धोखा देता है। बड़े से बड़े त्यागी के लिए भी समाज सेवा करना उसका कर्तव्य है, इसे बड़ा परिवार कहा जा सकता है। वसुधा को ही अपना कुटुम्ब मानकर छः काया के जीवों पर दया करना ही परमधर्म है।

दुःख चेतना-निवृत्ति

क्रोध, दुर्भावना एवं ममता की निवृत्ति के बाद प्राणी का चौथा अवगुण है—दुःख चेतना। प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न हो जाने पर साधारण प्राणी कष्ट में, गरीबी में, पदार्थों के अभाव में, इच्छापूर्ति नहीं होने पर, उसे दुःख मानकर दुःखी होता है, रोता है, चिल्लाता है, उससे भागने का प्रयास करता है,

अनेक संघर्ष और अनर्थ करता है। ये सब दुःख से दुःखी होने के विचार के कारण होते हैं। यदि प्राणी उसे दुःख नहीं मानकर उसे अपने कर्मों का फल माने, उसमें समभाव रखे, उसे कर्म-रोग काटने की दवा माने और उसे हँसते-हँसते पी ले अर्थात् सहन करले, उससे कुछ शिक्षा ग्रहण करे तो वह दुःख भूल में पड़ जाता है। विचार धारा दूसरी ओर चली जाती है और दुःख दुःख नहीं रहता, वह समता के कारण दुःख और कर्म काटने की दवा बन जाता है।

दुःख पदार्थ या परिस्थिति में नहीं रहता, वह विचारों के कारण पैदा होता है, जिस भूख और कष्ट में साधारण लोग दुःख मानते हैं उसी भूख और कष्ट में तपस्वी सुख मानते हैं। भूख में जो भोजन मीठा लगता है वही मीठा भोजन पेट अधिक भर जाने पर दुःखद लगने लगता है। शत्रु द्वारा जिस गाली को सुनकर प्राणी को दुःख होता है और क्रोध आता है, ससुराल में गीतों में उसी गाली को सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। यह सब विचारों से होता है। यदि प्राणी अपनी विरक्त विचार धारा को दृढ़ करे और कष्ट को सहर्ष सहने का अभ्यास करता रहे तो उसे दुःख चेतना से बचने के लिए कोई कठिनाई नहीं होगी। वह अनेक प्रकार के कष्टों और कर्म बंधनों से बच जावेगा।

चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी पति-वियोग में छः महीने विलाप करती है और वह छठे नरक में जाती है। अतः दुःख चेतना से बचना चाहिये।

दुःख चेतना में प्राणी अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करता है, आरम्भ-समारम्भ की योजनाएँ बनाता है, शत्रु से बदला लेने के भावों में अशुभ विचार धारा में बहता चला जाता है और विचारों के प्रवाह में ही भयंकर कर्मों के बंधन करके नरक में चला जाता है। दुःख चेतना से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यदि किसी भी परिस्थिति में प्राणी दुःख को दुःख नहीं माने, दुःखी नहीं होवे, उसे कर्मों का फल माने और समता रखे तो वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का यात्री बन जाता है। उसके लिये मोक्ष का मार्ग सरल और सुगम बन जाता है।

सुख चेतना-निवृत्ति

अनुकूल परिस्थिति में, भौतिक सुख भोगों में, सुख अनुभव करना सुख चेतना है। राज्य सत्ता पाने पर, धन-सम्पत्ति एवं भोगों की प्राप्ति होने पर, मद्य-मांसादि में, जुआ व्यभिचार आदि में, प्राणी सुख अनुभव करता है। मांसाहारी पशुओं का शिकार करने में, अंडे आदि के भक्षण में सुख मानता है। यह सुख चेतना है। कुछ व्यक्ति दूसरों को दुःख देने में, लड़ाने-भिड़ाने

में सुख मानते हैं। कुछ लोग दूसरों के पतन और संकट में हलकी-सी सुख की अनुभूति करते हैं। दुर्भावना वाले प्राणी दूसरों के अनिष्ट की कामना करते हुए और उन्हें अनिष्ट पहुँचाने का कार्य करते हुए भी दूसरों के शुभयोग की स्थिति में उनका तो कुछ भी बुरा नहीं कर सकते, किन्तु अपने लिए अशुभ कर्मों के बंध करके अपना ही बुरा करते हैं। सुख-चेतना अनुभूति का परिणाम होता है—दुःख-प्राप्ति। सुख में प्रारम्भ से अन्त तक दुःख ही दुःख भरा है।

काम भोगों में सुख नहीं, किन्तु महान दुःख है। सुख चेतना के कारण काम भोगों में अधिक फंसे हुए प्राणी विजय सेठ और विजया सेठानी के अखंड शील पालन की कथा का और राज्य प्राप्ति के लोभ और मृत्यु के भय की भी परवाह नहीं करके अपने शील की रक्षा करने वाले सेठ सुदर्शन की शील रक्षा की कथा का बार-बार अध्ययन, कीर्तन, स्मरण, अनुमोदन एवं ध्यान करके इन कार्यों से उत्पन्न होने वाली विचार तरंगों, ध्वनि तरंगों और भाव तरंगों से इस भयंकर अवगुण से मुक्ति पा सकते हैं। काम की उत्पत्ति केवल श्रृंगार या एकांत से नहीं होती। इसका वास्तविक जनक है भोगों की कल्पना और इसका नाश करने वाला है शील रक्षण की कथाओं में प्रमोद भावना का आना, उससे अपने अंदर शील रक्षण की तरंगों का पैदा करना एवं उन्हें दृढ़ करना। इनके उदाहरण हैं—कुणाल, वीर दुर्गादास, साध्वी राजमती, सती मदनरेखा आदि।

मनुष्य सुख खोजता है प्रायः परिवार में, दुर्भावना में, अपने शरीर में, काम वासना में, संग्रह में और विकथा में किन्तु इनमें सुख नहीं मिलता।

सुख चेतना शायद दुःख चेतना से भी अधिक दुःखदायी हो सकती है। अनुकूल परिस्थिति, धन-सम्पत्ति, शक्ति व सत्ता पाकर प्राणी रावण या कौरवों की भाँति अनीति पर उतर जाता है और लोगों के दुःख का कारण बन जाता है। अपने लिए सुख प्राप्ति की कामना से दूसरों के लिए विनाशकारी योजनाएँ बनाकर वह स्वयं ही दुःखों में फंस जाता है।

सुख बाहरी पदार्थों में है ही नहीं। यह तो सुखाभास है। भर्तृहरिजी ने कहा है—"भोगे रोगभयं" भोगों में रोग भरे पड़े हैं। धन-सत्ता के नशे में प्राणी कर्तव्या-कर्तव्य का भान भूल जाता है। दुर्भावना में सुखानुभूति करने वाले केवल पाप और भविष्य में दुःख के भागी बनते हैं। सुख का मिठास भयंकर विष के समान है जो प्राणी को भयंकर वेदना पहुँचाता है और अनेक जन्मों में रुलाता है।

सुख वास्तव में है त्याग में, प्राप्त पदार्थों और आये हुए सुखों को दूसरों को देने में। अपना तो अपनी आत्मा के सिवाय कुछ भी नहीं है। संसार के सभी पदार्थ पराये हैं, दूसरों की धरोहर है। इस धरोहर को संभालने में नहीं, किन्तु लौटाने में ही सच्ची स्वतंत्रता और सुख है। इसे रखना तो परतंत्रता है, चौकीदारी है, बंधन है, भय और चिंता को गले लगाना है। सच्चा सुखी वही है जो दुःखियों के दुःख को दूर करे और सुखियों के सुख को देखकर प्रसन्नता अनुभव करे। "सच्चा सुख है इच्छा-निवृत्ति में, परिग्रह त्याग में, धरोहर लौटाने में।"

प्राणी जो भी काम करता है वह चाहे कुछ भी हो, उसका अन्तिम मूल लक्ष्य होता है—भविष्य में सुख प्राप्ति की आशा। और सुख प्राप्ति का माध्यम है शरीर, इन्द्रियाँ और मन। अतः सुख चेतना-निवृत्ति के लिये आवश्यक है देह की आसक्ति से निवृत्ति।

देहासक्ति छोड़ने का प्रथम सूत्र है—

यह शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है
इसके जाने से मेरा कुछ भी नहीं जाता।

दूसरा सूत्र है—

खणमेत सोक्खा, बहुकाल दुक्खा।

क्षणभर का सुख बहुत समय तक दुःख देता है।

कभी-कभी इस शरीर में इतने भयंकर वेदना वाले रोग एक ही साथ पैदा हो जाते हैं कि प्राणी का सुख से जीना कठिन हो जाता है। कैंसर, ऑतड़ियों में घाव, पैर की हड्डी का टूट जाना आदि प्राणी को सुख से नहीं जीने देते। "यह शरीर दुःखों की खान है।" शरीर की आसक्ति छूटने से सुख-चेतना छूट सकती है।

इच्छा-निवृत्ति

इच्छा भी मानव की बड़ी कमजोरी है। इच्छा ही संसार है, यही बंधन है। यही सब योजनाओं, दुर्भावनाओं, अवगुणों, दुःखों, कष्टों, संघर्षो एवं युद्धों का कारण है। यदि इच्छा समाप्त हो जाती है तो उस प्राणी के लिए संसार भी नहीं रहता, विषय वासनाएँ नहीं रहती, वह पूर्ण पुरुष बन जाता है।

इच्छा साधारणतया पाँच प्रकार की होती है—1. दुःखों से भागने की, 2. सुख भोगने की, 3. शत्रुओं को मारने पीटने की, 4. अपने प्रियजनों को तारने, सुधारने एवं सुख देने की और 5. धर्म पालन द्वारा अपना भविष्य सुधारने की।

यह ध्यान रखने की बात है कि इच्छाएँ आकाश के समान अनंत है। सभी इच्छाएँ कभी किसी की भी पूर्ण नहीं हुई। एक इच्छा के पूर्ण होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। अतः इच्छापूर्ति से ही सुख प्राप्ति की कामना करने वाला कभी भी संतुष्ट और सुखी नहीं बन सकता।

इच्छा निवृत्ति सबसे कठिन कार्य है। इसकी निवृत्ति का सरल एवं मुख्य उपाय है—कर्म सिद्धांत का गहरा अध्ययन और बार-बार चिंतन-मनन द्वारा उस पर अपनी श्रद्धा का दृढ़ बनना। जब तक अन्तराय कर्म बाधक हैं तब तक कितनी ही तीव्र इच्छा करो, कितना ही भारी पुरुषार्थ करो, इच्छा पूर्ण हो नहीं सकती, संसार की कोई भी दृश्य या अदृश्य शक्ति इच्छापूर्ति में सहायक बन नहीं सकती। जब अन्तराय कर्म समाप्त होगा, शुभ कर्म का उदय होगा, तब भोग, उपभोग, सभी सुखद पदार्थ और अनुकूल परिस्थितियाँ आपकी सेवा में उपस्थित हो जावेंगी। कभी-कभी तो बिना इच्छा और बिना पुरुषार्थ के भी पूर्वकृत निकाचित और महाशुभ कर्मों के उदय से सभी कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या छोड़ी। उस समय महावीर स्वामी ने अपनी रक्षा के लिए क्या कोई इच्छा और कोई पुरुषार्थ किया था ? उनकी रक्षा उनके निकाचित आयु कर्म से स्वतः ही हुई। शुद्धात्मा सेठ सुदर्शन की अर्जुनमाली के रक्षा कैसे हुई ? शील में दृढ़ सेठ सुदर्शन के लिए शूली का सिंहासन कैसे बना ? क्या उन्होंने कोई इच्छा की थी या कोई पुरुषार्थ किया था ? वे सिर्फ अपने शुद्ध ज्ञान चिंतन में, आत्म एवं परमात्म ध्यान में लीन रहे। दुर्योधन द्वारा जहर खिलाकर बेहोशी की दशा में नदी में बहाया गया भीम उस दशा में अपनी रक्षा का पुरुषार्थ कर ही क्या सकता था ? किन्तु उसके पूर्वकृत शुभ आयु-कर्म ने उसकी रक्षा की। वर्तमान में क्यूबा के राष्ट्रपति क्रास्त्रो की हत्या के लिये बड़ी शक्तियों द्वारा आठ वार प्रयास किये गये किन्तु उसके शुभ दीर्घ आयु-कर्म ने उसे उन स्थानों पर जाने ही नहीं दिया जहाँ पर उसकी हत्या की जानी थी। शालिभद्रजी ने वर्तमान में कोई इच्छा या कोई पुरुषार्थ नहीं किया किन्तु उनके पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ ने, उनके तीव्र पुण्योदय ने महान सम्पत्ति का स्वामी वना दिया। करोड़पति की गोद जाने वाला या लाटरी का प्रथम बड़ा इनाम पाने वाला कौनसा वड़ा पुरुपार्थ करता है ? सव कुछ पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुपार्थ का ही फल है। अंतराय कर्म के रहते कुछ भी नहीं हो सकता। भौतिक इच्छाएँ करना, केवल नवीन कर्मों के वंध का ही कारण वनती है। भौतिक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति शुभकर्म एवं पुण्य

करने से ही होती है, केवल इच्छा करने से और अशुभ खोटे पुरुषार्थ से नहीं होती।

कुछ लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी प्रखर बुद्धि और अपने बल का प्रयोग करते हैं। इस संबंध में तीन बातें याद रखने योग्य हैं–1. बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलं, 2. बुद्धिः कर्मानुसारिणी, 3. विनाशकाले विपरीत बुद्धिः अर्थात् 1. जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ है ? 2. बुद्धि प्राणी के पूर्वकृत कर्मों का अनुसरण करती है अर्थात् शुभ कर्मोदय के समय अच्छी और सहायक बन जाती है और अशुभ कर्मोदय के समय विपरीत और नाशक बन जाती है। यदि किसी को काश्मीर की ओर जाना हो तो उसके अशुभ कर्मोदय के समय उसकी बुद्धि में कोलम्बो का मार्ग ही काश्मीर पहुँचाने वाला दिखने लगता है और उसका यात्रा का पुरुषार्थ उस गंतव्य स्थान के पास पहुँचाने के बजाय उसे दूर भेज देता है। उसकी सारी यात्रा, सारा पुरुषार्थ अधिक हानिकारक बन जाता है, 3. विनाश के समय बुद्धि विपरीत बनकर प्राणी का नाश करवा देती है। कौरव, यादव, रावण आदि इसके अनेक उदाहरण हैं।

केवल बुद्धि और बल से ही मनोरथ पूर्ण हो जाते तो आज बहुत से व्यक्ति जो दुःखी हैं, दुःखी नहीं रहते। बुद्धि और बल से ही इच्छा की पूर्ति नहीं होती।

इच्छा-निवृत्ति के लिये जपने का सूत्र है–

"यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुख-सम्पत्ति की वर्षा हो जाती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा या पुरुषार्थ करने पर भी कुछ नहीं मिलता। अतः इच्छा-निरोध तप करके कर्मक्षय क्यों नहीं करते ?"

निष्काम भावना से, स्वार्थ रहित मन से, दूसरों का भला करने, उनकी शुद्ध सेवा करने, उनका आत्महित करने में निमित्त बनने की इच्छा रखना एवं प्रयास करना, इच्छा दिखते हुए भी इच्छा नहीं है। ये कर्तव्य पालन हैं जिसका उपदेश संसार के प्रायः सभी धर्म गुरुओं ने दिया है और अपनी मर्यादा के अनुसार उसका पालन भी किया है।

अहंकार-निवृत्ति

अनेक आन्तरिक शत्रुओं को जीतने वाले बडे-बड़े उपदेशक और धन और स्त्री-परिवार आदि के महान त्यागी तपस्वी संत महात्मा भी कभी-कभी

अहंकार के वशीभूत हो जाते हैं। अहंकार में यह विशेषता है कि इसका शिकार बनने वाले प्राणी शायद यह समझ भी नहीं पाते होंगे कि अहंकार उन पर सवार हो चुका है और वे पतन के अंधकूप में गिरते जा रहे हैं।

शायद मनुष्य को स्वयं को बहुत समझदार और बड़ा मानने में और स्वयं की प्रशंसा सुनने में बड़ा आनन्द आता होगा। यदि ऐसा है तो उसे उस कौवे की उपमा दी जा सकती है जिसने लोमड़ी से अपने मीठे मधुर सुरीले स्वर और गाने की प्रशंसा सुनकर अपनी मूर्खता से लोमड़ी को अपना मधुर गाना सुनाने के लिये अपना मुँह खोला और अपने मुँह की रोटी खोयी। अभिमानी पुरुष आर्थिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से ठगा जाता है। वह प्रशंसा सुनने में शुरू से अन्त तक घाटे में रहता है। बुद्धिमान लोग अपनी प्रशंसा सुनते ही नहीं। जहाँ प्रशंसा सुनी, वहीं ठगाई हुई।

प्राणी को अपने सौन्दर्य, धन, शरीर-बल, परिवार-बल, सत्ता-बल, विद्या, भाषण कला, लेखन कला, दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि का प्रायः अहंकार हो जाया करता है। किन्तु अशुभ पाप-कर्म के उदय होने पर कोई भी धन या बुद्धि काम नहीं देती। सब साधक भी बाधक एवं घातक बन जाते हैं।

कुछ लोगों को स्वयं के बहुत समझदार, सही और धर्मात्मा होने का अहंकार हुआ करता है। किन्तु संभव है उनकी मूल समझ में ही भूल हो या अहंकार ने उनकी समझ को ही नासमझ में बदल दिया हो। यह तो निर्विवाद है कि उनमें अहंकार का महा भयंकर अवगुण आ चुका है जो सभी बुराइयों और अनर्थों का मूल है।

अहंकार एक भयंकर अंधकूप है जिसमें अंधकार ही अंधकार छाया हुआ है। वहाँ प्राणी को कुछ भी अच्छा नहीं दिखाई देता। यह एक भयंकर तूफान है, आंधी है जो सब गुणों को उड़ाकर दूर फेंक देती है। अभिमान वह मदिरा है जो बिना कुछ पीये ही प्राणी को मदांध और बेभान बना देती है। बुद्धिमान वही है जो इससे बचता रहता है।

छोटी-छोटी बातों को अपनी इज्जत का प्रश्न बना कर बहुत से अनुभवहीन मनुष्य शाहबलूत के पेड़ की भाँति अकड़े रहते हैं और बलवान तूफान के आने पर जड़ से उखाड़ कर फेंक दिये जाते हैं। किसी ने कहा है—

बड़ा कौन है, बड़ा कौन है, मुझे बताओ बड़ा कौन है।
बड़ा वही है, बड़ा वही है, जो झुकता है बड़ा वही है।।

छोटी-छोटी बातों पर कभी नहीं अकड़ना चाहिए।

अहंकार सब अवगुणों एवं बुराइयों का मूल है। अभिमानी व्यक्ति को लोग अपने मन में महामूर्ख समझते हैं। लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये चाहे उसके सामने उसकी बड़ाई करते हों किन्तु वास्तव में उससे घृणा करते हैं। अहंकार नरक का मार्ग है। अहंकार से दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि सभी अच्छी क्रियाओं का फल मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्रायः निरर्थक-सा रहता है।

अहंकार से बचने का प्रथम उपाय—यह सूत्र जपना कि "किसी प्राणी को उसके पाप कर्म फल भोग से मैं या तीर्थंकर भी नहीं बचा सकते और मेरे भयंकर निकाचित कर्मों की रेखाओं को मैं नहीं बदल सकता, फिर अहंकार किस बात का करूं ?"

दूसरा उपाय है—अपने अवगुणों को याद करके उनके लिये पश्चात्ताप करना एवं उन्हें दूर करने की साधना करना।

तीसरा उपाय है—इस बात का चिंतन करना कि अहंकारी प्रायः कौवे की भाँति प्रशंसा करने वाली लोमड़ी से ठगा जाता है या अकड़ने वाले पेड़ की भाँति आंधी से उखाड़ कर फेंक दिया जाता है।

संग्रह-निवृत्ति

भगवान महावीर का यह स्पष्ट कथन है कि आत्मा के सिवाय कोई भी अन्य पदार्थ अपना नहीं है। धन-सम्पत्ति, परिवार और यह शरीर भी अपना नहीं है। ये सब मृत्यु के आते ही पीछे छूट जाते हैं। ये सब पर-पदार्थ हैं। इनमें आसक्ति रखने वाला, इनका संग्रह करने वाला, इनका लोभ करने वाला, इन परिग्रहों को जमा करने वाला, संसार से ही बंधा रहेगा, संसार में ही चक्कर काटता रहेगा। संसार से छुटकारा और मोक्ष की प्राप्ति तभी संभव है जबकि प्राणी धीरे-धीरे या तुरन्त ही इनका मोह छोड़कर पूर्ण अपरिग्रही, पूर्ण त्यागी बने।

साधारण व्यक्ति के लिए त्याग का क्रम कुछ-कुछ इस प्रकार हो सकता है—प्रथम सुख-दुःख-चेतना-निवृत्ति की साधना, फिर धन सम्पत्ति

की निवृत्ति का कार्य दान आदि द्वारा, फिर परिवार की मोह-ममता से विरक्ति और अंत में शरीर की आसक्ति से मुक्ति। महापुरुष तो इन सबको एक झटके में ही छोड़ देते हैं। जैसे शालीभद्रजी ने और धन्नजी ने किया था।

भौतिक सुख एवं धन-सम्पत्ति की प्राप्ति शुभ कर्मों के उदय के अधीन है। वे प्राणी की इच्छा या केवल पुरुषार्थ के अधीन नहीं है। अशुभ कर्मों के उदय होते ही चोर, डाकू, आग, बाढ़, रोग, व्यापार में हानि या अन्य किसी मार्ग से धन-सम्पत्ति चली ही जाती है। धन परायी धरोहर है, जितना हो सके इसका सदुपयोग दान एवं धर्म कार्यों में किया जावे। अपना शरीर भी निश्चित समय पर छूटने वाला है। इसकी भी आसक्ति छोड़कर इसका सदुपयोग निष्काम पर-सेवा में किया जावे। दुखियों के दुःख को यथाशक्ति यथामर्यादा अपने त्याग एवं सेवा द्वारा दूर करना और सुखियों को देखकर प्रसन्न होना जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत आवश्यक है।

त्याग में भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी पदार्थ या अवगुण का केवल त्याग कर देने से आसक्ति नहीं छूटती। आसक्ति छूटती है उस अवगुण की हेयता और उसके प्रतिपक्षी भाव की उपादेयता का दिन में कई बार चिंतन, स्मरण करते रहने से। उस अवगुण के जाते ही उसका प्रतिपक्षी गुण स्वतः प्रकट हो जावेगा क्योंकि आत्मा स्वयं ही अनंत गुणों का भंडार है।

संग्रह करना परिग्रह है और पाप है। दान देना दान, शील, तप, भावना में प्रथम धर्म बताया गया है।

लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि दान से विधाता के लेख (कर्मों की रेखा) भी झूठे पड़ जाते हैं (बदल जाती हैं)।

त्याग से, दान देने से अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। इसलिये संग्रह मत करो, दान दो, दान दो, दान दो। यदि आपका पुण्योदय है तो दान देने से धन की कमी नहीं होगी और एक के बदले दस या सौ मिलेंगे। यदि पाप का उदय है तो धन चाहे जमीन में गाड़ दीजिये वह कोयला बन जावेगा। पापोदय के समय धन को चोर, डाकू, ठग ले जाते हैं, वह आग में, बाढ़ में चला जाता है, उसे बीमारी खा जाती है। वह ठहर नहीं सकता। इसलिये दान दो, दान दो, अधिक से अधिक दान दो।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वहीं मंडराते रहोगे, दुःख पावोगे और दुर्गति में जावोगे। ध्यान का सूत्र है–"पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नहीं होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नहीं है।"

विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है–व्यर्थ की कथा। दूसरों के बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण एवं चिंतन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात पूर्ण, गन्दी राजनीति आदि की बातों के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढ़ना, सुनना, उनकी राग द्वेषात्मक बातों में पड़ना विकथा है। यह अनर्थ दंड है, प्रमाद है, भावहिंसा है, राग-द्वेष है।

जैन आंगमों में विकथा के चार भेद बताये गये हैं–स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बड़े-बड़े समझदार पंडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा में पडना अपनी शान समझने लगे हैं। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमें 80 प्रतिशत लोगों का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरों के भीतरी भावों को जान नहीं सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नहीं है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बड़ा दोष भी हमें लग जाता है।

घरों में बैठी हुई महिलाएँ, मर्दानी बैठक में बैठी हुई मित्र-मंडली, राजनीतिक गंदी चर्चा में रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान में बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर में नहाने लगते हैं।

विकथा से बचने के लिए पाँच निषेधात्मक और पाँच विधेयात्मक उपाय हैं। जहाँ दूसरों की निन्दा होती है, झूठी प्रशंसा होती है व्यर्थ की, राग-द्वेष बढ़ाने वाली बातें होती हों वहाँ पर कुछ भी

मत कहो वहाँ से उठकर चले जाओ

मत सुनो अपने काम में लग जाओ

की निवृत्ति का कार्य दान आदि द्वारा, फिर परिवार की मोह-ममता से विरक्ति और अंत में शरीर की आसक्ति से मुक्ति। महापुरुष तो इन सबको एक झटके में ही छोड़ देते हैं। जैसे शालीभद्रजी ने और धन्नजी ने किया था।

भौतिक सुख एवं धन-सम्पत्ति की प्राप्ति शुभ कर्मों के उदय के अधीन है। वे प्राणी की इच्छा या केवल पुरुषार्थ के अधीन नहीं है। अशुभ कर्मों के उदय होते ही चोर, डाकू, आग, बाढ़, रोग, व्यापार में हानि या अन्य किसी मार्ग से धन-सम्पत्ति चली ही जाती है। धन परायी धरोहर है, जितना हो सके इसका सदुपयोग दान एवं धर्म कार्यों में किया जावे। अपना शरीर भी निश्चित समय पर छूटने वाला है। इसकी भी आसक्ति छोड़कर इसका सदुपयोग निष्काम पर-सेवा में किया जावे। दुखियों के दुःख को यथाशक्ति यथामर्यादा अपने त्याग एवं सेवा द्वारा दूर करना और सुखियों को देखकर प्रसन्न होना जीवन लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत आवश्यक है।

त्याग में भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी पदार्थ या अवगुण का केवल त्याग कर देने से आसक्ति नहीं छूटती। आसक्ति छूटती है उस अवगुण की हेयता और उसके प्रतिपक्षी भाव की उपादेयता का दिन में कई बार चिंतन, स्मरण करते रहने से। उस अवगुण के जाते ही उसका प्रतिपक्षी गुण स्वतः प्रकट हो जावेगा क्योंकि आत्मा स्वयं ही अनंत गुणों का भंडार है।

संग्रह करना परिग्रह है और पाप है। दान देना दान, शील, तप, भावना में प्रथम धर्म बताया गया है।

लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि दान से विधाता के लेख (कर्मों की रेखा) भी झूठे पड़ जाते हैं (बदल जाती हैं)।

त्याग से, दान देने से अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। इसलिये संग्रह मत करो, दान दो, दान दो, दान दो। यदि आपका पुण्योदय है तो दान देने से धन की कमी नहीं होगी और एक के बदले दस या सौ मिलेंगे। यदि पाप का उदय है तो धन चाहे जमीन में गाड़ दीजिये वह कोयला बन जावेगा। पापोदय के समय धन को चोर, डाकू, ठग ले जाते हैं, वह आग में, बाढ़ में चला जाता है, उसे बीमारी खा जाती है। वह ठहर नहीं सकता। इसलिये दान दो, दान दो, अधिक से अधिक दान दो।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वहीं मंडराते रहोगे, दुःख पावोगे और दुर्गति में जावोगे। ध्यान का सूत्र है–"पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नहीं होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नही है।"

विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है–व्यर्थ की कथा। दूसरों के बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण एवं चिंतन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात पूर्ण, गन्दी राजनीति आदि की बातों के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढ़ना, सुनना, उनकी राग द्वेषात्मक बातों में पड़ना विकथा है। यह अनर्थ दंड है, प्रमाद है, भावहिंसा है, राग-द्वेष है।

जैन आगमों में विकथा के चार भेद बताये गये हैं–स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बड़े-बड़े समझदार पंडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा में पड़ना अपनी शान समझने लगे हैं। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमें 80 प्रतिशत लोगों का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरों के भीतरी भावों को जान नहीं सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नहीं है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बड़ा दोष भी हमें लग जाता है।

घरों में बैठी हुई महिलाएँ, मर्दानी बैठक में बैठी हुई मित्र-मंडली, राजनीतिक गंदी चर्चा में रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान में बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर में नहाने लगते हैं।

विकथा से बचने के लिए पाँच निषेधात्मक और पाँच विधेयात्मक उपाय है। जहाँ दूसरों की निन्दा होती है, झूठी प्रशंसा होती है व्यर्थ की, राग-द्वेष बढ़ाने वाली बातें होती हों वहाँ पर कुछ भी

न कहो वहाँ से उठकर चले जाओ

न सुनो अपने काम में लग जाओ

मत देखो   परमात्मा का भजन करो
मत सोचो   स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो
मत बैठो   पर-सेवा में लगो

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन लिये ही दूसरों की शुभ हितकारी सेवा में लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त में सेवा करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरों को कला का ज्ञान दो, (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था में मुफ्त में काम करो, (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारों, गरीबों, दु:खियों के घर जाकर उनके आँसू पोंछ सकता हैं या (ङ) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त में पढ़ाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते हैं और विकथा से बचने वाला 80 प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलना है।

आत्म-ध्यान

विकथा एवं अनेक प्रकार के विकारों से बचने के लिये ज्ञान चिंतन एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान में निम्नलिखित बातों की साधना की जाती है—1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। 2. यह शरीर मेरा नहीं है। 3. यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमें जो चेतन है वही मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बातें "ध्यान एक अनुशीलन" में दी गई है जो अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी है।

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र को बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक में दी गई साधना की नौ बातें हर समय आँखों के सामने झलकती रहें। आँखें शायद मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आँखें इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दु:ख-चेतना	अहं
दुर्भावना	सुख-चेतना	संग्रह
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

मत देखो परमात्मा का भजन करो
मत सोचो स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो
मत बैठो पर-सेवा में लगो

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन लिये ही दूसरों की शुभ हितकारी सेवा में लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त में सेवा करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरों को कला का ज्ञान दो, (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था में मुफ्त में काम करो, (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारों, गरीबों, दुःखियों के घर जाकर उनके आँसू पोंछ सकता हैं या (ङ) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त में पढ़ाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते हैं और विकथा से बचने वाला 80 प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलना है।

आत्म-ध्यान

विकथा एवं अनेक प्रकार के विकारों से बचने के लिये ज्ञान चिंतन एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान में निम्नलिखित बातों की साधना की जाती है–1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। 2. यह शरीर मेरा नहीं है। 3. यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमें जो चेतन है वही मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बातें "ध्यान एक अनुशीलन" में दी गई है जो अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी है।

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र को बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक में दी गई साधना की नौ बातें हर समय आँखों के सामने झलकती रहें। आँखें शायद मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आँखें इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दुःख-चेतना	अहं
दुर्भावना	सुख-चेतना	संग्रह
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह ज्यादा हितकारी नहीं रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गों में अपना समय नहीं लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति से ही प्रारंभ करें ? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना में दो लाभ हैं। प्रथम–इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होंगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा–इससे हमारे संचित कर्मों की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1. ध्यान का सूत्र, 2. शांत एकांत स्थान, 3. सुखासन, 4. निर्धारित शांत समय, 5. एकाग्रता, 6. पुनरावृत्ति और 7. अभ्यास। इसमें अंतिम दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जावे। सूत्र को दिन रात में कई बार दोहरावें। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस में यात्रा करते समय भी, दुकान में काम करते समय भी, और रात्रि में बिस्तर पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है।

साधना में अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारंभ में अभ्यास के कुछ भेद बताये गये हैं। उनके अलावा किसी गुंण को जीवन में उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते हैं। गुणों को अपने आचरण का अंग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी संभव है जबकि विचार शुद्ध हो सकें। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात में कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रों को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है–उन सूत्रों का पालन करना, उन्हें आचरण में उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म में यदि वे आचरण का अंग नहीं बन सकें तो भी उनकी साधना में लगे रहिये। उनके चिंतन-मनन और स्वाध्याय से बने हुए संस्कार व्यर्थ नहीं जावेंगे। वे अगले किसी जन्म में साधक की आचरण-शुद्धि में सहायक बनेंगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। फिर इन सूत्रों का ध्यान या स्वाध्याय तो आभ्यंतर तप है। वह व्यर्थ कैसे जावेगा ?

मत देखो परमात्मा का भजन करो
मत सोचो स्वाध्याय सूत्रों का ध्यान करो
मत बैठो पर-सेवा में लगो

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन लिये ही दूसरों की शुभ हितकारी सेवा में लगाओ। (क) रोगियों की मुफ्त में सेवा करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरों को कला का ज्ञान दो, (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी संस्था में मुफ्त में काम करो, (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारों, गरीबों, दुःखियों के घर जाकर उनके आँसू पोंछ सकता हैं या (ङ) छोटे-छोटे बच्चों को मुफ्त में पढ़ाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते हैं और विकथा से बचने वाला 80 प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलना है।

आत्म-ध्यान

विकथा एवं अनेक प्रकार के विकारों से बचने के लिये ज्ञान चिंतन एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान में निम्नलिखित बातों की साधना की जाती है–1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। 2. यह शरीर मेरा नहीं है। 3. यह शरीर मैं नहीं हूँ इसमें जो चेतन है वही मैं (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बातें "ध्यान एक अनुशीलन" में दी गई है जो अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी है।

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र को बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक में दी गई साधना की नौ बातें हर समय आँखों के सामने झलकती रहें। आँखें शायद मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आँखें इस शब्द चित्र को देखती रहेंगी तो मन में इतनी शक्ति नहीं है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दुःख-चेतना	अहं
दुर्भावना	सुख-चेतना	संग्रह
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह ज्यादा हितकारी नहीं रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गों में अपना समय नहीं लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति से ही प्रारंभ करें ? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना में दो लाभ हैं। प्रथम–इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होंगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा–इससे हमारे संचित कर्मों की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1. ध्यान का सूत्र, 2. शांत एकांत स्थान, 3. सुखासन, 4. निर्धारित शांत समय, 5. एकाग्रता, 6. पुनरावृत्ति और 7. अभ्यास। इसमें अंतिम दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जावे। सूत्र को दिन रात में कई बार दोहरावें। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस में यात्रा करते समय भी, दुकान में काम करते समय भी, और रात्रि में बिस्तर पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्त्वपूर्ण अंग है।

साधना में अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारंभ में अभ्यास के कुछ भेद बताये गये हैं। उनके अलावा किसी गुंण को जीवन में उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते हैं। गुणों को अपने आचरण का अंग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी संभव है जबकि विचार शुद्ध हो सके। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात में कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रों को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है–उन सूत्रों का पालन करना, उन्हें आचरण में उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म में यदि वे आचरण का अंग नहीं बन सकें तो भी उनकी साधना में लगे रहिये। उनके चिंतन-मनन और स्वाध्याय से बने हुए संस्कार व्यर्थ नहीं जावेंगे। वे अगले किसी जन्म में आप की आचरण-शुद्धि में सहायक बनेंगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नहीं जाती। फिर इन सूत्रों का ध्यान या स्वाध्याय तो आभ्यंतर तप है। वह व्यर्थ नहीं जावेगा ?

हृदय परिवर्तन की कला

अपनी संतान या किसी संबंधी या मित्र का हृदय-परिवर्तन (चरित्र सुधार) करने हेतु इन बातों का पालन कीजिये। 1 उसे सुधारने का दृढ़ विचार कीजिये। 2. स्वयं को प्रथम सुधारिये। एक शराबी किसी दूसरे को उपदेश देकर शराब नहीं छुड़ा सकता। 3 जिसे सुधारना हो उसकी यथाशक्ति यथा मर्यादा सहायता कीजिए। उसे अपनी तरफ आकर्षित कीजिये। 4 दूसरों के सामने उसकी बुराई या निन्दा मत कीजिये। 5. उससे घृणा या द्वेष मत करिये। 6 उसकी निम्नता या अवगुणों के कारण ढूंढिये और उसे कुमार्ग, कुसंगति, कुप्रभाव और कुविचारों से दूर रखने के उपाय कीजिये। 7 उसके गुणों की प्रशंसा कीजिये जिससे वह आपको अपना हितैषी समझने लगे। 8 जब वह किसी सुखी की दशा में हो उस समय एकांत में प्रेम-पूर्वक उससे वार्तालाप करते हुए प्रश्नोत्तर के ढंग से उसी के मुंह से उसकी भूल या अवगुण की बात कहलवाइये। जहां तक हो आप अपने मुंह से उसके अवगुण की बात नहीं कहे।

9 यदि वह आपसे दूर रहता हो या मिलना जुलना पसंद नहीं करता हो या नाराज रहता हो तो उससे उसके सामने कुछ भी नहीं कहे किन्तु रात्रि में जब कि वह प्रायः शांत या सुप्त अवस्था में हो या उषाकाल में उसे उपदेशात्मक विचार या सुधार के निर्देश विचार तरंगों द्वारा भेजिये। जैसे चोरी करने वाले को चोरी की आदत छुड़ाने के लिये यह संदेश भेजिये–"अरे भाई..........तुम इमानदार बनो, सत्यवादी बनो। सत्यवादी की सहायता सभी लोग और देवता भी करते हैं। सत्य एक महान तप है।"

10. यदि कोई महिला रात्रि में, सवेरे ऐसा चिंतन करे या जप करे कि "मेरी संतान सुन्दर, स्वस्थ, सुशील और सुयोग्य हो" तो उसकी संतान उसके विचारों के अनुसार ही होगी।

11. रात्रि में मौन विचार तरंगें भेजते समय यह कल्पना कीजिये कि आप यह निर्देश चुपचाप उसके कान में कह रहे हैं चाहे वह हजारों मील दूर ही बैठा हो या सो रहा हो। धैर्य और विश्वास से कुछ महीनों में सफलता मिलेगी।

: कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुःख में दुःखी नहीं होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नहीं मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) में लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है–सिद्ध पद की प्राप्ति।

कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है–गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयाँ अपने क्रोध, अहंभाव, कपट और स्वार्थ को छोडकर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर और सगे-संबंधी की सेवा करते हैं, वे कषाय मुक्त हो जाते हैं। जो घर में ही लडाई-झगडे, कपट, कलह आदि रखते हैं उनके लिए कषाय मुक्त हो जाना कठिन हो जाता हैं। कुछ मनुष्य और स्त्रियाँ जब तक वे स्वयं वृद्ध नही हो जाते तब तक वे वृद्धों के मन की वेदना को समझ नही पाते। जब वे स्वयं वृद्ध हो जाते हैं तब उन्हें पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगो के मन मे वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे ? तब वे पछताते है और कहते हैं–हाय ! हाय ! हमने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। हमने घर में लडाई-झगडे रखे। हमने वृद्धों के अंतर की बातों को नही सुना और वे अपने मन की बातें अपने साथ मन में ही ले गए।

संसार मे मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, सगे-संबंधी एवं धर्म गुरुओं की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो संसार के महापुण्यवान और महाभाग्यवान लोगों की गिनती में उनका स्थान गृहस्थों में सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते हैं और वे अपना संसार घटाते हैं।

हृदय परिवर्तन की कला

अपनी संतान या किसी संबंधी या मित्र का हृदय-परिवर्तन (चरित्र सुधार) करने हेतु इन बातों का पालन कीजिये। 1. उसे सुधारने का दृढ़ विचार कीजिये। 2. स्वयं को प्रथम सुधारिये। एक शराबी किसी दूसरे को उपदेश देकर शराब नहीं छुड़ा सकता। 3. जिसे सुधारना हो उसकी यथाशक्ति यथा मर्यादा सहायता कीजिए। उसे अपनी तरफ आकर्षित कीजिये। 4. दूसरों के सामने उसकी बुराई या निन्दा मत कीजिये। 5. उसस घृणा या द्वेष मत करिये। 6. उसकी विषमता या अवगुणों के कारण ढूंढ़िये और उसे कुमार्ग, कुसंगति, कुप्रभाव और कुविचारों से दूर रखने के उपाय कीजिये। 7. उसके गुणों की प्रशंसा कीजिये जिससे वह आपको अपना हितैषी समझने लगे। 8. जब वह किसी खुशी की दशा में हो उस समय एकांत में प्रेम-पूर्वक उससे वार्तालाप करते हुए प्रश्नोत्तर के ढंग से उसी के मुँह से उसकी भूल या अवगुण की बात कहलवाइये। जहाँ तक हो आप अपने मुँह से उसके अवगुण की बात नहीं कहें।

9. यदि वह आपसे दूर रहता हो या मिलना जुलना पसंद नहीं करता हो या नाराज रहता हो तो उससे उसके समाने कुछ भी नहीं कहें किन्तु रात्रि में जब कि वह प्रायः शांत या सुप्त अवस्था में हो या उषाकाल में उसे उपदेशात्मक विचार या सुधार के निर्देश विचार तरंगों द्वारा भेजिये। जैसे चोरी करने वाले को चोरी की आदत छुड़ाने के लिये यह संदेश भेजिये–"अरे भाई..........तुम इमानदार बनो, सत्यवादी बनो। सत्यवादी की सहायता सभी लोग और देवता भी करते हैं। सत्य एक महान तप है।"

10. यदि कोई महिला रात्रि में, सवेरे ऐसा चिंतन करे या जप करे कि "मेरी संतान सुन्दर, स्वस्थ, सुशील और सुयोग्य हो" तो उसकी संतान उसके विचारों के अनुसार ही होगी।

11. रात्रि में मौन विचार तरंगें भेजते समय यह कल्पना कीजिये कि आप यह निर्देश चुपचाप उसके कान में कह रहे हैं चाहे वह हजारों मील दूर ही बैठा हो या सो रहा हो। धैर्य और विश्वास से कुछ महीनों में सफलता मिलेगी।

: कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुःख में दुःखी नहीं होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नहीं मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) में लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है–सिद्ध पद की प्राप्ति।

कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है–गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयाँ अपने क्रोध, अहंभाव, कपट और स्वार्थ को छोडकर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-वहिन, सास-ससुर और सगे-संबंधी की सेवा करते हैं, वे कषाय मुक्त हो जाते हैं। जो घर में ही लड़ाई-झगडे, कपट, कलह आदि रखते हैं उनके लिए कषाय मुक्त होना कठिन हो जाता है। कुछ मनुष्य और स्त्रियाँ जव तक वे स्वयं वृद्ध नहीं हो जाते तव तक वे वृद्धों के मन की वेदना को समझ नहीं पाते। जव वे स्वयं वृद्ध हो जाते हैं तव उन्हें पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगों के मन में वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे ? तब वे पछताते हैं और कहते हैं–हाय ! हाय ! हमने अपने जीवन में कुछ नहीं किया। हमने घर में लड़ाई-झगडे रखे। हमने वृद्धों के अंतर की वातों को नहीं सुना और वे अपने मन की वातें अपने साथ मन में ही ले गए।

संसार में मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-वहिन, सास-ससुर, सगे-संबंधी एवं धर्म गुरुओं की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो संसार के महापुण्यवान और महाभाग्यवान लोगों की श्रेणी में उनका स्थान गृहस्थों में सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते हैं और वे अपना संसार घटाते हैं।

दंड का अधिकार

आप विचारिए कि दंड देने का अधिकार और उसकी शक्ति किसमें है। क्या आप अपने से शरीर बल, धन बल, राज्य बल, बुद्धि बल आदि में आपसे हर प्रकार से अधिक शक्तिशाली स्वयं के अपराधी को भी दंड दे सकते हैं या अपने से कमजोर अपराधी को ही क्रोध और अहंभाव में आकर बदला लेने की भावना से दो डंडे लगाकर कषाय भाव से नवीन कर्म बांधकर भविष्य के लिए झगड़े की नींव को मजबूत कर अपना संसार ही बढ़ाते हैं।

कुछ चालाक और चतुर आदमी कानून का सहारा लेकर राज्य सरकार से दंड पाने से भी बच जाते हैं किन्तु राज्य सरकार के दंड से बचने वाले भी वास्तव में दंड देने वाली एक अदृश्य किन्तु अचूक महान कर्मशक्ति के दंड से नहीं बच पाते। दंड देने का वास्तविक अधिकार कर्मशक्ति को है। राजसत्ता जो दंड देती है वह भी कर्मशक्ति के अधीन है।

संत संस्कृति यही कहती है कि दंड देना कर्मशक्ति का ही काम है। कषाय मुक्ति का अभिलाषी किसी व्यक्ति को दंड देने का काम अपने हाथ में नहीं लेता। वह अपराधी के सामने पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल बन जाता है और वह अपराधी को दंड मिले ऐसी इच्छा भी नहीं करता।

कषाय-मुक्ति में असफलता क्यों ?

कुछ लोग कषाय के चार भेद क्रोध, मान, माया, लोभ में से प्रथम भेद क्रोध से होने वाले अनर्थ को देखकर मन में पक्का विचार एवं दृढ़ संकल्प करते हैं। और कुछ लोग तो क्रोध छोड़ने का पच्चखाण भी बिलकुल भूल जाते हैं और क्रोध में आकर कभी-कभी महा अनर्थ भी कर बैठते हैं। बाद में पछताते हैं। इसका कारण यह दिखता है कि अनादिकाल से क्रोध उनका साथी बना हुआ है और क्रोध के परमाणु उनके शरीर के कण-कण में भरे हुए हैं। जिस प्रकार भालू से पकड़े जाने पर भालू से मनुष्य का छुटकारा होना कठिन होता है उसी प्रकार क्रोध द्वारा पकड़े गये किसी मनुष्य का क्रोध से छुटकारा पाना असंभव तो नहीं, कठिन अवश्य हो गया है। इस साधना में साधकों को अपनी योग्यता के अनुसार महीनों और वर्षों लग सकते हैं।

साधना का तरीका

क्रोध छोड़ने के लिए नीचे लिखे प्रश्नों को समझ कर उनके उत्तर पर विचार कीजिये और उन्हें एक कॉपी में लिखये–1. क्रोध क्या है ?

2. क्रोध कितने प्रकार का होता है ? 3. यह कब आता है ? 4. क्रोधी अपने मन में शत्रु के प्रति क्या विचार करता रहता है ? 5. क्रोधी क्या उत्पात करता है ? 6. क्रोधी मनुष्य के उदाहरण, 7. क्रोध से होने वाली हानियाँ, 8. क्रोध जीतने वालों के उदाहरण, 9. क्रोध जीतने के लाभ, 10. क्रोध पर विजय पाने के साधारण नियम, 11. क्रोध जीतने के विशेष नियम। शुरू के दस प्रश्नों के उत्तर कुछ महीनों तक प्रतिदिन पाँच-दस बार दोहराइये और अंतिम ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर कुछ वर्षो तक प्रतिदिन कम-से-कम पन्द्रह-बीस बार दोहराइये। क्रोध के जो संस्कार अनंत अनादिकाल से मनुष्य के साथी बनकर उसके अचेतन मन में गहराई तक बैठे हुए हैं उनको हटाने में महीनों और वर्षो लग जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

मनुष्य का चेतन मन अर्थात् उसका वर्तमान ज्ञान, क्रोध को बुरा समझकर छोडना चाहता है किन्तु उसका अचेतन मन अर्थात् पूर्व जन्मों का गलत अनुभव क्रोध को अपना हितकारी मित्र मानता है और उसे छोडना नहीं चाहता। अतः अचेतन मन को समझाने के लिए चेतन मन को महीनों और वर्षों साधना करनी पड़ती है। अचेतन मन को हमेशा के लिए निकालने के लिए क्रोध पर विजय पाने के उपाय बताने वाली पुस्तकें पढिए। इस संबंध में अन्य लेख भी पढ़िये। संतों के प्रवचन सुनिये, उनसे उपाय पूछिए। पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल जैसे मुनिजनों की पूर्ण समता को बताने वाले साहित्य पढिए। इस अध्ययन के साथ-साथ अपनी कॉपी में मुख्य-मुख्य बातें भी लिखिये। एकांत में बैठकर इस संबंध में चिंतन-मनन कीजिए। अपनी आत्मा में अनंतज्ञान और अनुभव भरा हुआ है। उससे कुछ उपाय पूछिए। फिर कुछ वाक्य या सूत्र प्रतिदिन स्वाध्याय के लिए बनाइये। उनका जप करिये। अधिक से अधिक समय उसके चिंतन मनन में दीजिए। इससे सफलता अवश्य मिलेगी।

क्रोध मुक्ति के उपाय

क्रोध के संबंध में कषाय मुक्ति प्रथम भाग, कषाय मुक्ति द्वितीय भाग में अच्छी सामग्री दी गई है। क्रोध छोडने के साधारण उपाय हैं–क्रोध आये तब ठंडा जल पीना, वहाँ से उठकर दूर चले जाना, मन को अच्छे लगने वाले काम करना, कहानी, लेख या पुस्तकों को पढने में लग जाना चाहिए। क्रोध को जीतने के विशेष उपाय निम्न हैं–दंड या दुःख अपने अशुभ कर्मों का मिलता है, परिवार या दूसरे लोग या रोग या दुर्घटनाएँ तो केवल निमित्त बनते हैं। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मेतार्य, मुनि उदाई की पूर्ण समता

घटनाओं का चिंतन करना चाहिए। शत्रु के अन्दर जो अच्छे गुण हैं जै
दान, शील, तप, समता भाव, मातृभक्ति, पितृभक्ति, सत्यभाषा, ईमानदा
ज्ञान, कार्यकुशलता आदि उन्हें देखने और उनकी प्रशंसा करने से शत्रु
और क्रोध नष्ट हो जाते हैं। मित्रता और समताभाव बढ़ते हैं। दूसरे में गु
देखने वाले मनुष्य में अहंभाव पैदा नहीं होता और उसमें विनय का गुण अ
जाता है।

यह सूत्र बार-बार दोहराइये—मेरे दुःख मिलने में निमित्त बनने वाल
पुरुष मेरा कर्म रोग काटने वाला परम उपकारी डॉक्टर है।

दुःखानुभति से मुक्ति

इस संसार में दुःख और भौतिक सुख की अनुभूति ही प्राणी क
संसार में बाँधकर सिद्ध पद पाने से रोकती है। इनमें दुःख की अनुभूति ह
मानव में आर्तध्यान उत्पन्न करती है। चक्रवर्ती नरेश की पटरानी अपने प
की मृत्यु पर छः मास तक विलाप और आर्तध्यान करके छठी नरक में पहुँ
जाती है। दुःख की अनुभूति साधारण मनुष्यों में क्रोध पैदा करके उस
अनर्थ करवा देती है। दंड मिलने पर या रोग या दुःख आने पर या किस
दुर्घटना के होने पर मनुष्य को—1. रोना नहीं चाहिए। 2. किसी पर क्रो
नहीं करना चाहिए। 3. हो सके तो उससे बचने का कोई अहिंसक उपा
करना चाहिए। 4. अपने पूर्व जन्मों या इस जन्म में किये हुए ज्ञात औ
अज्ञात अठारह पापों को याद करके उनका प्रायश्चित करना चाहिए क्योंवि
पश्चात्ताप करने से पहले किए हुए पाप हल्के हो जाते हैं या नष्ट हो जात
हैं। 5. सिद्धों का ध्यान करना चाहिए जिससे ताप और दुःख नष्ट होते ह
और सिद्ध पद प्राप्त होता है। 6. दान देने वालों, शील पालने वालों, तप
करने वालों और पूर्ण समता रखने वाले संतों की पूर्ण समता की घटनाओ
को याद करके उनकी प्रशंसा व अनुमोदना करनी चाहिए जिससे ताप औ
दुःख नष्ट होते हैं या 7. यह दुःख नहीं हैं, यह मेरे कर्मों की निर्जरा हो रह
है, निर्जरा हो रही है, निर्जरा हो रही है। इस सूत्र को बार-बार रटन
चाहिए व इसका जप करना चाहिए। इस सूत्र को रटने से दुःख की
अनुभूति भुलाई जा सकती है।

दुःखानुभूति पर विजय पाने के लिए आत्म-भावना जागृत की जाती
है जिसमें देह और आत्मा के भेद-ज्ञान में दृढ़ श्रद्धा पैदा हो जाती है।
इसका मूल सूत्र है—यह शरीर न मैं हूँ न मेरा है। इस ध्यान में सफल होने
वाला अपनी देह के मोह से मुक्त हो जाता है। वह अपने सिर पर अंगारे

रखे जाने पर भी पूर्ण समता बनाये रख सकता है। इस विषय में "ध्यान एक अनुशीलन" पुस्तक से जानकारी मिल सकेगी।

अहंकार से मुक्ति

अहंकार एक ऐसा अवगुण है जिससे अहंकारी का आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पतन होता रहा है। चापलूस लोग उसे ठगते और चूसते जाते हैं। समाज के अच्छे-अच्छे आदमी उससे घृणा करने लगते हैं और उस अहंकारी व्यक्ति को दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओं का फल मिलना रुक जाता है। मुनि बाहुबलीजी को अहंकार के कारण ही घोर तप करने के बाद भी केवलज्ञान मिलना रुका रहा।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को तार नहीं सकता, मार नहीं सकता, बना नहीं सकता, बिगाड़ नहीं सकता। दूसरों के कर्मों को बदल नहीं सकता, अपने स्वयं के निकाचित कर्मों से बच नहीं सकता। वह अपने धन से अपने दुःखों को दूर कर नहीं सकता। उसके पापोदय के समय उसका परिवार उसकी सहायता कर नहीं सकता और जब वह बीमार या वृद्ध हो जाता है तब वह स्वयं को भी सँभाल नहीं सकता। ऐसी स्थिति में किसी भी प्राणी के लिए किसी भी बात का अहंकार करना भयंकर भूल और निरर्थक है। बलवान मनुष्य नहीं होता है, बलवान होता है समय।

> रहिमन नर को कहा बड़ो, समय बड़ो बलवान।
> काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण।।

अर्थात्–गोपिकाएँ लूट ली गई और महाभारत का सबसे बड़ा विजेता अर्जुन खड़ा-खड़ा देखता रह गया। योग के अनुसार द्वारिका जलने लगी, यादव मरने लगे, श्रीकृष्ण के माता-पिता देवकी महारानी और श्री वासुदेवजी चिल्लाकर कहने लगे–"अरे कृष्ण ! अरे बलराम ! हमें बचाओ। उस समय के सबसे बड़े शक्तिशाली और सबसे अधिक बुद्धिमान श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने माता-पिता को बचाने का प्रयास भी किया किन्तु वे उन्हें बचा नहीं सके। वे खड़े-खड़े देखते ही रह गये।

तीर्थंकर महावीर के दो शिष्य मुनि सुनक्षत्र और मुनि सर्वानुभूति को उनकी आँखों के सामने ही गोशालक द्वारा तेजोलेश्या छोड़कर जला दिया गया। तीर्थंकर महावीर के पास शीतोलेश्या थी जो तेजोलेश्या को शांत कर सकती है, फिर भी दोनों संत बच नहीं पाए। शक्ति मनुष्य में नहीं होती, शक्ति होती है समय में, शुभ कर्मों में। मनुष्य को किसी भी बात का अहंकार करना भयंकर भूल है। अहंकार से बचने के लिए इस सूत्र का बार-बार

जाप करना चाहिए—"कोई भी मनुष्य दूसरों को तार नहीं सकता, मार नहीं सकता, कठिन समय पर स्वयं को भी सँभाल नहीं सकता, उसका अहंकार करना भूल है।"

दुर्भावना से मुक्ति

हमारे विचार या भाव जिनसे चाहे दूसरों का अहित नहीं भी होता हो किन्तु केवल हमारा ही अशुभ कर्म बंध होता हो तो भी वे विचार हमारे लिए दुर्भावना है। हमारी दुर्भावनाओं से हमें नरक और सद्भावनाओं से मोक्ष मिलता है।

दुर्भावना और सद्भावना की अज्ञात महान शक्ति का परिचय जैन आगमों में दिए गए मुनि प्रसन्नचन्द्र के वर्णन से मिलता है। एक बार वन में तप करते हुए मुनि प्रसन्नचन्द्र शुभध्यान में लीन होकर बैठे थे। राजा श्रेणिक के दो अनुचरों के वार्तालाप से कि उनके राज्य को और पुत्र को शत्रुओं से खतरा हो गया है। उन्हें शत्रुओं ने घेर रखा है, मुनि प्रसन्नचंद्र को मोह आ गया और वे वन में बैठे हुए ही ध्यान में सिर्फ भावना द्वारा ही शत्रुओं से युद्ध करके उनका संहार करने लगे। किसी एक मनुष्य को भी थोड़ी-सी चोट नहीं पहुँचाते हुए भी केवल मन के अशुभ परिणामों अर्थात् भाव हिंसा से उन्होंने सातवें नरक में पहुँचाने वाले अशुभ कर्मों का संग्रह कर लिया किन्तु उन कर्मों का बंध हो जाने के पहले ही किसी पूर्वकृत सुकृत से उनकी मोह-निद्रा भंग हो गयी और उन्होंने पश्चात्ताप की अग्नि से सब कर्मों को नष्ट करके उसी क्षण केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इससे सिद्ध होता है कि प्राणी क्षणभर के महान अशुभ कर्मों से नरक का और सच्चा पश्चात्ताप करने से मोक्ष का पथिक बन जाता है।

मोटे रूप में दुर्भावना तीन प्रकार की होती है। प्रथम प्रत्यक्ष दुर्भावना जिसमें कोई मनुष्य अपने शत्रु को गाली देता है, मारता-पीटता है। जुआ-चोरी, डकैती, शिकार हत्या आदि दुर्भावना के ही परिणाम है।

दूसरी दुर्भावना गुप्त दुर्भावना है। इसमें एक प्राणी दूसरे प्राणीयों को दुःख में फंसा देखकर खुशी मनाता है। हजारों मनुष्यों को मृत्यु के मुख में जाते हुए देखकर खुशी मनाने वाला तंदुल मत्स्य की भाँति सातवें नरक में जाने का कर्मबंध कर लेता है। हजारों मनुष्यों को युद्ध में मारे जाने की कामना करना भयंकर भाव हिंसा है।

तीसरे प्रकार की दुर्भावना अनुमोदना की दुर्भावना है। राम-रावण, कौरव-पांडव, चेड़ा-कोणिक एवं विश्व के महायुद्धों का वर्णन सुनते या पढ़ते

[illegible] समाचार पत्रों में दो समाचार पढ़कर प्राणी एक का समर्थन व अनुमोदन करता है और दूसरे का विरोध और उसकी निंदा करता है। इस प्रकार [illegible] लाखों मनुष्यों की हत्या का अनुमोदन करना घोर दुर्भावना है।

इन घटनाओं को पढ़ते हुए समझदार प्राणी मारकाट का अनुमोदन नहीं करते हुए मरने वालों के लिए अपने मन में अनुकम्पा भाव लाकर और मारने वालों को सद्बुद्धि देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ दुर्भावना की जगह सद्भावना भरता हुआ कर्मों की महान निर्जरा भी कर सकता है। दुर्भावना से बचने के लिए "सबका भला हो, सबका भलो हो" इस मंत्र का जाप करना चाहिए।

सुखानुभूति से मुक्ति

मनुष्य प्रायः अपने सभी काम या अधिकांश काम भौतिक या शारीरिक सुख प्राप्ति की भावना से करते है। वे महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाभयंकर युद्ध आदि के कर्मों में लगे रहते हैं। वे विशालकाय हिंसक कारखाने, बड़े-बड़े पशुवध घरों (कत्लघरों) के निर्माण की कल्पना और योजना बनाने में जुटे रहते है। अवसर मिलने पर उन्हें कार्य रूप में परिणित करते है। इस प्रकार वे महाभयंकर कर्म करते हैं जिससे कुछ लोग सातवें नरक में भी पहुंच जाते हैं। कुछ लोग इस तथ्य को जानते हुए भी इन कर्मों से बचने का विचार नहीं करते क्योंकि अनंत अनादिकाल से हिंसक कर्म करते रहते हैं और आज समाज में बड़े माने जाने व पूजे जाने वाले [illegible] लोगों को देखकर उनका अनुकरण करते हुए साधारण लोग भी इस ओर झुक जाते है। बहुत से साधारण लोग भी जो इन योजनाओं को कार्य रूप में परिणित नहीं कर सकते वे बाहर से किंचित मात्र हिंसा न करते हुए [illegible] कल्पना के द्वारा अपने मन के परिणामों को हिंसक बनाकर [illegible] कर्मों का बंध करके नरक में पहुंच जाते हैं।

[illegible] कहते है कि हम धन इसलिए कमाते हैं कि धन से सुख मिलता [illegible] यह भ्रम है। [illegible] धन होने के कारण मनुष्य को जितना [illegible] उससे कहीं ज्यादा अधिक दुख धनवानों को धन के कारण [illegible] समस्याओं से मिलता है। उसकी तुलना में [illegible] सुख [illegible] मिलते है। धनवान के अनेक शत्रु होते हैं, उनका [illegible] शरीर चिंता की आग में जलता रहता [illegible] मरने का [illegible] करते हैं। [illegible] सुख

से सो सका था ? क्या वह धन के लिए अर्द्धरात्रि में नींद को छोड़कर नदी में बहती हुई चंदन की लकड़ियों को इकट्ठा करने के लिए अपने घर से नदी के किनारे नहीं गया था जिससे कि वह धन इकट्ठा कर सके और सोने-हीरों का दूसरा बैल बनाने की निरर्थक योजना को सफल बना सके ? सुख तो वास्तव में संतोष, त्याग और साक्षी में है।

सुख मिलता है अपने किए हुए पुण्य कर्मोदय से, अन्यथा परिवार से भी नहीं मिलता। क्या पांडवों को कौरवों से कभी सुख मिला ? क्या उग्रसेन को कंस से कभी सुख मिला ? क्या कोणिक ने अपने पिता राजा श्रेणिक को कैद नहीं किया ? कुछ लोगों का कहना है कि जुआ, चोरी, डकैती, ठगी, मांस, मदिरा आदि में कुछ सुख की अनुभूति होती है किन्तु यह उनका भ्रम है। इससे समाज में वे अपना सम्मान खो देते हैं और जब वे पकड़े जाते हैं और उनको राज्य सरकार से दंड मिलता है तब उन्हें पता चलता है कि ये काम अच्छे हैं या बुरे। कुछ लोगों का कहना है कि शरीर ही सुख का साधन है। अतः शारीरिक सुख प्राप्ति के लिए गरिष्ट भोजन (पकवान) पूड़ी, कचौड़ी, अधिक खटाई और गरमागरम चाय आदि लेते हैं और भूख से अधिक भोजन करते हैं किन्तु अनियमित और अपच्य भोजन से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर में रोगों की उत्पत्ति होने लगती है, कमजोरी आने लगती है, गैस बनने लगती है और नींद भी उड़ जाती है और यह शरीर सुख का साधन नहीं रहता किन्तु दुःख-दर्द का भण्डार बन जाता है।

प्रथम तो यह सुख, सुख है ही नहीं, यह दुःख ही है। इनसे शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन होता है और यदि इन्हें कोई सुख मान भी ले तो भगवान महावीर का कथन है कि 'क्षण भर का सुख बहुत काल के दुःख का कारण बनता है।' जब तक मनुष्य दुखानुभूति और सुखानुभूति दोनों से मुक्त होकर धर्म-ध्यान या सिद्धों के ध्यान में लीन नहीं हो जाता तब तक सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुखानुभूति को छोड़ने के लिए बार-बार इस सूत्र को दोहराइये—'क्षण भर का सुख अशुभ कर्मों के बंध और बहुत काल के दुःखों का कारण बनता है।'

धन लोभ का त्याग

यह सत्य है कि आज इस अर्थयुग में अधिकांश लोग धन को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा और कीमती समझते हैं। धनवान बनने की कामना और कोशिश करते रहते हैं किन्तु यह भी सत्य है कि धन होते हुए भी अधिकांश लोग धन के कारण ही दुःख भी पाते हैं। धन लोभ के कारण

को कई कष्ट उठाने पडते हैं और उनका परिणाम भी भोगना पडता 1. धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे में डालते है। 2. अपने ... को खोते हैं। 3. भारी अशुभ कर्मों का बंध करके बाद में उनका बुरा ... भोगते हैं। 4. धन वालों की संतान अक्सर लडती रहती है। ...-कभी आलसी और चरित्रहीन भी बन जाता है। 6. धनवान धन की ... के लिए चिंतित रहते हैं। उन्हें डकैती आदि का भय रहता है। धनवानों के सगे-संबंधी उससे धन माँगते हैं और नहीं देने पर नाराज ...र उनके शत्रु बन जाते हैं। 8. धन से किसी के कर्मों को बदला नहीं सकता। 9. किसी की चिंता दूर नहीं की जा सकती। 10. असाध्य रोग मिटाया नहीं जा सकता। 11. सत्य को टाला नहीं जा सकता। 12. धन धर्म खरीदा नहीं जा सकता। 13. धन होने पर भी अशुभ कर्मों का उदय तो सुख की प्राप्ति नहीं होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्रायः ... देखे गये हैं। 14. धन पास में न होने पर भी संत, महात्मा, ...दार आदमी और संतोषी पुरुष सुखी देखे गये हैं और उनके लिये ...श्यकता पडने पर धनवान लोग लाखों रुपया खर्च करने के लिए तैयार ... है। अतः सुख धन से नहीं पुण्योदय से मिलता है।

...वार-मोह

परिवार के संबंध में तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं–परिवार में आज ...जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप में ...पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदि के रूप में जो जैसा संबंध जोड़ा है, ... संबंध पहले हमेशा नहीं रहता है और भविष्य में ही हमेशा नहीं ...। इतना ही नहीं बल्कि यह भी निश्चित नहीं है कि अन्य किसी रूप ... कोई संबंध भी रहेगा या नहीं। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक भाषा ... किसी प्राणी को अपने परिवार में कह सकते हैं, किन्तु निश्चय दृष्टि ... प्राणी अलग-अलग हैं, स्वतंत्र हैं और अकेले हैं। यहाँ कोई किसी ... है।

से सो सका था ? क्या वह धन के लिए अर्द्धरात्रि में नींद को छोड़कर नदी में बहती हुई चंदन की लकड़ियों को इकट्ठा करने के लिए अपने घर से नदी के किनारे नहीं गया था जिससे कि वह धन इकट्ठा कर सके और सोने-हीरों का दूसरा बैल बनाने की निरर्थक योजना को सफल बना सके ? सुख तो वास्तव में संतोष, त्याग और साक्षी में है।

सुख मिलता है अपने किए हुए पुण्य कर्मोदय से, अन्यथा परिवार से भी नहीं मिलता। क्या पांडवों को कौरवों से कभी सुख मिला ? क्या उग्रसेन को कंस से कभी सुख मिला ? क्या कोणिक ने अपने पिता राजा श्रेणिक को कैद नहीं किया ? कुछ लोगों का कहना है कि जुआ, चोरी, डकैती, ठगी, मांस, मदिरा आदि में कुछ सुख की अनुभूति होती है किन्तु यह उनका भ्रम है। इससे समाज में वे अपना सम्मान खो देते हैं और जब वे पकड़े जाते हैं और उनको राज्य सरकार से दंड मिलता है तब उन्हें पता चलता है कि ये काम अच्छे हैं या बुरे। कुछ लोगों का कहना है कि शरीर ही सुख का साधन है। अतः शारीरिक सुख प्राप्ति के लिए गरिष्ट भोजन (पकवान) पूड़ी, कचौड़ी, अधिक खटाई और गरमागरम चाय आदि लेते हैं और भूख से अधिक भोजन करते हैं किन्तु अनियमित और अपच्य भोजन से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और शरीर में रोगों की उत्पत्ति होने लगती है, कमजोरी आने लगती है, गैस बनने लगती है और नींद भी उड़ जाती है और यह शरीर सुख का साधन नहीं रहता किन्तु दुःख-दर्द का भण्डार बन जाता है।

प्रथम तो यह सुख, सुख है ही नहीं, यह दुःख ही है। इनसे शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन होता है और यदि इन्हें कोई सुख मान भी ले तो भगवान महावीर का कथन है कि 'क्षण भर का सुख बहुत काल के दुःख का कारण बनता है।' जब तक मनुष्य दुखानुभूति और सुखानुभूति दोनों से मुक्त होकर धर्म-ध्यान या सिद्धों के ध्यान में लीन नहीं हो जाता तब तक सिद्ध पद की प्राप्ति नहीं हो सकती। सुखानुभूति को छोड़ने के लिए बार-बार इस सूत्र को दोहराइये–'क्षण भर का सुख अशुभ कर्मो के बंध और बहुत काल के दुःखों का कारण बनता है।'

धन लोभ का त्याग

यह सत्य है कि आज इस अर्थयुग में अधिकांश लोग धन को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा और कीमती समझते हैं। धनवान बनने की कामना और कोशिश करते रहते हैं किन्तु यह भी सत्य है कि धन होते हुए भी अधिकांश लोग धन के कारण ही दुःख भी पाते हैं। धन लोभ के कारण

मनुष्य को कई कष्ट उठाने पड़ते हैं और उनका परिणाम भी भोगना पड़ता है। 1. धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे में डालते हैं। 2. अपने स्वास्थ्य को खोते हैं। 3. भारी अशुभ कर्मो का बंध करके बाद में उनका बुरा फल भोगते हैं। 4. धन वालों की संतान अक्सर लड़ती रहती है। 5. कभी-कभी आलसी और चरित्रहीन भी बन जाता है। 6. धनवान धन की रक्षा के लिए चिंतित रहते हैं। उन्हें डकैती आदि का भय रहता है। 7. धनवानों के सगे-संबंधी उससे धन माँगते हैं और नहीं देने पर नाराज होकर उनके शत्रु बन जाते हैं। 8. धन से किसी के कर्मो को बदला नहीं जा सकता। 9. किसी की चिंता दूर नहीं की जा सकती। 10. असाध्य रोग को मिटाया नहीं जा सकता। 11. सत्य को टाला नहीं जा सकता। 12. धन से धर्म खरीदा नहीं जा सकता। 13. धन होने पर भी अशुभ कर्मो का उदय हो तो सुख की प्राप्ति नहीं होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्रायः दुःखी होते देखे गये हैं। 14. धन पास में न होने पर भी संत, महात्मा, ईमानदार आदमी और संतोषी पुरुष सुखी देखे गये हैं और उनके लिये आवश्यकता पड़ने पर धनवान लोग लाखों रुपया खर्च करने के लिए तैयार रहते हैं। अतः सुख धन से नहीं पुण्योदय से मिलता है।

परिवार-मोह

परिवार के संबंध में तीन बातें ध्यान देने योग्य है—परिवार में आज जिस-जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप में पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदि के रूप में जो जैसा संबंध जोड़ा है, वह वैसा संबंध पहले हमेशा नहीं रहता है और भविष्य में ही हमेशा नहीं रहेगा। इतना ही नहीं बल्कि यह भी निश्चित नहीं है कि अन्य किसी रूप में दूसरा कोई संबंध भी रहेगा या नहीं। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक भाषा में हम किसी प्राणी को अपने परिवार में कह सकते हैं, किन्तु निश्चय दृष्टि से सभी प्राणी अलग-अलग है, स्वतंत्र है और अकेले हैं। यहाँ कोई किसी का नहीं है।

द्वितीय—किसी भी प्राणी को उसके शुभ या अशुभ कर्मों के अनुसार जो सुख या दुःख मिलता है उसमें निमित्त बनने के अलावा उसे बदलना या घटाना-बढ़ाना परिवार के किसी भी सदस्य अथवा तीर्थंकर के हाथ में नहीं है। अतः 'कर्म-फल भोग' दृष्टि से भी सब प्राणी अलग है, स्वतंत्र है, अकेले हैं।

तृतीय—प्राणी अपने पारस्परिक ऋण को चुकाने या वसूल करने के लिए परिवार में जन्म लेकर या विवाह-शादी करके उस परिवार के सदस्य वनते हैं और अपने कर्ज को चुकाकर या वसूल करके उस परिवार से दूर हो जाते हैं। लेनदारों और देनदारों के इस अस्थायी जमाव को अपना परिवार समझना, उससे मोह रखना और अपने स्वार्थ की पूर्ति की आशा करना भूल है। संसार में कोई किसी का नहीं है।

सच्चा सुख या दुःख परिवार से या धन से या इस भौतिक शरीर से नहीं मिलता, वह तो अपने शुभ या अशुभ कर्मों से मिलता है।

इच्छाओं का निरोध

संसार में सुख की इच्छा ही सब दुःखों का कारण है। यदि सुख की इच्छा ही न हो तो दुःखानुभूति भी नहीं होगी। मनुष्य दुःख से भागने की इच्छा करता है किन्तु कर्मों के फल से कोई बच नहीं सकता है। दुःख से भागने की इच्छा निरर्थक है। पुण्योदय से सुख की प्राप्ति या सुख की वर्षा होने लगती है। दुःखों का अंत करने का सर्वोत्तम उपाय है—इच्छाओं को रोकना। इच्छा निरोध ही तप है। इच्छा से मुक्ति ही संसार से मुक्ति है।

माया मिथ्या की दृष्टि

कषाय के चार भेद हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चारों से मुक्त होने पर ही प्राणी कषाय मुक्त होता है। माया का अर्थ है—छल, कपट, धोखा। माया तीन प्रकार से होती है—मन से, वचन से और काया से।

दूसरे को धोखा देने, ठगने और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जो कपट भरे विचार मन में किये जाते हैं वह मन की माया है। जव कोई प्राणी अपना काम वनाने के लिए जान-वूझकर ऐसे शव्दों और वाक्यों का प्रयोग करता है जिससे वे सुनने वाला, वोलने वाले के मन के कपट को नहीं समझ सके और सही काम छोड़कर गलत काम करदे जिससे कि कपट भाषा वोलने वाले का काम सिद्ध हो जाये तव यह माया भरी भाषा या वचन की माया कहलाती है।

जव कोई मनुष्य अपने शरीर से जान-वूझकर इस प्रकार की चेष्टा करता है जिससे कि देखने वाला उसके कपट को समझ न सके और ऐसे कार्य कर दे जिससे कि कपट करने वालों को लाभ हो, तव यह काया की माया कहलाती है। इस प्रकार मन से, वचन से, काया से माया अर्थात् कपट करने वाला सम्यक् दृष्टि नहीं रहता, वह मिथ्या दृष्टि वन जाता है।

मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले को माया छोड़कर मन, वचन और काया से सत्य को जीवन में अपनाना चाहिए। सत्य में महान शक्ति है। साधारण मनुष्य से देवताओं में, देवताओं से तपस्वी में और तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। इसी कारण सत्यवादी महाराज हरिशचन्द्र ने तपस्वी मुनि विश्वामित्र द्वारा तप-बल से बांधी गई अप्सराओं (देवताओं) के बंधन काटे थे। सत्य ही भगवान है। सत्य ही सबसे बड़ा तप है। सत्यवादी को स्वर्ग के देवता भी प्रेम से देखते हैं और उसकी सहायता करते हैं।

सत्य भाषा के पाँच गुण हैं—हित-हितकारी, मित (कम बोलना), प्रिय, सत्य, निरवद्य (जो हिंसात्मक नहीं है)।

विकथा

बहुत से मनुष्य अपना अधिकांश समय इधर-उधर की व्यर्थ की बातों में या विकथा में लगा देते हैं जिससे अनावश्यक बातों की आलोचना होती है। इसमें अनेक बार हमारे अन्दर ज्ञान की कमी के कारण अशुभ बातों की अनुमोदना और शुभ की निन्दा हो जाती है। हम व्यर्थ ही अशुभ कर्मों का बंध कर लेते हैं। कई लोग दूसरे स्त्री-पुरुषों की विकथा, देश की विकथा, या राज्य की विकथा करते हैं जिससे उनका कोई संबंध नहीं होता, जिसमें उनका ज्ञान भी नहीं होता। इससे वे अपने वार्तालाप से गलत लोकमत भी तैयार कर लेते हैं, जिससे हजारों मनुष्यों का अहित भी हो सकता है। वे अशुभ कर्मों का बंध करते हैं। अतः लोगों को विकथा से बचकर, दान, शील, तप और समता भाव (क्षमा) की घटनाओं और कथाओं का स्वाध्याय, आत्मध्यान और सिद्धों के ध्यान में अपना समय लगाना चाहिए जिससे पाप नष्ट हो, पुण्य की प्राप्ति हो और सिद्ध पद भी प्राप्त हो।

मोह पर चोट

आठों कर्मों में मोहनीय कर्म सबसे प्रबल और प्रधान है। इस कर्म ने गौतम गणधर के मन में तीर्थंकर महावीर के प्रति प्रशस्त राग पैदा करके कुछ समय तक उनके केवलज्ञान प्राप्ति के काम को रोक दिया। राग चाहे प्रशस्त हो या अप्रशस्त, वह आखिर है तो राग ही। मरुदेवी माता ने कोई त्याग पच्चखाण नहीं किया था। कोई भी व्रत धारण नहीं किया था। फिर भी उनको हाथी के ऊपर बैठे हुए ही और गृहस्थ वेश में ही केवल मोह के

टूटते ही उन्हें वहीं केवलज्ञान और सिद्ध पद प्राप्त हो गया। सिद्ध पद प्राप्ति के लिए मोह का टूटना आवश्यक है।

हमारे मन में परिवार के प्रति और परिवार वालों के मन में हमारे प्रति मोह उत्पन्न होने का प्रथम कारण यह है कि अनंत अनादिकाल से हमारे अचेतन मन ने मोह को अपना उपकारी और सहायक मित्र मानकर इसे अपने अन्दर स्थान दे दिया है। मोह अब इतना मजबूत बन चुका है कि चेतन मन के द्वारा अचेतन मन को यह समझना कठिन हो रहा है कि अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। यह मोह अपना शत्रु है, इसे छोड़कर मोक्ष पाने से वहाँ आनंद ही आनंद मिलेगा। मोह का दूसरा कारण यह है कि हमारा ज्ञान अल्प है और हम दूसरों के मन की बात भी नहीं जानते। फिर भी हमारे अज्ञान, हमारी आदत और राग-द्वेष के कारण उनको दो भागों में बाँट देते हैं–भले और बुरे।

मोह को मिटाने के लिए हमें भले और बुरे बँटवारे को बंद करके, बड़े और छोटे बँटवारे को बंद करके केवल एक विचार रखना चाहिए कि सभी लोग आत्माएँ हैं और केवल आत्माएँ ही, इससे राग-द्वेष और मोह की दृष्टि मिट जावेगी।

परिवार के लोगों को हम कहते हैं कि ये मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है ऐसा, कहना और समझना भी मोह बढ़ाना है। यहाँ पर भी हमें केवल यही विचार रखना चाहिए कि कोई किसी का न हुआ है न होगा। सब आत्माएँ अलग-अलग आत्माएँ हैं। एक दूसरे से स्वतंत्र है, कोई किसी का नहीं है।

चौथा कारण हम मोह भाव के कारण अपने परिवार के दुःख को मिटाने के लिए चिंता करते हैं और अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित सभी प्रकार के काम करते हैं किन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि किसी का दुःख दूर करने और उसे सुख पहुँचाने की शक्ति केवल शुभकर्मों में ही है। इसलिए हमें चिंता करने और अनुचित काम करने से बचना चाहिए। पाँचवां कारण यह है कि पूर्व जन्मों का कर्ज चुकाने के लिए हम लोग परिवार में आते हैं। कर्जों को अनुकम्पा भाव से सम्यक् सेवा द्वारा चुकाते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हम सब लोग आत्माएँ हैं और सभी मनुष्य आत्माएँ हैं और अलग-अलग आत्माएँ। यह अलग-अलग होने की दृष्टि मोह को दूर करेगी।

सम्यक् सेवा का अर्थ यह है कि हमारे किसी काम से दूसरों के निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु सहायता मिले। अनुकम्पा भाव या करुणाभाव या दयाभाव या शुद्धभाव का अर्थ है कि हमारे शरीर के हलन-चलन से, खाने-पीने से, उठने-बैठने से, आने-जाने से या हमारे वचनों से, वार्तालाप से या हमारे मन के विचारों से या भावनाओं से दूसरों को 1. दुःख नहीं पहुँचे, 2. उनका पतन नहीं हो, 3. उनको सुख मिले और 4. सुख के साथ-साथ उनकी आत्म-उन्नति हो। इन चार बातों का ध्यान रखकर सावधानीपूर्वक शरीर से, वचन से या मन से जो काम किया जाता है वह सेवा कार्य कहलाता है। वह सेवा अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सेवा कहलाती है। यह सेवा महान तप है और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। इससे मोह टूट जाता है। मोह को तोड़ने के लिए नीचे लिखे पाँच सूत्रों को बार-बार दिन में कई बार दोहराइये, इनके अर्थ का चिंतन कीजिये, संतों से इस संबंध में चर्चा कीजिए और स्लेट या कॉपी में इन्हें बार-बार लिखिये। 1. मोह छोड़ो मोक्ष मिलेगा। 2. सभी जीव आत्मा है, केवल आत्मा है। 3. कोई किसी का हमेशा न हुआ न होगा। 4. दुःख दूर करने और सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मों में ही है, परिवार के हाथ में नहीं है, अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सम्यक् सेवा ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
चिंता मोह व्यर्थ में ही करता।।
कोई किसी का हुआ न होगा।
कर्म साथ नहीं रहने देगा।।

भावना की शक्ति

1. भावना में अनंत शक्ति है। हम अपने शरीर से जितनी हिंसा और पाप करते हैं उससे हजारों लाखों गुणा अधिक हिंसा और पाप किसी जीव को दुःख दिए बिना भी केवल अपने विचारों और गलत मानसिक परिणामों से कर लेते हैं।

2. एक मनुष्य पाँच प्राणियों को मारने का विचार दिन में 10 बार करता है, 20 दिन तक इस विचार को करता रहता है तो चाहे वह एक भी प्राणी को नहीं मारे किन्तु इस भावना से ही वह 5X10X20=1000 (एक हजार) प्राणियों की हत्या के पाप का भागी बन जाता है।

3. कालसौरिक कसाई को अकेले को कमरे में बंद कर दिया गया। वहाँ एक भी भैंसा नहीं था। उसने अपने शरीर के मैल से 500 भैंसे वनाए और उन भैंसो को मार दिया इससे उसे 500 भैंसे मारने की हिंसा का पाप लगा। पश्चात्ताप में भारी अशुभ कर्मों को काटने की महान शक्ति है।

4. मुनि प्रसन्नचन्द्र ने सातवें नरक में पहुँचाने वाले भारी अशुभ कर्मों को क्षण भर में काटकर केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनि चंडरुद्राचार्य ने रात्रि में अपने नवदीक्षित शिष्य के कंधे पर वैठे हुए, विहार करते हुए उसे केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भी लातों और मुक्कों से पीटा। किन्तु जब उन्हें शिष्य को केवलज्ञान प्राप्त होने की बात ज्ञात हुई तो वे शिष्य के कंधे से नीचे उतर कर उससे क्षमा माँगकर पश्चात्ताप करने लगे। इस पश्चात्ताप से उनके भारी अशुभ कर्म कट गये और उन्हें क्षण भर में केवलज्ञान प्राप्त हो गया। मुनि करगडूक ने जो संवत्सरी के दिन भी उपवास नहीं कर सकते थे भोजन लाने के कारण दूसरे संतों की भर्त्सना सुनी और पश्चात्ताप किया। इस पश्चात्ताप से उन्हें भी क्षण भर में केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अपने पापों को काटने के लिए प्राणी को अपने इस अज्ञात पापों का पश्चात्ताप करना चाहिए।

अनुमोदना

पश्चात्ताप की भाँति अनुमोदना में भी महान शक्ति है। सुमुख गाथापति द्वारा मुनि सुदत्त को उनके मासखमण के पारणे पर दिए गए सुपात्र दान की अनुमोदना करने वाले भी केवल अनुमोदना करने से तिर गए। इसी प्रकार विजय सेठ, विजया सेठानी की और शील व्रतधारी सेठ सुदर्शन के शील पालन की घटनाओं की अनुमोदना करने वाले भी शीलव्रतधारी बनने में समर्थ होकर संसार सागर से तिर जाते हैं। इसी प्रकार काली, सुकाली, महाकाली, महारानियों की तपस्या की अनुमोदना करने वाले मुफ्त में ही कष्ट उठाए बिना ही तपस्या का फल पाने के भागी बन जाते हैं।

किसी गुण की अनुमोदना करने वाले केवल अनुमोदन के कारण अपने भारी अशुभ कर्मों की निर्जरा भी करते हैं।

मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी आदि की समता भावना की अनुमोदना करने वाले लोग अपने भारी अशुभ कर्मों की निर्जरा किसी कष्ट के बिना कर डालते हैं।

शुभ की अनुमोदना आत्मा के उत्थान का कारण बनती है, किन्तु अशुभ की अनुमोदना महापरिग्रह, महाआरंभ, महाहिंसा, महायुद्ध, कसाई खानों का खोलना, महाहिंसक कारखानों आदि अशुभ कार्यों का अशुभ अनुमोदन प्राणियों के पतन का कारण बनता है। प्राणियों को दुःख देने और उनकी हिंसा कराने वाले कार्यों की अनुमोदना से हमेशा बचना चाहिए। कुछ आदमी दूसरों को खुश करने के लिए बड़े-बड़े मकानों और हिंसात्मक कारखानों की योजनाओं का अनुमोदन करते हैं वे अपने अज्ञान के कारण अशुभ कर्मों का बंध करते हैं।

हत्या के पाप से अलग

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उधारण हारो।
गौ, ब्राह्मण, प्रमदा, बालक की मोटी हत्या चारों।
तेहनों करन हार प्रभु भजने, होत हत्या से न्यारो
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।
पाप पराल को पुंज बन्यो अति, मानो मेरु आकारो।
सो तुम नाम हुतासन सेती सहजे प्रज्ज्वलत सारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।

प्रभु के भजन से, सिद्धों के ध्यान से मुनि दृढ़ प्रहारी गाय, ब्राह्मण, स्त्री और बालक इन चारों की हत्या के पाप से न्यारा हो गया। सिद्धों के ध्यान में ऐसी महान शक्ति है। मुनि दृढ़ प्रहारी अनुकूल के राग से और प्रतिकूल के द्वेष से अलग होकर सिद्धों के ध्यान में लग गये और उन्होंने पाँच महीने के अन्दर ही भूख-प्यास, शीत-ताप और लोगों से मिलने वाला दंड-त्रास समतापूर्वक सहकर और सिद्धों के ध्यान में लीन रहकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

सिद्धों का ध्यान

णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं
णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं

ऊपर लिखे हुए नवकार मंत्र के पद को मन-मन में या धीमी-धीमी आवाज में बोलकर बार-बार दोहराते हुए भक्ति और विनयपूर्वक हाथ जोड़ते हुए सिर झुकाते हुए और नमस्कार करते हुए सिद्धों का ध्यान किया जाता है।

मनुष्यलोक से ऊपर, देवलोक से ऊपर, सिद्धशिला से ऊपर लोक के अग्रभाग में जहाँ लोक और अलोक की सीमाएँ मिलती हैं वहाँ बहुत बड़ा, लम्बा-चौड़ा खुला स्थान है। वहाँ पर अटल अवगाहना प्राप्त करके बिना किसी आधार से सिद्ध भगवान आनन्दघन अवस्था में स्थिर हैं। उनको भक्तिभाव पूर्वक हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर, नमस्कार करते हुए और नीचे लिखे अनुसार उनके गुणों का बार-बार स्मरण करते हुए उनका ध्यान किया जा सकता है।

सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान
आत्मद्रव्य है, अतिसूक्ष्म है।
अगम अगोचर, अजर अमर है।
वे सर्वज्ञ हैं, शक्तिमान हैं।
आनन्दघन है, निर्विकार है।
सब सिद्धों को नमस्कार है।
नमस्कार है, नमस्कार है।
अनंतज्ञान है, अरु दर्शन है।
अनन्त सुख है, अनन्त वीर्य है।
क्षायिक समकित अमूर्तभाव है।
अटल अवगाहना अगुरु लघु है।
सब सिद्धों को नमस्कार है।

सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनके शरीर नहीं है। वे केवल आत्मद्रव्य है। वे दिखाई नहीं देते। वहाँ हमारी पहुँच नहीं है। वे हमारी इन्द्रियों से देखे नहीं जा सकते हैं। शस्त्र उन्हें काट नहीं सकते। पावक उन्हें जला नहीं सकती। वे भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की घटनाओं को जानते हैं, मनुष्यों के मन की बात जानते हैं। उन्हें संसार का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त है। वे सर्वज्ञ हैं और साथ ही पूर्ण शक्तिमान हैं। उन्हें कोई इच्छा, चिंता या भय नहीं है। इसीलिए वे आनन्दघन हैं। वे क्रोध, मान, माया, मोह, इच्छा, दुःखभावना या दुर्भावना से मुक्त हैं। वे निर्विकार हैं। उन सव सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

कुछ लोग सिद्धों का ध्यान इस प्रकार भी करते हैं–भगवान आदिनाथ के परिवार के प्रायः सभी सदस्य सिद्ध हो गये। वे लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं। किन्तु हमें दिखाई नहीं देते क्योंकि वे अरूपी हैं। मैं उन सव सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

संसार में जितने भी तीर्थंकर हुए हैं उन सबने सिद्ध पद पाया है। किन्तु वे अमूर्त होने के कारण देखे नहीं जा सकते। मैं उन सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

भेद--सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं। तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा, तीर्थंकर सिद्धा, अतीर्थंकर सिद्धा, स्वयं बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा, बुद्ध बोधि सिद्धा, स्त्रीलिंग सिद्धा, पुरुष लिंग सिद्धा, नपुंसकलिंग सिद्धा, स्वलिंग सिद्धा, अन्य सिद्धा, गृहस्थलिंग सिद्धा, एक सिद्धा अनेक सिद्धा।

अन्यलिंग सिद्धा बताता है कि जैन धर्म में पक्षपात नहीं है और यह द्रव्य क्रिया की अपेक्षा भाव क्रिया को प्रधानता देता है। अच्छी भावना भाने वाले अन्य धर्म के लोग भी सिद्ध भगवान बन सकते हैं। गृहस्थ सिद्धा संकेत करता है कि सिर्फ साधु ही सिद्ध नहीं बनते, किन्तु गृहस्थ भी भाव साधु बनकर सिद्ध भगवान बनते हैं। जैसे कूर्मा पुत्र केवली को भी गृहस्थ दशा में केवलज्ञान प्राप्त हुआ था और वह छः महीने तक गृहस्थ पोशाक में ही रहा इसलिए कि उनकी माता को दुःख न हो। स्वयं बुद्ध बतलाता है कि विशुद्ध आत्म चिंतन करने वाला और चौबीसों घंटे आनन्दघन रहने वाला क्रोध, काम, मद, मोह छोड़ करके दूसरे उपदेशक से उपदेश पाए बिना भी केवल अपने-आप ज्ञाप प्राप्त करके सिद्ध बन सकता है।

आप ये चिंतन भी करिए कि इन सिद्धों ने अपने मनुष्य भव के जीवन में अलग-अलग प्रमुखता दी। किसी ने दान को प्रमुखता दी, किसी ने शील को प्रमुखता दी--जैसे सेठ सुदर्शन, विजय सेठ, विजया सेठानी। किसी ने तप को प्रमुखता दी--जैसे मल्लिनाथ भगवान, काली रानी आदि। किसी ने समता भाव (क्षमा) को प्रमुखता दी--जैसे मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य। किसी ने अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करके मुक्ति प्राप्त की। ऐसे सिद्धों का ध्यान करने से, उनके गुणों का अनुमोदन करने से आप उन्हें अपने जीवन में उतारने की प्रेरणा पाएंगे।

समस्या--कुछ लोग कहते हैं कि किसी पदार्थ या प्राणी का ध्यान करने के लिए उस पदार्थ या प्राणी को या उसके मूर्त रूप को, रंग और अंग आदि को या उसकी तस्वीर को देखना आवश्यक है। इसके बिना उन पर दृष्टि जमाना और ध्यान को केन्द्रित करना कठिन है। सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनका आत्म द्रव्य दिखाई नहीं देता। इसलिए सिद्धों का ध्यान करते समय हमारा मन इधर-उधर जाता रहता है और ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता।

समाधान—वे लोग इस समस्या का समाधान इस प्रकार करते हैं—वे कहते हैं कि जैन आगमों में सिद्धों का जो वर्णन दिया गया है उसको पढ़कर और कल्पना का सहारा लेकर सिद्ध भगवान की कल्पित मूर्त रूप की आकृति मन में बनाई जा सकती है और वह आकृति बहुत कुछ मानव की आकृति जैसी होनी चाहिए क्योंकि सिद्ध बनने के ठीक पहले वाले अन्तिम मानव भव के शरीर के आत्म-प्रदेशों का संकोच और विस्तार बंद हो जाता है। वे आत्म-प्रदेश ज्यों के त्यों वैसे ही रह जाते हैं जैसे कि वे अन्तिम समय में मानव के शरीर में थे। इसलिए उनकी आकृति में कोई विशेष अन्तर नहीं आता।

दूसरी बात यह है कि सिद्ध भगवान अटल अवगाहना प्राप्त कर लेते हैं और अवगाहना भी उनके अन्तिम मानव भव वाले शरीर की अवगाहना के (दो तिहाई) भाग के बराबर रह जाती है। क्योंकि (एक तिहाई) भाग जो पोलार (आकाश-प्रदेश) का था वह निकल जाता है। इस प्रकार इन दो तथ्यों के सहारे उनके कल्पित मूर्त रूप की कल्पना करके उस पर दृष्टि जमाना और ध्यान केन्द्रित हो जाना सम्भव हो जाता है। कुछ लोग सिद्धों का ध्यान करते समय सफेद रंग की कल्पना करके उस पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह देते हैं।

इस प्रकार कल्पित मूर्त रूप बनाना या सफेद रंग देखना कहाँ तक उचित या लाभप्रद है ? इसका निर्णय या तो शास्त्रों के मर्म के ज्ञाता, पण्डित या बहुत अनुभव वाले ध्यान योगी ही कर सकते हैं किन्तु यह बात निर्विवाद है कि गुणों की प्राप्ति के लिए तो गुणों का ध्यान ही लाभप्रद और आवश्यक है। शरीर को देखकर उसका ध्यान करने में राग उत्पन्न होने की भी सम्भावना बनी रहती है। भगवान महावीर के अति निकट रहने वाले उनके परमभक्त गौतम स्वामी को भी भगवान महावीर के प्रति प्रशस्त राग था, जो उनके केवलज्ञान प्राप्ति में जब तक भगवान महावीर मोक्ष नहीं पधारे, बाधक बना रहा।

आँखों से देखना, एक क्रिया है, महत्त्व आँखों से देखने का नहीं होता किन्तु उस देखने के साथ-साथ जो भाव जुड़े रहते हैं उन्हीं का महत्त्व बना रहता है। संगमदेव भगवान महावीर के साथ छः महीने तक रहा और उसको भगवान महावीर के साक्षात् दर्शन होते रहे किन्तु संगमदेव की दृष्टि में द्वेष और भावना में विकार था इसलिए उसके कर्मों की निर्जरा होने के स्थान पर नवीन भयंकर कर्मों का बंध हुआ। गोशालक भी भगवान महावीर

के साथ बहुत समय तक रहा। उसे भी उनके दर्शन होते रहे किन्तु इन दर्शनों से उसके कर्मों का नाश नहीं हुआ। राजा श्रेणिक के साथ उसके सारथी ने भी भगवान महावीर और बहुत से संतों के दर्शन सिर्फ सभ्यता की मर्यादा निभाने के लिए भक्ति के बिना किए। जहाँ महाराज श्रेणिक के छः नारकीय कर्म नष्ट हुए वहाँ उनके सारथी के कुछ भी कर्म नष्ट नहीं हुए। उसे केवल काया कष्ट ही हुआ। केवल दर्शनों से ही भक्ति के बिना दर्शन करने वाले के कर्मों का नाश नहीं होता किन्तु उसके साथ जुड़ी हुई भावना, विनय भक्ति गुणानुराग आदि के कारण ही कर्मों की निर्जरा होती है। अतः ध्यान में महत्त्व इस बात का नहीं है कि हमें सिद्ध भगवान के कल्पित रूप के दर्शन होते हैं या नहीं। किन्तु महत्त्व इस बात का है कि हम सिद्ध भगवान के या जिन संतों या महापुरुषों के दर्शन करते हैं या नहीं या हमारे ऊँचे अचेतन मन में उनके गुणों के प्रति गुणानुराग है या नहीं।

यह भी सत्य है कि सिद्ध भगवान के आत्मद्रव्य को कल्पना के द्वारा देखने के प्रयास के बिना केवल उनके गुणों के चिंतन का अभ्यास कुछ दिनों तक किया जावे तो अरूपी सिद्धों के गुणों का चिंतन और ध्यान सम्भव हो सकेगा।

सिद्धों के ध्यान से हमारे अन्दर जो विकार हैं वे दूर होते हैं और हमें गुणों की प्राप्ति होती है। हमारे अशुभ कर्म, पाप रोग और दुःख नष्ट होते हैं और हमें सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

सेवा के नौ भेद

किसी भी कार्य को अच्छे या बुरे परिणामों से अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। उसको अच्छा या बुरा बताने की कसौटी है—उस कार्यकर्ता के मन में परिणाम यानी भावना। इस दृष्टि से सेवा के नौ प्रकार हो सकते हैं। उसमें प्रथम तीन सेवाभावी उत्तम दूसरे तीन मध्यम और अन्तिम तीन अधम प्रकृति वाले कहे जा सकते हैं।

1. उत्तम (क) कर्तव्य भावना

कर्तव्य भावना से प्राणी मात्र की सेवा करने वाले सर्वोत्तम सेवाभावी कहे जा सकते हैं। उन्हें किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती, कामना नहीं होती। वे संसार को सही मोक्ष का मार्ग दिखाते हैं। इस श्रेणी में तीर्थंकर और पूर्ण त्यागी महापुरुष आते हैं। यह कर्तव्य भावना ही सर्वोत्तम सेवा भावना है।

(ख) ऋण मुक्ति भावना

इसमें वे व्यक्ति आते हैं जो वर्तमान और भूतकाल के बहुत से ज्ञात और अज्ञात व्यक्तियों के और समाज के उपकारों से अपने-आप को उपकृत मानते हैं और स्वयं को उनका ऋणी मानते हैं। इसीलिए वे प्राणी मात्र की सेवा निष्काम भाव से मान और अपमान, जीवन-मरण का ख्याल किए बिना अपना तन, मन, धन तीनों लगाकर दूसरों की सच्ची सेवा और उनका आत्महित करते हैं। इसमें त्यागी संत और निर्लोभी सेवा करने वाले व्यक्ति आते हैं। श्री जवाहराचार्य द्वारा लिखी गई मघा की कथा में यह बताया गया है कि वह निष्काम भाव से समाज की सेवा करता था। जब धूर्त राजकर्मचारियों ने राजा से उसकी शिकायत की और राजा ने उस मघा नामक व्यक्ति और उसके साथियों को कुचलने के लिए तीन बार मतवाले हाथी छोड़े तो तीनों ही बार वे हाथी उनको सूँघ-सूँघ कर ही वापस लौट गये। उन्हें कुचला नहीं। ऐसे समाज सेवियों को मनुष्य तो क्या पशु भी हानि नहीं पहुँचाते।

(ग) पुण्य कमाने की भावना

इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो अपने धन को औषधालय, अनाथालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, पाठशाला, ज्ञानशाला, पुस्तकालय, कुष्ठरोगी आश्रम आदि खुलवाने में लगाते हैं या इनमें चंदा देते हैं और उनमें सेवा कार्य करते हैं।

2. मध्यम (क) दबाव या भय

सेवा करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। उनके मन में सेवा करने की इतनी भावना नहीं है जितनी की उस व्यक्ति को खुश रखने की भावना है, जिसके दबाव से या भय से वे सेवाकार्य में लगे हैं।

(ख) कीर्ति प्राप्ति की भावना

दान देने वाले या सेवाकार्य करने वाला या पाठशाला, औषधशाला खुलवाने वाले इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं। वे संस्थाओं पर अपना नाम लिखवाते हैं और दूसरों की नजरों में अपने आपको बड़ा आदमी दिखाने की कोशिश करते हैं। यह एक प्रकार का अहंकार प्रदर्शन है। इससे अहंकार को पोषण मिलता है। अहंकार इतना भयंकर विकार और अवगुण है जो बाहुबलीजी जैसे महातपस्वी को भी केवलज्ञान प्राप्त करने से रोक देता है।

अहंकार से अच्छी क्रियाओं का फल भी तुच्छ-सा बन जाता है। क्रोध के समान यह भी मनुष्य को ऊँचा नहीं उठने देता। यदि समाज के लिए दान देने वालों में यश प्राप्ति की भावना मिट जाय और निःस्वार्थ भाव से, निष्काम भाव से मान-अपमान और लाभ-हानि का ख्याल न रखकर, वे सेवाकार्य में लगे रहें तो वे मध्यम से निकल कर उत्तम श्रेणी में आ जाते हैं।

(ग) लोभ अर्थात् धन लाभ

सम्पत्ति कमाने की भावना से सेवाकार्य करने वाले इस श्रेणी में आते हैं। वे चाहते हैं कि हम समाज सेवा के लिए कुछ धन लगावें और बड़े-बड़े राजकर्मचारियों और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की नजरों में ऊँचे हो जावें तो इससे हमें व्यापार का लाइसेंस मिल जावेगा या कारखाने के लिए सस्ते दामों में जमीन मिल जावेगी या संस्थाओं में कुछ चीजें विक्रय करने का ठेका मिल जावेगा और हम जितना सेवाकार्य में खर्च करेंगे उससे अधिक कमा लेंगे। उनकी भावना दान देने की नहीं किन्तु धन कमाने की रहती है। यह व्यापार है। सच्ची सेवा नहीं है। इसे सेवा नहीं माना जा सकता। क्रिया का फल उससे जुड़ी भावना के अनुसार मिलता है। क्रिया के परिणाम से नहीं। यदि ऐसे व्यक्ति दान देते समय धन कमाने की भावना नहीं रखें तो वे मध्यम से उत्तम सेवाभावियों की श्रेणी में आ जाते हैं।

3. अधम (क) दुष्ट प्रकृति

जो व्यक्ति संस्था या समाज में फूट डलवाने की भावना से काम करते हैं और फूट डलवा देते हैं, वे अधम श्रेणी की सेवा करने वाले सेवाभावियों में आते हैं।

(ख) बदला लेने की भावना

जो व्यक्ति दूसरों से बदला लेने की भावना से किसी व्यक्ति या समाज की सेवा करता है तो वह भी अधम प्रकृति का व्यक्ति है।

(ग) स्वभाव

जो व्यक्ति समाज को लूटने या डुबाने की भावना से काम करते हैं वे भी इसी अधम श्रेणी में आते हैं।

निष्कर्ष—हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। हम दूसरों के अन्तःकरण को देख नहीं सकते। इसीलिए किसी व्यक्ति को किसी श्रेणी में रखना भयंकर भूल है और यह अशुभ कर्म बंध का कारण बन जाता है। अतः आप विचारिये कि आप स्वयं किसी श्रेणी में हैं और किन दुर्भावनाओं को छोड़कर

उच्च श्रेणी में आ सकते हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी दुर्भावना को छोड़कर सच्ची भावना से दूसरों की सेवा में लगे तो वह सिद्ध पद तक पहुँच सकता है क्योंकि सेवा एक महान तप है।

क्या परिवार सेवा मोह है ?

कुछ लोग कहते हैं कि परिवार के साथ रहना, परिवार वालों का पालन-पोषण करना, उनकी सहायता करना, उनकी सेवा करना ये सभी मोह प्रेरित कार्य हैं। इन कामों में न सेवा है न अनुकम्पा है। ये सब पाप ही पाप के काम हैं।

इस संबंध में धारिणी महारानी के गर्भपालन के कार्य को जैन शास्त्रों ने अनुकम्पा बताया है जिसका उल्लेख आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने 'अनुकम्पा विचार' नामक पुस्तक में किया है कि धारिणी रानी ने अपने गर्भ का पालन मोह से नहीं वरन् अनुकम्पा से किया था। माताएँ अपने गर्भ का या संतानों का पालन-पोषण केवल मोह से या भविष्य में सुख पाने की आशा से ही नहीं करती किन्तु अपनी समझदारी से इन कार्यों को अनुकम्पा के कार्य और कर्म निर्जरा के कार्य भी बना सकती है।

भगवान महावीर ने अपनी गर्भावस्था में ही जबकि उन्होंने थोड़ी देर के लिए अपनी हलन-चलन की क्रिया को रोक दिया था, जिससे उनकी माता को चिंता हो गई कि उनके गर्भ का हलन-चलन बंद क्यों हो गया ? उस समय गर्भावस्था में ही उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक मेरी माता जीवित रहेगी तब तक मैं दीक्षा नहीं लूंगा। क्या भगवान महावीर का यह कार्य मोहजनित था ? क्या पुत्र का यह कार्य कि माता को चिंता न हो मोह प्रेरित है ? क्या यह कर्तव्य नहीं है ?

कूर्मा पुत्र केवली ने केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भी छः महीने तक घर नहीं छोड़ा केवल इसी भावना से कि उनके घर छोड़ने से उनकी माता को दुःख न हो। क्या केवली की माता को सुख पहुँचाने की भावना मोह से भरी हुई थी ? क्या यह उनका कर्तव्य नहीं था ?

हम लोग भूतकाल के और वर्तमान के, दूर के और नजदीक के ज्ञात और अज्ञात बहुत से प्राणियों के, किसानों के, जुलाहों के, गुरुजनों के और पशु-पक्षियों के भी हमारी उपलब्धियों के लिए और जो कुछ या जैसे कुछ हम आज हैं और जो कुछ हमने उन्नति की है क्या उसके लिए हम उनके ऋणी नहीं हैं ? क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम उनके कर्ज को चुकायें ?

इसमें से कुछ लोग अपने पुराने जन्मों के कर्जों को चुकाने के लिए या वसूल करने के लिए जन्म लेकर या विवाह संबंध जोड़कर एक परिवार में आते हैं। अतः परिवार वालों का कर्ज चुकाना अपना कर्तव्य है। इसे यह कहना कि मैं परिवार की सेवा कर रहा हूँ भूल है। यह सेवा नहीं है। इसे हम सेवा कहते हैं लेकिन यह तो सिर्फ ऋणमुक्ति है। कर्मों के विधान के अनुसार हम इससे बच नहीं सकते। इसमें कोई रियायत भी नहीं हो सकती। पिछले जन्मों का कर्ज शत-प्रतिशत माप, तोल और गिनकर पूरा का पूरा चुकाना पड़ता है। यह कर्ज कर्म अवधि पक जाने पर, कर्मोदय होने पर, कर्ज की देय तिथि आने पर चुकाना पड़ता है। इसे जो व्यक्ति हंस-हंस कर चुकाता है वह इस कर्ज से मुक्त हो जाता है और जो हंस-हंस कर नहीं चुकाता उसे यह कर्ज रो-रो कर चुकाना पड़ता है। इस हालत में जो व्यक्ति इसे सेवा कहता है वह उसकी भूल है क्योंकि सेवा इच्छा से की जाती है रो-रो कर नहीं।

जो व्यक्ति यह समझते हैं कि ये मेरे भाई हैं, ये मेरी बहिने हैं, ये मेरे माता-पिता हैं या ये मेरे पुत्र-पुत्री हैं, वह झूठे परिवार के मोह में फँसता है। इसे कोई परिवार भले ही समझे किन्तु यह परिवार जैसी बात नहीं है। यह तो पिछले जन्मों के कर्जों को चुकाने व वसूल करने वाले हैं।

कुछ लोग सोचते हैं कि मैं परिवार की या समजा की या गरीबों की बहुत सेवा करता हूँ। ऐसे समय में उसे अहंकार न करते हुए यह सोचना चाहिए कि यदि मैं निःस्वार्थ भाव से सेवाकृति में लगा रहा तो मेरे विशेष कर्मों की निर्जरा होगी, जिससे पूर्वकृत अशुभ कर्म टूटेंगे। नये शुभ कर्मों का बंध होगा।

समझदार लोग इस ऋण मुक्ति कार्य को इस भावना से इसे अनुकम्पा के कार्य में बदल देते हैं कि ये परिवार वाले, समजा वाले और दूसरे लोग आत्माएँ हैं। मेरा कर्तव्य है कि मैं सावधानी रखूं कि इन आत्माओं को दुःख न हो, कष्ट न हो, इनको असाता न पहुँचे, इनका पतन नहीं हो किन्तु इनका भला हो, इनको सुख पहुँचे और इसके साथ-साथ इनकी आत्मोन्नति हो। उत्कृष्ट सेवाभावना से तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का बंध होता है, ऐसा भगवान महावीर ने फरमाया है।

नोट—दूसरों से सेवा कराना कर्जदार बनना है। अतः जहाँ तक सम्भव हो अपना कार्य स्वयं करना चाहिए।

समता राखोजी

क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।
दुःख अपने कर्मों से आता
दुःख आकर कर्मों को धोता
समता रखने से सुख होता
तिर गये गजसुकुमाल, समता धारो जी।।
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।
क्रोधी मर कर सांप बनेगा
पाप कर्म वो अधिक करेगा
ऊपर से फिर दंड मिलेगा
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।
गुरु नाना की सीख यही है
समता राखे बड़ा वही है
बदला ले वो बड़ा नहीं है
क्रोध करे वो बड़ा नहीं है
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।

संकल्प की कविता

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूंगा।।
समता रखकर कर्म काटकर।
सिद्धों का पद प्राप्त करूंगा।।
सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूंगा।।
सिद्धों का ही ध्यान धरूंगा।
सिद्धों का गुणगान करूंगा।।
सिद्ध बनूंगा, सिद्ध वनूंगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूंगा।।
काम क्रोध, मद, मोह छोड़कर।
आनन्दघन और अभय वनूंगा।।
सिद्ध वनूंगा, सिद्ध वनूंगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध वनूंगा।।

शीलव्रत का पालन

जैनागमों में शील पालन को बड़ा महत्त्व दिया है। शील पालन से विजय सेठ, विजया सेठानी ने और सेठ सुदर्शन ने सिद्ध पद प्राप्त किया। जैन साधु-साध्वी, के लिए तो बड़े कठोर नियम बनाये गये हैं। जैन साधु किसी साध्वी, स्त्री या एक माह की लड़की से वस्त्रों द्वारा स्पर्श होने से भी बचता है। इसी प्रकार जैन साध्वी किसी साधु, पुरुष या एक माह के बालक के वस्त्रों द्वारा स्पर्श होने से भी बचती है। यदि भूल से या असावधानी से वस्त्रों द्वारा भी स्पर्श हो जाता है तो उन्हें दंड प्रायश्चित लेना पड़ता है।

यह शरीर से द्रव्य शील पालन हुआ। मन से भाव शील पालन में पुरुष वृद्ध पर-स्त्री को माता, छोटी बालिका को पुत्री अपने समान उम्र वाली स्त्री को बहन के समान समझे। इसी प्रकार स्त्रियाँ वृद्ध पर-पुरुष को पिता, छोटे बालकों को पुत्र और अपने समान उम्र वाले पुरुषों को भाई के समान समझें। यह पिता-पुत्र, भाई की भावना और माता-पुत्री, और बहिन की भावना पुरुष और स्त्रियों को शील पालने में बहुत सहायक होती है। अतः ये मेरे पिता-पुत्र भाई है या मेरी मात-पुत्री बहिनें हैं इस भावना को बार-बार दोहराने से, इसका बार-बार चिंतन-मनन करने से और इसका जप करने से ये भावनाएँ अचेतन मन में बैठ कर साधकों को दृढ़ शीलव्रतधारी बना सकती है। शील पालन के लिए कोई भी स्त्री किसी पर-पुरुष के और कोई भी पुरुष किसी पर-स्त्री के शरीर, चेहरे और विशेष कर उसकी आँखों की ओर और उनके 1. चित्रों को नहीं देखे, नहीं देखे, नहीं देखे। 2. उनके पास नहीं बैठे। 3. नहीं ठहरे। 4. जरूरी कार्य के बिना उनके पास नहीं रहे। 5. उनसे अनावश्यक बातें या हँसी-मजाक नहीं करे। 6. एकांत में उसके साथ नहीं ठहरे। 7. जब कभी उनसे मिलने का मौका पड़े तो माता-पुत्री बहिन की भावना या पिता-पुत्र भाई की भावना को रटते रहें या, 8. विजय सेठ, विजया सेठानी की शीलपालन की घटना को याद करते रहें। 9. उत्तेजक पदार्थों के सेवन और श्रृंगार से बचकर सादा जीवन शील पालन में बड़ा सहायक है।

पश्चात्ताप की विधि

अपने पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप तीन चरणों में किया जा सकता है। प्रथम चरण में–1. घटना की स्मृति एवं मन में खेद, 2. अपना दोष देखना, 3. भगवान से सुबुद्धि की प्रार्थना।

द्वितीय चरण में–क्षमायाचना, 2. दोनों साक्षात् मिलने पर पुनः क्षमायाचना, 3. दंड प्रायश्चित लेना। तीसरे चरण में–1. सावधानी रखना, 2. उसी पाप के दुबारा होने पर दुगुना प्रायश्चित करना, 3. इस अवगुण को दूर करने के लिए किसी महापुरुष की घटना का हमेशा दस-बीस मिनट तक स्वाध्याय करना।

प्रथम चरण–स्मृति खेद और प्रार्थना

1. व्यक्ति श्री.............को उस दिन मुझसे जरा-सा धक्का लग गया जिससे वह बहुत नाराज हुए और मुझसे लड़ने लगे। मैंने भी समताभाव खो दिया और मैं उनसे लड़ने लगा। इतने में ही दो-चार भले व्यक्ति आ गये। उन्होंने मीठे शब्दों से हम दोनों को समझाकर झगड़ा शांत किया अन्यथा झगड़ा बढ़ जाता।

2. यह मेरी भूल थी। मैंने सावधानी नहीं रखी इसीलिए उन्हें धक्का लगा। उनका कोई दोष नहीं था। अतः मुझे चुप रहना चाहिए था। मैंने अपना संतुलन खो दिया। मुझे क्रोध आ गया। मैं लड़ने लगा था। मैंने बहुत बुरा किया। मैं आज इसके लिए पश्चात्ताप कर रहा हूँ। मुझे अपने दोष को देखना चाहिए था। मुझे पूर्ण समता रखनी चाहिए थी। मुझे अपनी गलती पर पश्चात्ताप करना चाहिए था। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए थी। मैंने ऐसा कुछ नहीं करके उल्टा उनसे झगड़ा किया। यह मेरी भयंकर भूल थी।

3. मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे सुबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे, समता रखने की शक्ति दे और सामने वाले व्यक्ति से क्षमा माँगने की ताकत दे।

द्वितीय चरण क्षमायाचना और प्रायश्चित

1. मैं आज उस व्यक्ति श्री.........से अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता हूँ। वे क्या उनकी आत्मा जहाँ कहीं भी हो मुझे मेरे अपराधों के लिए क्षमा करें।

2. यदि उनसे मेरा साक्षात् मिलना होगा तो मैं इस अपराध के लिए उनसे क्षमा माँगूंगा।

3. इस पाप के प्रायश्चित के रूप में एक या दो या तीन दिन के लिए नमक, घी, या मीठा या फल का त्याग करता हूँ एक, दो या तीन आयम्बिल

या एक उपवास तप करूंगा। यदि सम्भव हो तो धर्मगुरु या श्री आचार्य भगवन् को घटना बताकर दंड प्रायश्चित लूंगा।

तृतीय चरण भविष्य में सावधानी रखना–

1. भविष्य में मैं पूरी सावधानी रखूंगा कि मुझसे ऐसा काम न हो।

2. यदि मुझसे कभी ऐसा अपराध होगा तो मैं इस पाप को नष्ट करने या हल्का करने के लिए दुगुना प्रायश्चित लूंगा।

3. इस अवगुण को दूर करने के लिए मैं मुनिश्री गजसुकुमाल, मुनिश्री मैतार्य, मुनिश्री अर्जुनमाली आदि की समताओं की घटनाओं का प्रतिदिन स्वाध्याय करूंगा।

ऊपर नमूने का एक उदाहरण दिया गया है। पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार इसे घटा-बढ़ा या बदल सकता है।

स्वाध्याय के सूत्र

इन सूत्रों को आप प्रतिदिन बार-बार दोहराइये और इनके अर्थ पर चिंतन करिये जिससे ये अवचेतन मन में बैठ सकें और स्थिर भावनाएँ बन सकें।

1. सेवा–परिवार के लोगों को मेरा भाई है, ऐसा नहीं समझकर यह केवल आत्मा है, ऐसा मानकर अनुकम्पा भाव से उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

2. दंड–किसी को इसके अपराध के लिए दंड देने का अधिकार मुझे नहीं अपितु कर्मों को है।

3. क्रोध–दुःख अपने अशुभ कर्मों से मिलता है, उसमें निमित्त बनने वाले को दोष क्यों दूं ? उस पर क्रोध क्यों करूं, उससे लड़ाई क्यों करूं ? वह तो मेरे कर्मरोग काटने की अचूक दवा देने वाला मित्र है। उपकारी डॉक्टर है। परमात्मा उसका भला करे।

4. दुःख–(क) दुःख मुझे अशुभ कर्मों से मिलता है। समता रखने से यह मेरे कर्मरोग काटने की दवा बन जाएगा। इस दवा को दुःख मानना और रोना भूल है, पाप है। (ख) दुःख कर्मों की निर्जरा कराता है, अज्ञान को हटाता है। मोह को हटाता है और धर्म में श्रद्धा पैदा कराता है। यह उपकारी शिक्षक है।

5. अहंकार–(क) दूसरों को दुःख देने या सुख देने की शक्ति केवल कर्मों में ही है, मनुष्य में नहीं। किसी को किसी का बुरा करके या भला करके अहंकार करना भूल है। (ख) मनुष्य अपने बचपन में, रोग अवस्था में, बुढ़ापे में और अशुभ कर्मों के उदय के समय में स्वयं अपने-आप को सँभाल नहीं सकता, उसका अहंकार करना भूल है। (ग) अहंकार से शुभ कर्मों का फल मिलना भी रुक जाता है। अहंकार के कारण बाहुबलीजी को केवलज्ञान की प्राप्ति रुकी रही। (घ) मनुष्यों के अशुभ कर्मों के उदय के समय कृष्ण या महावीर जैसे महापुरुषों का बल भी काम नहीं करता फिर मनुष्य का अहंकार करना भूल है।

6. दुर्भावना (क) दुर्भावना से नरक व सद्भावना से मोक्ष या स्वर्ग मिलता है। (ख) भगवान सबको सुबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक्ज्ञान दे, सबका भला हो। इस सूत्र को जपने से दुर्भावना मिट जाती है।

7. भौतिक या शारीरिक सुख–(क) सच्चा सुख तो मोक्ष में है। (ख) शरीर की इन्द्रियों से मिलने वाले भौतिक सुख से शरीर कमजोर होता है। रोग आ घेरते हैं और कभी-कभी अकाल मृत्यु भी हो जाती है। (ग) जैनागम कहते हैं कि थोड़े समय का भौतिक सुख भी बहुत समय तक दुःख का कारण बनता है।

8. धन का लोभ (क) धन से भौतिक सुख कम मिलता है और दुःख अधिक मिलता है। (ख) लोभ सब पापों और दुःखों की जड़ है।

9. परिवार मोह–(क) मोह छोड़ मोक्ष मिलेगा। सब दुःख दूर होंगे। (ख) सब प्राणी केवल आत्माएँ हैं। (ग) कोई किसी का अपना न हुआ, न होगा। सब प्राणी अलग-अलग आत्माएँ हैं, मोह छोड़ो। (घ) दुःख दूर करने और सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मों में ही है। तुम्हारे या परिवार के हाथ में नहीं है। मोह और चिंता छोड़ो। (ङ) कर्ज चुकाने के लिए परिवार या दूसरों की अनुकम्पा भाव से सम्यक् सेवा करते समय यह सोचना चाहिए कि ये सब प्राणी केवल आत्माएँ हैं। अलग-अलग आत्माएँ हैं। ये न अपने हैं न पराये हैं।

10. इच्छा–इच्छाओं को रोको। इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होती हैं। इच्छा निरोध महातप है। यह मोक्ष का मार्ग है।

11. विकथा–विकथा को छोड़कर ताप, शरीर, शील, तप, समताभाव आदि की कथाओं को पढ़ो, सुनो, सुनाओ और लिखो।

12. माया—सत्य व्रतधारी अर्थात् मन, वचन, काया की सरलता वाला देवताओं से सहायता पाता है और वह मोक्ष या स्वर्ग पा सकता है।

13. शील—परस्त्री (मेरी) माता या पुत्री या बहनों के समान है। (ख) उसके अवगुण नष्ट होते हैं और गुण प्रकट होते हैं।

14. गुण दर्शन—दूसरों में गुणों को देखने वाले का अहंकार दूर होता है और उसमें विनय भाव पैदा होता है।

15. देह—आत्मभेद ज्ञान या आत्मा भावना यह शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर का सुख-दुःख मेरा (आत्मा) का सुख-दुःख नहीं है। इस सूत्र को बार-बार जपने से इस भावना के अचेतन मन में बैठ जाने से दुःखानुभूति मिट सकती है।

16. सिद्धों का ध्यान—"णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं।

देहासक्ति से मुक्ति

सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए सब कर्मों की निर्जरा आवश्यक है और सब कर्मों की निर्जरा तभी सम्भव है जब देह की आसक्ति छूट जाये और काया-कष्ट, समताभाव से सहन किया जा सके। ऐसी सहन-शक्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है—1. अभ्यास से और 2. भावना से।

1. सहन-शक्ति प्राप्त करने के लिए नवकार मंत्र से पोरसी, एकत, उपवास, आयंबिल आदि तप किया जा सकता है। 2. अपने सभी काम अपने हाथ से करके स्वावलंबी बना जा सकता है। 3. जो काम अपने शरीर से हो सके, उसके लिए मशीनों का प्रयोग कम से कम किया जाये। 4. शीत ताप, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर आदि के उपद्रव समताभाव से सहन किया जाये। 5. घर के सभी कार्यों में परिवार की सहायता श्रम पूर्वक कष्ट अनुभव किए बिना की जाए। रोग आदि में कष्ट को समताभाव से सहा जाए। और 6. उपसर्गों व कष्टों को समतापूर्वक सहन किया जाए।

सहनशक्ति बढ़ाने का दूसरा और प्रभावशाली उपाय है—भावना द्वारा देह की आसक्ति को तोड़ना और सहनशक्ति बढ़ाना। इसके लिए स्वाध्याय किया जा सकता है। इसके लिए सूत्र इस प्रकार है—

1. शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ।
2. शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।
3. उपसर्ग और काया कष्ट समताभाव से सहन करने से देहासक्ति टूट जाती है।

4. मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य आदि की समता भावना और काया कष्ट सहने की घटनाओं का अध्ययन, चिंतन मनन और स्वाध्याय किया जाये।

5. उपसर्ग या कष्ट के समय केवल यही भावना दोहराता रहे कि मेरा पाप कट रहा है, कटने दो। या

6. मेरे कर्मों की निर्जरा हो रही है, होने दो।

इन अन्तिम दो सूत्रों का चिंतन करने से कष्ट भुलाया जा सकता है।

इस प्रकार अभ्यास और भावना से, सहनशक्ति बढ़ने से काया कष्ट समता भाव से सहन किया जा सकेगा, जिससे कर्मों की निर्जरा होगी। आत्मा की शुद्धि व सिद्ध-पद की प्राप्ति होगी।

सच है कि "यह शरीर किसी प्राणी का अपना न हुआ है न होगा।"

भाव तरंगों की शक्ति

दवा शरीर का रोग दूर करती है और केवल शुद्ध भाव तरंगे शरीर का रोग और चरित्र के दोष दोनों को दूर करती है। प्राणी के शुभ कर्मों का उदय होने से ही दवा काम करती है। भाव तरंगे उस समय असफल होती है, जब भाव तरंगें भेजने वाले व्यक्ति की–1. भाव तरंगों के संबंध में पूरी जानकारी नहीं हो। 2. भाव तरंगें भेजते समय एकाग्रता की कमी हो। 3. भाव तरंगों की शक्ति में पूर्ण श्रद्धा नहीं हो। 4. वह धैर्य न रखकर सफलता होने से पूर्व ही उसे छोड़ दे।

एकाग्रता श्रद्धा और धैर्य से भाव तरंगों की शक्ति बढ़ जाती है। अणु से परमाणु में, स्थूल से सूक्ष्म में और दवा से भाव तरंगों में अधिक शक्ति होती है। क्रोधी मित्र को लगभग अर्द्धरात्रि के समय जबकि उस क्रोधी मित्र के नींद में होने की सम्भावा हो, ये भाव तरंगें भेज सकते हैं–"मित्र (उसका नाम लीजिए) क्रोध छोड़ो समता धारो।" या "भाई ! (उसका नाम लीजिये) तुम स्वस्थ हो, निरोग हो, तुम्हारा रोग दूर हो रहा है।" भाव तरंगें भेजते समय इस बात का ध्यान रखें कि मानो आप उसके कान में ही कह रहे हो जिससे कि एकाग्रता बनी रहे।

कषाय - मुक्ति चौथा भाग

आदर्श सेठ

प्राचीन काल में दिल्ली नगर में धर्मदास नाम का सेठ रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसने कुछ धन अपने पुत्रों में बाँट दिया और कुछ धन अपने पास रख लिया। जब वह किसी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से कमजोर देखता तो वह गुप्त रूप से पाँच हजार रुपये दे देता और उसे ईमानदारी से व्यापार करने को कहता। इस प्रकार उसने बहुत से लोगों के जीवन निर्वाह और आत्म उत्थान में सहयोग दिया।

जब वह बीमार हुआ तो जिन लोगों की धर्मदास ने मदद की, उनमें से कुछ लोग रुपये लौटाने के विचार से आए तो सेठ धर्मदास ने उनकी बातें सुनकर उनसे कहा–"भाई साहब यदि आप अपने ऊपर मेरा एहसान मानते हैं तो मेरी एक बात मानिये। यह रुपये आप मुझे न देकर धरोहर के रूप में अपने पास रखिए और गुप्त रूप से जितने व्यक्तियों की सहायता कर सकें, करें। यही मेरी सच्ची सेवा है और सच्चा धर्म है।"

आये हुए सभी लोगों ने यह प्रण किया कि आपके बताए हुए आदर्श मार्ग पर चलकर हम दूसरों के जीवन निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति में निमित्त बनने की पूर कोशिश करेंगे।

यह सुनकर सेठ धर्मदास ने एक गहरी सांस ली और बोले–मैंने देखा है जिस घर में गरीबी और भूखमरी आ जाती है वह घर लड़ाई-झगड़े का घर बन जाता है, उसमें मारपीट होने लगती है। यहाँ तक कि आत्महत्या या दूसरों की हत्या तक क्रोध में कर दी जाती है। वह घर हिंसा का घर बन जाता है और सबके भारी कर्म बंधते हैं। ऐसे घर को गुप्त रूप से मदद देने वाला, उस घर को स्वर्ग और धर्मस्थानक-सा बनाने में निमित्त बन कर स्वयं भी महापुण्य का भागी बनता है। गुप्तदान संसार में एक महान सेवा तप है।

मुनि गजसुकुमाल

बहुत पुरानी बात है। एक पुरुष के दो पत्नियाँ थी। वे दोनों समझदार थी और मिल-जुलकर प्रेम से रहती थी। कुछ वर्षों के बाद छोटी बहू के पुत्र हुआ जिससे घर में उसका मान-सम्मान बढ़ गया। यह बात बड़ी बहू को बुरी लगी और उसने उस पुत्र को मारने का विचार किया।

एक बार उस लड़के के सिर में बड़े-बड़े फोड़े हो गए। छोटी बहू भोली-भाली और सीधी-सादी थी। उसने पुत्र की दवा का काम बड़ी बहू पर छोड़ दिया। बड़ी बहू ने उस पुत्र को मारने के विचार से जान-बूझकर आटे की एक बहुत गर्म रोटी उस लड़के के सिर पर बाँध दी जिससे वह लड़का मर गया। आगे जाकर उस बड़ी बहू का जीव निन्यानवें लाख जन्मों के बाद द्वारिका नगरी में महारानी देवकी के गर्भ से पुत्र रूप में जन्मा और उसका नाम रखा गया गजसुकुमाल। छोटी बहू का वह लड़का मर कर संसार में भटकता हुआ द्वारिका नगरी में एक ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ और उसका नाम रखा गया सोमिल। इसी सोमिल ने अपने पुराने वैर का बदला लेने के लिए मुनि गजसुकुमाल के सिर पर श्मशान भूमि में अंगारों को रखकर अपना बदला लिया।

कहा जाता है कि गजसुकुमालजी जब सोलह वर्ष के हुए तब एक दिन वे हाथी पर बैठकर श्रीकृष्णजी के साथ भगवान तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी के दर्शन करने गए। रास्ते में सोमिल की पुत्री सोमा खेल रही थी। वह बहुत सुन्दर थी अतः श्रीकृष्णजी ने सोमिल ब्राह्मण से सोमा का विवाह गजसुकुमाल के साथ करने की बात कर उसे विवाह से पहले ही राजमहल में भिजवा दिया। उधर तीर्थंकर नेमिनाथजी की वाणी सुनने से गजसुकुमाल को वैराग्य हो गया। उन्होंने तुरन्त ही दीक्षा ली और भगवान नेमिनाथजी से शीघ्र मोक्ष पाने का मार्ग पूछकर उनसे आज्ञा लेकर श्मशान भूमि में चले गए। उसी समय सोमिल भी वहाँ आया। अपनी लड़की को इस प्रकार छोड़ देने के कारण मुनि गजसुकुमाल के ऊपर सोमिल को बहुत क्रोध आया और उसने गजसुकुमाल के सिर के ऊपर भीगी मिट्टी की पाल बाँधी और पास ही जलते हुए मुर्दे की एक चिता से जलते हुए अंगारे उठाए। उन्हें गजसुकुमालजी के सिर पर रखा और चला गया। मुनि गजसुकुमालजी क्षमा और समता की साक्षात् मूर्ति थे। वे ध्यान में लीन हो गए। उनके ध्यान का मुख्य भाव यह था—स्वयं के किए हुए कर्मों से ही सुख-दुःख की प्राप्ति होती रहती है, जरूर किसी जन्म का वैर सोमिल के साथ रहा होगा तभी

उसने ऐसा बर्ताव किया है, इस वक्त मैं यदि समभाव रखूंगा तो मेरे कर्मों का नाश होगा, ऐसा ही हुआ। उन्होंने समस्त कर्मों का नाश कर मुक्ति पा ली।

किया स्वयं का स्वयं ही पाता।
क्रोध दुःख मन में क्यों आता।।

दृढ़ प्रहारी

कभी-कभी महाहिंसा करने वाले प्राणी भी अपने पूर्वजन्म में किए हुए अच्छे कर्म के प्रभाव से अचानक उसी जन्म से मोक्ष पहुँचने वाले मुनि बन जाते हैं। यही बात दृढ़ प्रहरी के साथ घटी। वह अचानक ही चोर और हत्यारे दृढ़ प्रहारी से समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ़ प्रहारी बन गए। दृढ़ प्रहारी एक अच्छे घर में उत्पन्न हुए थे। वे अपने माता-पिता के साथ कभी-कभी साधु-साध्वियों के दर्शन करने और उनके प्रवचन सुनने भी जाते थे। किन्तु कुसंगति के कारण वे शराब पीने, चोरी करने लगे और विरोध करने वाले की हत्या कर देते थे। इस कारण घर से निकाल दिए गए। उसके बाद वे चोर-डाकू बन गए। एक दिन वे डाका डालने के लिए एक, ब्राह्मण के घर गए। घर में एक गाय खुली थी। वह रम्भाने (रेंकने) लगी। दृढ़ प्रहारी ने सोचा कि लोग जग जायेंगे, तो उसने एक ही चोट में उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया। इसी समय बाहर से ब्राह्मण आया। पकड़े जाने के भय से दृढ़ प्रहारी ने उसे भी मार दिया। उसके बाद दृढ़ प्रहारी अन्दर गया, तब ब्राह्मणी ने कहा–"तूने मेरी गाय को मार दिया, तूने मेरे पति को मार दिया, अब तू मुझे क्यों जिन्दा छोड़ता है। मैं क्या खाऊंगी, मैं किसके सहारे रहूंगी ?" तब दृढ़ प्रहारी ने सोचा कि कहीं यह शोर न मचा दे। इसलिए उसने उसे भी मार दिया। सगर्भा ब्राह्मणी तो मर गई परन्तु तलवार के साथ गर्भस्थ बालक टुकड़े-टुकड़े होकर बाहर निकलकर गिर गया। इस हत्या को देखकर दृढ़ प्रहारी का ह्रदय कांप उठा। तलवार उसके हाथ से छूट गयी। वह विचारने लगा–"हाय-हाय ! मैंने चार हत्याएँ कर डाली। मैंने पहले भी बहुत हत्याएँ की हैं, अनेक बच्चों को अनाथ किया है, महिलाओं को वैधव्य का दुःख दिया है, लोगों का धन लूट कर उन्हें दाने-दाने के लिए मोहताज बनाया है। मेरा इन पापों से छुटकारा कब और कैसे होगा ?"

दृढ़ प्रहारी ने पहले बहुत अच्छे कर्म किए होंगे। उन कर्मों के उदय से उसके विचार एकदम बदल गए और उसने हत्यारे दृढ़ प्रहारी से मुनि

दृढ़ प्रहारी बनने का संकल्प कर लिया। दृढ़ प्रहारी ने संकल्प किया–

1. मैं सिद्ध पद प्राप्त करूंगा। 2. मैं मेरे किए हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित करूंगा और उसका फल भोगूंगा। 3. नगर के दरवाजे के पास खड़ा रहकर भूख, प्यास, शीत, तप सहन करूंगा। 4. इस रास्ते से आने वाले लोगों का मैंने अपराध किया है। उनके और दूसरे लोगों के भी कटु वचनों, गालियों, थपड़ों और मुक्कों को सहन करता हुआ समता रखूंगा और कर्मों का काटूंगा। यह शरीर अलग है और मैं अलग हूँ, फिर इस शरीर के कष्टों को अपना दुःख मानकर मैं नवीन कर्म नहीं बाधूँगा। 5. मैं दिन भर प्रभु के भजन में, सिद्धों के ध्यान में और ज्ञान के स्वाध्याय में लीन रहूंगा, जिससे मुझको लाभ होगा। प्रथम तो इससे शरीर के कष्ट भूलने में सहायता मिलेगी, दूसरे प्रभु के ध्यान से सभी पाप नष्ट होंगे। मेरी इस वर्तमान स्थिति में यही समीक्षण दृष्टि है और संक्षेप में मेरे लिए यही समीक्षण ध्यान है, जिससे मैं सिद्ध पद प्राप्त करूंगा।

बाहुबलीजी ने तो अहं भाव से 12 महीने तक तप किया था किन्तु दृढ़ प्रहारीजी ने अहंकार छोड़कर 5 महीने तक समीक्षण ध्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त में समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ़ प्रहारी ने देह त्याग कर सिद्ध पद प्राप्त किया।

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
आनन्दघन और अभय बनूंगा।।
आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ।
दुःखी नहीं हूँ, आनन्दघन हूँ।।
नमो सिद्धाणं, नमो सिद्धाणं।
नमो सिद्धाणं, नमो सिद्धाणं।।

मुनि अर्जुनमाली

जिस अर्जुनमाली ने एक हजार एक सौ इकचालीस मनुष्यों की हत्या की, वह अर्जुनमाली भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मुनि अर्जुनमाली बन गया और समीक्षण ध्यान से मोक्ष प्राप्त कर लिया। प्रथम उसने निश्चय किया कि मुझे सिद्ध पद प्राप्त करना है। दूसरी बात वह अपने पापों को याद करके उनके लिए पश्चात्ताप करता है। तीसरी बात, वह सोचता है– "मैंने बहुत लोगों को दुःख दिया, अनाथ बनाया, बरबाद किया, बहुतों की हत्या की, अनेक घर उजाड़े। फिर भी ये लोग बड़े दयालु दिखते हैं। मुझे थोड़ा-सा दंड देकर छोड़ देते हैं। मैं स्वयं ही स्वयं के किए का फल पा

रहा हूँ। ये मुझे हल्का-सा दंड देने वाले, तो केवल निमित्त बने हैं। इन पर क्रोध क्यों करूं ? मुझे यह जो हल्का काया-कष्ट मिल रहा है, वह भी तो मैंने स्वयं ने ही मोल लिया है। इससे तो मेरे कर्म कट रहे हैं फिर इसे दुःख क्यों माना जाए, समभाव से सारे कर्म कटते हैं–

किया स्वयं का, स्वयं ही पाता।
क्रोध दुःख मन में क्यों आता।।

मुनि अर्जुनमाली ने उपर्युक्त भावना का स्वाध्याय करीब छः महीने तक किया जिससे उनका क्रोध समूल नष्ट हो गया, दुःखानुभूति बिलकुल मिट गई और वे आनन्दघन बनकर सिद्ध बन गये। आनन्दघन का अर्थ है– जिसको आनन्द ही आनन्द हो, कोई दुःख न हो।

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ।
दुःखी नहीं मैं, आनन्दघन हूँ।।

मृगा पुत्र (मृगा लोढ़ा)

एक राजा था। उसका नाम विजयवर्द्धन था। वह बहुत बुद्धिमान और धर्मात्मा था। उसकी रानी मृगादेवी बहुत समझदार और धर्मात्मा थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था मृगा पुत्र। उसके हाथ, पैर आँख, कान नहीं थे। वह एक गुप्त स्थान में पड़ा रहता था। वहीं पर वह खाता-पिता था। वहीं पर मल-मूत्र त्याग करता था। रानी उस कमरे की सफाई का पूरा ध्यान रखती थी। किन्तु फिर भी वहाँ इतनी बदबू आती थी कि उस कमरे में आने वाले को नाक पर कपड़ा रखना पड़ता था। राजा और रानी दोनों ही मृगापुत्र की इस दशा पर दुःखी थे। मृगापुत्र ने अपने पूर्व जन्मों में बड़े-बड़े पापों का संचय किया था, जिससे उसको ऐसा शरीर मिला जिसकी चिकित्सा होना संभव ही नहीं था।

भगवान महावीर के मुँह से मृगापुत्र का वृतान्त सुनकर गणधर गौतम स्वामी, महावीर भगवान की आज्ञा लेकर उसे देखने के लिए राजमहल में पधारे। राजा और रानी ने गौतम स्वामी को देखकर हाथ जोड़कर सिर झुका कर नमस्कार किया और उनसे निवेदन किया–"आज हमारे महाभाग्य हैं कि आपने पधार कर हमारा घर पवित्र किया। गौतम स्वामी ने मृगादेवी के पुत्रों को देखने की इच्छा प्रकट की तब मृगादेवी ने अपने स्वस्थ और सुन्दर पुत्रों को लाकर दिखाया, तब गौतम स्वामी ने कहा–"देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे उस पुत्र को देखना चाहता हूँ जिसका शरीर विकृत है। तब रानी उन्हें आदरपूर्वक उस गुप्त स्थान में ले गई जहाँ मृगापुत्र बैठा था। गौतम

स्वामी ने मृगापुत्र को देखा और वे कर्मों की विचित्र गति पर मन ही मन कुछ विचारने लगे। गौतम स्वामी के चले जाने पर रानी महलों में आई। उस समय उसे बहुत उदास देखकर राजा ने रानी से कहा—"मैं, तुम या कोई भी प्राणी अपने कुटुम्ब वालों के या अन्य किसी भी प्राणी के किए हुए अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में और दुःख को सुख में बदलने की शक्ति नहीं रखता है। मृगापुत्र ने पूर्व जन्मों में महाअशुभ कर्म किए होंगे इसीलिए तो उसने ऐसा शरीर पाया है। इसका फल उसे ही भोगना पड़ेगा।"

यदि एक प्राणी दूसरे प्राणी के अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में बदल सके और दुःखी को सुखी बना सके तो आज संसार में कोई दुःखी नहीं रहता।

कर्म कुटुम्ब के, बदल न सकता।
चिन्ता मोह मैं, व्यर्थ ही करता।।

इस प्रकार का स्वाध्याय करने से प्राणी सिद्ध पद पाने की ओर बढ़ता है।

नोट 1—मृगापुत्र अपने पूर्व जन्मों में अधर्मभाषी, अधर्मानुरागी, पथिकों को मारने वाला, अधिक ब्याज लेने वाला हत्यादि के अपराध लगा देने वाला रिश्वत-घूसखोरी आदि कार्य करने वाला था। जैसा कि पुस्तक "विपाक सूत्र" के पृष्ठ सं. 17,18।

नोट 2—एक परिवार में एक सोलह वर्ष की लड़की है जिसके हाथ व पैर काम नहीं करते हैं। उसके माता-पिता ने बहुत कोशिश की, डॉक्टरों से इलाज करवाया। मगर वे अपनी लड़की को इस काबिल नहीं बना सके कि वह चल फिर सके।

नोट 3—एक परिवार में एक 25 वर्ष का लड़का जिसका दिमाग काम नहीं करता। वह लड़का आधा पागल-सा है।

अनाथी मुनि

जिन महापुरुष की यह कहानी है उनका नाम था अनाथी मुनि। उनके पिता बहुत धनवान थे। वह धर्म के भी पूरे जानकार थे। श्री अनाथी मुनि की माता भी बहुत समझदार व दयालु थी। उनके पिता ने अनाथी मुनि को बहुत पढ़ाया और वे धर्म के महापंडित हो गये।

एक बार अनाथी मुनि के आँखों में बहुत जोर का दर्द हुआ। उनके पिता ने दूर-दूर के स्थानों से बड़े-बड़े प्रसिद्ध वैद्य बुलाये और कीमती दवाएँ दी। इस पर बहुत धन खर्च हुआ। उनके पिता ने मंत्र जानने वालों को भी

बुलाया लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनके माता-पिता, भाई-बहिन भी दिन-रात उनके दर्द को दूर करने का उपाय करते रहे लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनकी पत्नी भी आँखों से आँसू बहाते हुए उनकी सेवा में लगी, लेकिन कोई भी आँखों का दर्द नहीं मिटा सका।

यह तो उनके पूर्वजन्म में किये हुए पाप का फल था जो अब उदय में आकर उनको दुःख दे रहा था। कोई भी प्राणी किसी दूसरे प्राणी के कर्म रोग को मिटाने की शक्ति नहीं रखता।

शक्ति है केवल निज कर्मों में।
दुःख देने की पाप कर्म में।
अशुभ कर्म जब उदय में आता।
अन्य कोई सुख दे नहीं पाता।।

कर्मों के रोग धन से या किसी भी अन्य पुरुष से मिटाये नहीं जा सकते। यदि कोई एक पुरुष दूसरे पुरुष का रोग या दुःख दूर कर सकता तो आज संसार में एक भी प्राणी रोगी या दुःखी नहीं रहता। कर्मों का रोग, दान, शील, तप आदि बड़ी-बड़ी उत्कृष्ट भावनाओं और वैसी ही क्रियाओं से मिट सकता है। एक रात्रि के समय अनाथी मुनि ने गृहस्थ अवस्था में संकल्प किया—यदि मैं इस दुःख से छुटकारा पा लूंगा तो मैं दीक्षा लेकर पूर्ण समता रखकर परमात्मा पद पाने की कोशिश करूंगा।

सवेरे उनके नींद से जागने पर उनके परिवार वालों को बहुत आश्चर्य हुआ कि जो रोग दवाओं से नहीं गया, वह अचानक दूर कैसे हो गया तो उन्होंने जवाब दिया कि दुःख और रोग उत्कृष्ट भावना, धर्म की भावना और धर्म करने से दूर होता है, अब मैं दीक्षा लेकर अपनी आत्म-शुद्धि करूंगा।

उनके घर वालों ने उनको बहुत समझाया कि घर में रहकर कुछ दिन तक माता-पिता की सेवा करो लेकिन उन्होंने अपने माता-पिता से कहा कि कोई किसी का नाथ नहीं बन सकता और किसी का दुःख दूर नहीं कर सकता। प्राणी स्वयं ही अच्छे कर्म करके अपना नाथ बन सकता है। संसार में सब अलग-अलग है। कोई किसी का अपना हमेशा के लिए नहीं बन सकता क्योंकि अलग-अलग मनुष्यों के अलग-अलग कर्म होते हैं। वे कर्म उनको हमेशा साथ नहीं रहने देते। पुराने जन्मों का परस्पर लेन-देन समाप्त हो जाने पर उनके कर्म उनकी मृत्यु से पहले ही उन्हें अलग-अलग कर देते हैं और मृत्यु तो उनको अपना बनने ही नहीं देती।

कोई किसी का हुआ न होगा।
कर्म साथ नहीं रहने देगा।।

अनाथी मुनि ने दीक्षा लेकर अपना और अनेक मनुष्यों की आत्मा का उद्धार किया।

शक्ति है केवल निज कर्मों में
सुख देने की शुभ कर्मों में
दुःख देने की पाप कर्म में
अशुभ कर्म उदय जब आता
अन्य कोई सुख दे नहीं पाता
कर्म पुत्र को दूर हटाता
कर्म पिता को शत्रु बनाता
शक्ति है केवल निज कर्मों में।

चण्डकौशिक

भगवान महावीर के जीवन काल की घटना है। एक साधुजी रहते थे। वे तपस्या तो बहुत करते थे लेकिन स्वभाव के चिड़चिड़े और क्रोधी थे। उनके एक शिष्य था जो बहुत वाचाल था और गुरुजी की छोटी-छोटी गलती पर उन्हें प्रायश्चित कराता रहता था। इससे गुरुजी का क्रोध और अधिक तेज हो जाता। एक दिन गुरुजी अपने शिष्य के साथ आहार लेने के लिए गोचरी पधारे। रास्ते में गुरुजी का पैर एक मेंढ़क पर पड़ गया। शिष्य ने कहा–"गुरुजी आपके पैर से दबकर यह मेंढ़क मर गया, पाप के लिए प्रायश्चित कीजिए।" गुरुजी ने कहा–"मेंढ़क मेरे पैर से नहीं मरा है।" गृहस्थों से भोजन लेकर जब दोनों अपने स्थान में पहुँचे तो गुरुजी को प्रायश्चित लेने के लिए चेले ने फिर कहा कि मेंढ़क आपके पैर से मरा था, आप प्रायश्चित ले लो लेकिन गुरु ने कहा मेंढ़क मेरे पैर से नहीं मरा है, प्रायश्चित लेने की कोई जरूरत नहीं है। शाम को प्रतिक्रमण के समय जब चेले ने प्रायश्चित लेने की बात फिर दोहराई तो गुरुजी को बहुत क्रोध आया और गुरुजी ओघे का डंडा लेकर चेले को मारने उठे। खिड़की का छज्जा बहुत नीचे था और गुरुजी के तेजी से उठने के कारण उनका सिर पत्थर से टक्करा गया और उसी समय उनका देहान्त हो गया। मरकर वे देव बने। वहाँ की आयु पूर्ण कर मनुष्य अवस्था प्राप्त की और तापस आश्रम में तापस बन गया। उसका नाम कौशिक था। परन्तु वह बड़ा ही क्रोधी था। उसकी चण्ड प्रकृति के कारण सब उसे चण्डकौशिक कहते थे। उसके इस

क्रोधी स्वभाव के कारण आश्रमवासी उसे अकेला छोड़कर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रहता था। एक बार एक राजकुमार ने उसे चिढ़ाया, जिससे वह चिढ़ कर उसे मारने के लिए दौड़ा। वह क्रोध में बेभान था और गड्ढे में गिरकर मर गया।

क्रोध से मरण के कारण वह सर्प बन गया और जंगल में मार्ग के पास ही एक बिल में रहने लगा, जो कोई मनुष्य उस रास्ते से जाता उसे वह सर्प विष दृष्टि से देखता और उसके देखते ही व्यक्ति मर जाता। अतः उसका नाम भी चण्डकौशिक पड़ गया।

एक दिन भगवान महावीर उस चण्डकौशिक को समझाने के लिए जा रहे थे। लोगों ने उन्हें रोकना चाहा लेकिन वे रुके नहीं और जहाँ सर्प था वहाँ चले गये। चण्डकौशिक ने उन्हें विष दृष्टि से मारना चाहा, लेकिन इससे कुछ नहीं हुआ। तब सर्प ने उन्हें काटा। जब इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तब सर्प ने महावीर स्वामी को आश्चर्य से देखा।

भगवान महावीर ने कहा–"अरे चण्डकौशिक ! समझ कि तू पहले कौन था और अब तू कौन हो गया है और क्या करता है।" भगवान के इन वचनों को सुनकर चण्डकौशिक को ज्ञान हो गया और उसने सोचा कि इससे पूर्व जन्म में मैं एक साधु था किन्तु क्रोध के कारण मैं सर्प बन गया। मैंने अनेक मेंढ़क, चूहों, पशुओं और मनुष्यों की हत्या की है। मैंने सर्प बन कर नरक ले जाने वाले पाप किये हैं। ये सच है कि क्रोध नरक ले जाने वाली सीढ़ी है। क्रोधी मनुष्य मरकर सर्प बन जाता है। क्रोध मनुष्य को भले बुरे काम की पहचान नहीं सीखाता। मेरे किसी पूर्व जन्म में किये हुए पुण्य से मुझे भगवान महावीर के दर्शन हुए और यह अपूर्व ज्ञान मिला। अब मैं पूर्ण समता रखकर अपने कर्मों को काटूंगा और अपना जीवन सुधारूंगा।

चण्डकौशिक ने अपना सिर बिल में रख लिया और शरीर बाहर रख लिया। लोगों ने उसे बिलकुल शांत देखकर यह समझा कि यह चण्डकौशिक देवता हो गया है। उन्होंने उस पर दूध और बताशे चढ़ाए जिससे चींटियाँ आकर उसके शरीर को काटने लगी। इस भयंकर दर्द में भी चण्डकौशिक ने क्रोध न करके पूर्ण समता रखकर सहन किया जिससे उसके अनेक पाप कट गये।

सच है क्रोध से प्राणी के अच्छे-अच्छे गुण नष्ट हो जाते हैं और वह मुक्ति पाने का अधिकार खोने लगता है।

क्रोधी मुनि नम्र शिष्य

एक संत बहुत क्रोधी थे। उनको क्रोध बहुत जल्दी आता था। एक दिन एक शांतिचंद्र नामका आदमी जिसकी शादी 10 दिन पहले हुई थी, अपने साले लहरचन्द के साथ शाम के समय इन्हीं संत के दर्शन करने आया। लहरचन्द बहुत मजाक करने वाला था। उसने मजाक-मजाक में तीन-चार बार महाराज को कहा कि मेरे बहनोई शांतिचन्द्रजी को साधु बना दीजिए। इससे साधुजी को बहुत क्रोध आया और शांतिचन्द्र को पकड़कर उनके बाल नोंच दिये और साधु बना दिया। यह देखकर लहरचन्द बहनोई को छोड़कर घर भाग गया। मुनि शांतिचन्द्रजी ने गुरुजी से कहा कि–"मेरे ससुराल वाले आदमी अभी आयेंगे और झगड़ा करेंगे। इसलिए रात में ही हम लोग किसी दूसरी जगह चले जायें तो अच्छा रहेगा। रात में आपको कम दीखता है और आप तपस्या के कारण दुबले-पतले हैं। आप मेरे कंधे पर बैठ जाइये। मैं आपको ले चलूंगा।

गुरुजी मुनि शान्तिचन्द्रजी के कंधे पर बैठ गये। रात थी और रास्ता कहीं ऊँचा-नीचा था। इसलिए मुनि शान्तिचन्द्रजी के पैर कभी ऊपर कभी नीचे पड़ते थे इससे गुरुजी को धक्के लगते थे। धक्का लगने पर गुरुजी अपने चेले को लातों और मुक्कों से पीठ पर मार भी देते थे। किन्तु मुनि शान्तिचन्द्रजी ने समता, शांति और विनय रखा, जिससे उनको केवलज्ञान हो गया। अब ऊँची-नीची जमीन उनको अंधेरे में भी साफ दिखाई देने लगी। अतः गुरुजी को धक्के लगने बंद हो गये। तब गुरुजी ने कहा–"मार खाने से क्या सब कुछ दीखने लगा है।" चेले ने कहा–"यह सब आपकी कृपा का फल है।" यह बात सुनकर गुरुजी के मन में कुछ विचार आयां और उन्होंने दुबारा पूछा–"क्या तुम्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया है।" मुनि शान्तिचन्द्रजी ने फिर वही उत्तर दिया–"यह आपकी कृपा का ही फल है।" यह सुनकर गुरुजी चेले के कंधे से नीचे उतर गये और उनसे क्षमा माँगी। उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि मैंने केवलज्ञानी का अपमान किया और उन्हें दुःख दिया। गहरा और हार्दिक पश्चात्ताप होने से उन्हें भी केवलज्ञान हो गया।

विनय से और सच्चे पश्चात्ताप से पाप कर्म नष्ट होकर केवलज्ञान प्राप्त हो जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कालसौकरीक कसाई

एक बार राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से कहा–"मेरे पापों के नष्ट होने का कोई उपाय बताने की कृपा करें। भगवान महावीर ने कहा– "तुम कालसौकरीक कसाई से जो एक दिन में 500 भैंसे मारता है, भैंसों को एक दिन के लिए मारना बंद करवा दो तो तुम्हारे पाप कर्म नष्ट हो सकते हैं।" राजा श्रेणिक ने उस कसाई को बुलाया और कहा–"मेरे कहने से तुम एक दिन के लिए भैंसों की हिंसा बंद कर दो तो मैं तुम्हें बहुत धन दूंगा।" कसाई ने कहा–"धन लेकर मैं अपने नियम को नहीं तोड़ सकता।" राजा श्रेणिक बहुत नाराज हुआ और उसने उसे एक जेल में बंद करवा दिया।

दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास गये और कहा– "भगवन् मैंने उस कसाई को भैंसे मारने से रोक दिया।" यह सुनकर भगवान महावीर ने कहा–"महाराजा श्रेणिक, उस कसाई ने वैसे तो एक भी भैंसा नहीं मारा किन्तु भावना से उसने 500 भैंसे मार दिये और उसने 500 भैंसे मारने का पाप कर लिया।" राजा वापस महलों में आया और कसाई से पूछा–"तुमने भैंसे कैसे मारे ? कसाई ने उत्तर दिया–मैंने अपने शरीर का मैल उतार कर उसकी भैंसे की आकृति बनाकर नाखून को छूरी समझकर उसे काट दिया। इस तरह 500 बार करके 500 भैंसे मारने का कार्य कर लिया।

हम चाहे एक भी जीव के शरीर को नहीं छुएँ, वह चाहे हमसे हजारों किलोमीटर दूर सुरक्षित और सुखपूर्वक बैठा रहे किन्तु हम अपने घर पर बैठे हुए ही विचारों द्वारा, कल्पना द्वारा या भावना द्वारा किसी मिट्टी के ढेले को या गोबर के टुकड़े को या गूदे हुए आटे के टुकड़े को या किसी कपड़े को या कागज को या लकड़ी की गुड़िया बनाकर या किसी भी प्राणी को या वस्तु को जीवित प्राणी मानकर काट दें, मार दें, या जला दें तो यह भाव हिंसा कहलाती है। भाव हिंसा से सचमुच में जीव तो एक भी नहीं मरता किन्तु मारने का पाप लग जाता है। "मैं दस आदमियों को मारूंगा" ऐसा विचार भाव हिंसा है और इससे 10 आदमियों को मारने का पाप लग जाता है। ऐसे ही बड़े कामों की इच्छा करने वाले या बड़ी-बड़ी हिंसक योजनाएँ बनाने वाले भी चाहे कुछ न करें वे पाप के भागी तो बन ही जाते हैं। जो मनुष्य विचार करता है कि यदि मेरे पास एटम बम या अणु बम हो तो मैं शत्रु के नगरों को और शत्रु की सेना को मार दूंगा, ऐसा विचार करने वाला किसी को नहीं मारता किन्तु भावना के कारण वह भी दुर्गति में चला जाता है।

बाहुबलीजी और अहम् भाव

बाहुबलीजी ने दीक्षा ले ली किन्तु वे भगवान आदिनाथ के पास नहीं गये क्योंकि उनके छोटे भाइयों ने उनसे पहले दीक्षा ली थी और वहाँ जाने से बाहुबलीजी को अपने छोटे भाइयों को जो दीक्षा में उनसे बड़े थे, नमस्कार करना पड़ता। बाहुबलीजी इस प्रकार एक वर्ष तक वन में खड़े रहे। वे तपस्या करते रहे किन्तु अहंकार के कारण उनको केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। एक दिन उनके कानों में एक गीत सुनाई दिया–

वीरा मोरा गजथकी उतरो
गज चढ्याँ केवल ना होसी रे।
बांधव गज थकी उतरो।

उन्होंने आवाज पहचान ली। यह आवाज उनकी साध्वी बहिनों ब्राह्मी तथा सुन्दरी की थी। उन्होंने विचार किया–"मैं तो जमीन पर खड़ा हूँ हाथी पर नहीं चढ़ा हुआ हूँ फिर मैं किस हाथी से नीचे उतरूं।" फिर उनके समझ में आया कि मैं अहंकार रूपी हाथी पर चढ़ा हुआ हूँ। इसी अहंकार के कारण इतनी लम्बी और कठोर एक वर्ष की तपस्या होने पर भी केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई। उन्होंने विचार किया कि अब मैं अहंकार छोड़ूंगा और भगवान ऋषभदेव के पास जाकर सभी संतों को वंदना करूंगा। ज्योंही उन्होंने वंदना करने को जाने के लिए पैर उठाया त्योंही उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अहंकार से केवलज्ञान नहीं हो सकता। केवलज्ञान विनय से प्राप्त होता है।

बच्चों की शिक्षा

प्राचीन काल में मदालसा नाम की एक महासती थी। उसने इस शर्त पर विवाह किया था कि मैं पुत्रों को जैसा चाहूंगी वैसा ही बनाऊंगी।

जब बच्चा सती मदालसा के गर्भ में रहता था तब वह संतों का प्रवचन सुनती, धार्मिक बातों का चिन्तन-मनन करती। धार्मिक भजन गाती। इसका सीधा प्रभाव गर्भ के बच्चे पर पड़ता। जब लड़का हो जाता तो वह दासी को नहीं सौंपती किन्तु स्वयं ही उनकी पूरी देख-भाल करती। उनको झूला झुलाते हुए वैराग्य भरी लोरियाँ सुनाती। वह कहती–

सिद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि।
संसार माया परिवार्जितोऽसि।।

इन गीतों का छोटे बच्चे के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ता कि वह बड़ा

होकर साधु बन जाता। इस प्रकार उसके लड़के साधु बन गए। जब सातवां लड़का गर्भ में आया तो राजा ने कहा–"महारानी छह बच्चे तो साधु हो गए इसे तो राजा बनाओ नहीं तो राज्य कौन सँभालेगा।" तब उसने इस बच्चे को गर्भ से ही राजनीति और वीरता की बातें सिखाई। अतः यह सातवां पुत्र पिता की तरह ही बड़ा प्रतापी, सुखी और प्रसिद्ध राजा हुआ।

अभिमन्यु भी जब वह माता के गर्भ में था तभी चक्रव्यूह भेदना सीख गया।

बच्चों की शिक्षा उनके बचपन से पहले ही शैशव काल के पहले ही और जन्म के पहले ही उनके माता-पिता की शिक्षा और सुसंस्कृति से दी जाती है।

पापी कौन धर्मी कौन

एक दिन धर्म की सभा में बहुत से आदमी बैठे थे। उस समय एक आदमी ने धर्म गुरु से पूछा–"गुरुदेव विलायत में रोबिन हुड नाम का एक डाकू हुआ था जो अमीरों को लूटता था तथा गरीबों को धन देता था। मैं भी ऊपर से साहूकार दिखाई देता हुआ व्यापार में अन्याय से, मिलावट से चोरी करके धनिकों को लूटकर गरीबों की मदद करता हूँ और आपकी धर्म सभा में भी दान देता हूँ। मुझे बताने की कृपा करें कि मुझे धर्म अधिक हुआ या पाप ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया–"धर्म और पाप कम या अधिक होना तो भगवान ही बता सकते हैं क्योंकि यह बात कुछ तो मनुष्य की भावनाओं पर और कुछ सारी परिस्थितियों पर निर्भर करती है किन्तु आप यह बतायें कि एक मनुष्य मल-मूत्र के नाले में बार-बार हाथ डालता है और बार-बार उन्हें धोता है तो उसे आप अच्छा कहेंगे या बुरा। यदि धन कमाकर और उसे दान देने में अधिक धर्म होता तो लोग धन देने वाले से साधु को ज्यादा श्रेष्ठ क्यों समझते। दान देने वाले को प्रथम तो यह पता नहीं चलता कि दान लेने वाला सच्चा गरीब है या दिखावटी गरीब है। दूसरा यह भी पता नहीं चलता कि वह धन का उपयोग किस रूप में करेगा। यह तो साफ है कि लूटना तो पाप है और महापाप है। भावना शुद्ध है और क्रिया गलत है तो कायिक पाप तो होगा ही। मन, वचन और काया तीनों शुद्ध है तो धर्म होगा और अगर इन तीनों में से कुछ भी गलत है तो पाप तो लगेगा ही। अतः वकील, डॉक्टर, अध्यापक आदि कोई भी अगर हो सके तो बिना फीस लिए मदद करेगा तो उसे बहुत धर्म होगा।

तब एक दूसरा आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा—गुरुदेव मैं शेख चिल्ली या जीर्ण सेठ की तरह हमेशा नवीन-नवीन योजनाएँ दिन में कई बार बनाता हूँ लेकिन मैं सादगी से ही रहता हूँ। क्या मुझे भी पाप लगेगा ? गुरुदेव ने उत्तर दिया—"तुम सादगी से रहो या न रहो किन्तु योजना बनाने के कारण तुम कालसौरिक कसाई की तरह या तन्दुल मत्स्य की तरह सातवीं नरक में पहुँचाने वाले भारी पाप कर्मों का बंधन कर लेते हो। किन्तु जीर्ण सेठ की तरह शुभ भावनाओं का संचय करने से मोक्ष मार्ग के पथिक भी बन सकते हो क्योंकि शुभ भावना से मोक्ष और अशुभ भावना से नरक मिलता है। पाप और पुण्य भावना पर निर्भर है।"

तब एक तीसरे आदमी ने कहा—"गुरुदेव मैंने सुना है कि पाप तो केवल भावनाओं से ही लगता है। मैं छत पर खड़ा था। ऊपर से ईंटें नीचे फेंक रहा था। एक ईंट किसी रास्ते में चलते हुए बच्चे के ऊपर गिरी और वह मर गया। बताइये क्या मुझे भी पाप लगेगा ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया—"यह बताओ कि तुम रास्ते से जाओ और एक आदमी बंदूक चलाना सीख रहा हो, यदि उसकी गोली से तुम्हें चोट लग गयी तो तुम उसे पापी मानोगे या नहीं। सावधानी न रखने से, प्रमाद से, अयतना से पाप लगता है।

तब एक चौथे आदमी ने पूछा—"गुरुदेव मैं किसी का बुरा तो नहीं करता लेकिन जब किसी का बुरा होता है तो मुझे खुशी होती है।

गुरुदेव ने जवाब दिया यह दुर्भावना है, यह बहुत बड़ा पाप है। ऐसा आदमी नरकों में जाता है और सातवीं नरक तक जाता है। अच्छे काम को अच्छा समझना और उससे खुश होने वाला धर्मात्मा होता है और बुरे काम को अच्छा समझने वाला या उससे खुश होने वाला पापी होता है।

सारे धर्म का सार यही है कि मुनि गजसुकुमाल की तरह या अर्जुनमाली की तरह या मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह किसी पर क्रोध मत करो और अपने शरीर के ऊपर आये हुए कष्टों को दुःख मत मानो और नवकार मंत्र या सिद्धों का ध्यान और सिद्धांत का चिंतन यानी ज्ञान का चिंतन करने से शुद्ध भावना आने से कर्म कटते हैं।

संसार की चार घाटियाँ

क्रोध	परिवार मोह	अहंकार	इच्छा
(1) (2)	(3) (4) (5) (6)	(7)	(8)

1. मुझे दुःख देने की मूल भौतिक शक्ति केवल मेरे ही अशुभ कर्मों में है। निमित्त शत्रु पर क्रोध क्यों किया जाय।

2. परिवार के किसी सदस्य के साथ मेरे पूर्व जन्म के वैर के कारण यदि मेरे अशुभ कर्म उससे मुझे दुःख दिलावें या जहर पिलावें तो भी उस निमित्त पर मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। जैसे कि मुनि उदाई ने, भक्त मीराबाई ने, कृष्णाकुमारी ने जहर पिलाने वालों पर भी क्रोध नहीं किया।

3. परिवार का कोई भी सदस्य मेरे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में और दुःख को सुख में नहीं बदल सकता। परिवार की शक्ति सीमित है।

4. मुझे मेरे शुभ कर्मों से परिवार के द्वारा जो सुख मिलता है उसको अधिक बढ़ाने की शक्ति परिवार में नहीं है।

5. अन्तराय कर्म के उदय के समय मेरे अन्तराय कर्म को तोड़कर मुझे सुख देने की शक्ति परिवार में नहीं है।

6. मैं परिवार के अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकता अतः मेरा परिवार के लिए चिंता, मोह करना व्यर्थ है। भौतिक सुख दुःख देने की भौतिक शक्ति केवल प्राणी के स्वयं के कर्मों में ही है। परिवार तो केवल निमित्त ही बनता है।

7. मनुष्य के शुभ कर्मोदय के समय कम बुद्धि वाले को भी सफलता मिल जाती है किन्तु अशुभ कर्मोदय के समय, विनाश काल के समय बड़े-बड़े बुद्धिमान मनुष्यों को स्वयं की बुद्धि भी उनका साथ नहीं देती है। बुद्धि का अहंकार करना भूल है। अपनी बुद्धि अहंकार छोड़कर विनयपूर्वक बड़ों से राय लेना ही बुद्धिमानी है।

8. प्रथम इच्छा शोधन और अन्त में इच्छा निरोध यही मोक्ष का मार्ग है।

अशुभ कर्म से है दुःख आया।
क्रोध न कर, कर कर्म सफाया।।
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
चिंता मोह मैं व्यर्थ ही करता।।
भौतिक शक्ति है, निज कर्मों में।
सुख देने की शुभ कर्मों में।।
दुःख देने की पाप कर्म में।
बुद्धि वैसी ही बन जाती।।
जैसी कर्मों की गति चाहती।।

धारिणी रानी की परिवार सेवा

महारानी धारिणी ने अपने गर्भ की सेवा मोह भाव से न करके अनुकम्पा भाव से की थी। इसके कारण मोह से होने वाले पाप से वह बची रही और उसे अनुकम्पा भाव से धर्म लाभ हुआ।

1. उसने अपने गर्भस्थ बालक के बारे में कभी यह ख्याल नहीं किया कि यह मेरी संतान है किन्तु वह मोह भाव से दूर रहकर यही सोचती थी कि मेरे गर्भ में जो संतान है वह एक आत्मा है, स्वतंत्र आत्मा है, मुझसे अलग है। मुझे उसे 'मेरा' नहीं समझ कर केवल आत्मा समझ कर उसका पोषण करना चाहिए। इस प्रकार वह ममत्व से दूर रही।

2. उसमें स्वार्थभाव नहीं था, उसने कभी यह विचार नहीं किया कि यह बड़ा होकर मेरी सेवा करेगा, मुझे सुख देगा। वह सिर्फ यही सोचती थी कि पूर्व जन्म के कर्मों के संबंध से आत्मा मेरे निकट आयी है, उसकी सेवा नहीं करना महापाप और उसकी सम्यक् सेवा करना मेरा धर्म है।

3. उसके मन में हमेशां अनुकम्पा भाव रहता था कि मेरे सोने-जागने, उठने-बैठने, चलने-फिरने और खाने-पीने से या किसी भी शारीरिक क्रिया से इस आत्मा को दुःख न पहुँचे। यह अनुकम्पा का प्रथम चरण है।

4. वह यह ध्यान रखती थी कि इस आत्मा के शारीरिक पोषण में कमी नहीं आवे। इसका स्वस्थ जीवन-निर्माण होता रहे, यह अनुकम्पा का दूसरा चरण है। वह अपने चिंतन-मनन में, प्रवचन सुनने में, वार्तालाप में यह ध्यान रखती थी कि इस आत्मा को ध्यान की प्राप्ति हो, आत्म ज्ञान का बोध हो और आत्मोन्नति हो। यह अनुकम्पा का तीसरा चरण है। अपने गर्भ की आत्मा के हित में निमित्त बनने के लिए उसने अपनी सुख-सुविधा का त्याग कर दिया। जिस प्रकार कि राजा मेघरथ कबूतर की रक्षा के लिए अपनी देह को त्यागने के लिए तैयार हो गये थे, सेठ सुदर्शन ने रानी अभया पर अनुकम्पा करके मौन रखा और सूली पर चढ़ने को तैयार हो गए, और मुनि मैतार्य ने सोने के यव (जौ) चुनने वाले पक्षी की अनुकम्पा के लिए मौन रखकर अपने प्राण त्याग दिए यही अनुकम्पा का चौथा और उत्कृष्ट चरण है।

प्राणी जब तक परिवार में रहता है तब तक उसे मोह से वचकर अनुकम्पा भाव से परिवार की सम्यक् सेवा करना उसका परम धर्म है।

सत्यवादी हरिशचन्द्र

एक बार स्वर्ग लोक की अप्सराएँ पृथ्वी पर आकर मुनि विश्वामित्र के आश्रम में खेलने लगी, जिससे उनके आश्रम की वाटिका में फूलों के पेड़ और लताएँ क्षत-विक्षित हो गयी। जब मुनि विश्वामित्र वहाँ आए तो उन्हें बहुत क्रोध आया और उन्होंने अप्सराओं को तप बल से लताओं से बाँध दिया। इस पर अप्सराएँ चिल्लाने लगी–"हमें बचाओ, हमें बचाओ।" उसी समय संयोग से महाराज हरिशचन्द्र का उधर आना हो गया। जब उन्होंने यह पुकार सुनी तो उन्होंने वहाँ आकर अपने सत्यबल की शक्ति से अप्सराओं को बंधन मुक्त कर दिया। तपस्वी में देवताओं से अधिक शक्ति होती है और तपस्वी से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है। सत्य महातप है, महाव्रत है, इससे मनुष्य को महाशक्ति प्राप्त होती है। सत्यवादी को देवता भी नमस्कार और प्यार करते हैं और उस प्राणी के प्रार्थना किए बिना भी उसकी सहायता करते हैं।

सच बोलूंगा, सच बोलूंगा।
निश्चय ही मैं सत्य बोलूंगा।।
सुख आवे या दुःख आवे मैं।
झूठ कभी नहीं बोलूंगा।।

दुर्भावना से बचिए

बड़े लोगों की बात अलग है किन्तु साधारण लोगों में अशुभ कर्म बंधन का एक बड़ा कारण है दुर्भावना का होना। दुर्भावना में भी दो मुख्य बाते हैं। प्रथम दूसरों के पतन पर या दूसरों के दुःखी होने पर हमारे मन में हल्की-सी खुशी का होना। दूसरी बात है दूसरों को दुःख पहुँचाने की भावना। इन दो बातों को मिटाने का एक ही उपाय है कि "सबका भला हो, सबका भला हो" हम इस भावना का प्रतिदिन काफी समय तक चार छः महीनों तक स्वाध्याय करें अर्थात् इसका जप चिंतन-मनन करें।

इस उपाय से प्राणी बहुत से अशुभ कर्म बंधन से बच सकेगा।

सबका भला हो, "सबका भला हो" इसके स्वाध्याय से दुर्भावना आनी बंद हो जाएगी।

स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष मार्ग

कषाय मुक्ति : पाँचवा भाग

स्वाध्याय के सूत्र

दुर्भावना

हमारे विचारों से सहमत नहीं होने वाले, हमारी इच्छा के अनुसार नहीं चलने वाले, हमारा विरोध और भारी अहित करने वाले, वे चाहे शत्रु हों या हमारे परिवार के सदस्य ही क्यों न हों, उनके प्रति कभी-कभी हमारे मन में दुर्भावना पैदा होती है। दुर्भावना में इतनी बड़ी शक्ति है कि उससे सातवीं नरक तक जाना संभव हो सकता है। इस दुर्भावना को हमेशा के लिए अपने मन से दूर करने के लिये सद्भावना भाने का अभ्यास (साधना) करना आवश्यक है।

(मान लीजिए मूलशंकर के प्रति हमारे मन में दुर्भावना पैदा होती है। अतः हमें इस प्रकार की भावना भानी चाहिए—1. मूलशंकर का भला हो, भला हो, भला हो, 2. मूलशंकर स्वस्थ हो, सुखी हो, 3. उसे आत्मबोध हो, उसके दिल में मेरे प्रति व दूसरों के प्रति प्रेमभाव हो। उसका जीवन समतामय हो)।

इसमें से जो भावना भानी आवश्यक हो, उसका अभ्यास या स्वाध्याय आठ-दस महीने प्रतिदिन कई बार दोहराया जाए।

(यह स्वाध्याय एक तरह से इच्छा निरोध तप का साधन है और इससे मोक्ष की प्राप्ति होना भी संभव है। सम्भव है आपके इस स्वाध्याय से उसमें भी सद्भावना पैदा हो जाए और वह आपका मित्र बन जाए।)

शत्रु नहीं उपकारी मानो

जो प्राणी आपके दुःख में निमित्त बने, उसे अपना शत्रु मानना भूल है क्योंकि आपने इस जन्म में या किसी पूर्वजन्म में जान-बूझकर या अनजान में उसको या किसी अन्य प्राणी को अवश्य ही दुःख दिया होगा, तभी तो आपको दुःख मिला है और शायद जिस प्राणी को आप शत्रु मान रहे हैं, उस प्राणी को उसकी इच्छा न रहते हुए भी दूसरे के बदले में निमित्त

बनना पड़ा हो। जैसे—भगवान् महावीर को संगमदेव ने उपसर्ग (कष्ट) दिए थे। तीर्थंकर महावीर ने इसका बदला नहीं लिया तो संगमदेव को दंड देने के लिए इन्द्रदेव को निमित्त बनना पड़ा। इसी प्रकार जिससे आपको दुःख मिल रहा हो, उस व्यक्ति को शायद दूसरे के बदले में निमित्त बनना पड़ा हो। इसलिए दंड में निमित्त बनने वाले को शत्रु मानना भूल है।

निमित्त को उपकारी मानने से प्रथम तो निमित्त पर क्रोध नहीं आता, रौद्रध्यान नहीं बनता, बदला लेने की दुर्भावना नहीं बनती, वैर नहीं बंधता और अशुभ कर्म नहीं बंधते। दूसरे, उपकारी मानने से दुःख नहीं होता, आर्तध्यान नहीं बनता, नये अशुभ कर्म नहीं बंधते। तीसरे, समताभावी बनने में बहुत सहायता मिलती है, जिससे बहुत से अशुभ कर्म कट जाते हैं।

निमित्त द्वारा दुःख मिलने से बहुत से लोगों को अप्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी लाभ भी होता है। जैसे—1. भीम को कौरवों द्वारा जहर पिलाकर बेहोशी की दशा में नदी में बहा दिया गया। भीम को खिलाया गया जहर उसको सर्पों के काटने से दूर हो गया और उसे वहाँ वल्लरी का रस पीने को मिला जिससे उसमें हजार हाथियों का बल आ गया। 2. प्रद्युम्नकुमार का उसके जन्म होते ही एक शत्रुदेव द्वारा हरण कर लिया गया। उसे पहाड़ों में एक पत्थर के नीचे दबाकर छोड़ दिया गया। किन्तु पुण्यशाली प्रद्युम्नकुमार पर एक विद्याधर की दृष्टि पड़ी। वह उन्हें अपने साथ ले गया और वहाँ पर प्रद्युम्नकुमार को अनेक विद्याओं की प्राप्ति हुई। राजा नल को जुए में राज्य हारने के बाद वन में भटकते हुए एक तक्षक द्वारा काट लिया गया जिससे उसके भाई कुबेर द्वारा उसके पकड़े जाने और मारे जाने का खतरा दूर हो गया। कुछ वर्षों के बाद शुभ कर्मों के उदय से उसे राज्य की प्राप्ति हो गई।

सारांश या स्वाध्याय सूत्र—कर्मों की गति बड़ी विचित्र होती है। कभी-कभी शत्रु द्वारा दिया गया दुःख भी मनुष्य की आत्मा का बहुत हित कर देता है। अतः निमित्त को शत्रु नहीं मानकर अपना मित्र समझना चाहिए।

क्रोध (शत्रु भावना)

1. बुरा अपने अशुभ कर्मों से होता है। निमित्त को शत्रु मानकर उस पर क्रोध करना भविष्य के लिए शत्रुता की परम्परा को चालू रखने के सिवाय और कुछ नहीं है। 2. यदि हमारे अशुभ कर्मों का उदय हो तो शत्रु या किसी प्राणी के निमित्त बने बिना भी हमारा बुरा हो सकता है।

जैसे–सडक पर पैर फिसल कर हम गिर सकते हैं और हमारा सिर फट सकता है। 3. हमारा बुरा होने पर हमें उस दुःखानुभूति को दूर करने का प्रयास करना चाहिए, जो दुःखानुभूति शीर्षक में दिया गया है। 4. दुःख में निमित्त बनने वाले को भी अपना उपकारी, अपने कर्म-रोग की दवा करने वाला डॉक्टर मानकर 'उसका भला हो, उसका भला हो' ऐसी सद्भावना भानी चाहिए। इससे दुःख और क्रोध दोनों ही से बचा जा सकेगा। 5. प्रतिदिन नियत समय पर कुछ समय के लिए क्रोध छोड़ने का नियम बनायें। यदि किसी दिन यह नियम भंग हो जाए तो प्रायश्चित कर लेना चाहिए।

अहं भावना

1. अहंकार से मनुष्य में हठ, दूसरों के प्रति घृणा, द्वेष दुर्भावना, शत्रुता और क्रोध पैदा होता है। 2. अहंकारी मनुष्य अपनी प्रशंसा सुनकर दूसरों से ठगा जाता है। जैसे–कौआ लोमड़ी से ठगा गया था। 3. अपने को बडा दिखाने के लिए व्यर्थ के दिखावे में वह अपना धन व अपनी शक्ति और समय को व्यर्थ खर्च करता है और उसका पतन होता रहता है। 4. अपने गुणों को देखने से, अपनी बडाई सुनने से, आदर-सत्कार पाने से और दूसरों के अवगुण देखने से मनुष्य में अहंकार पैदा होता है। अच्छा काम करने वाले को अपनी प्रशंसा या अहंभाव की भूख नहीं रखनी चाहिए। 5. अपने अवगुण देखने से, दूसरों के गुणों को देखने से, दूसरों की बड़ाई या प्रशंसा करने से, दूसरों से सलाह लेते रहने से अहंकार समाप्त होता है। 6. अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को, अपने से बड़े आदमियों को या अपने मित्रों को या अपने अधीन काम करने वालों को देने से अहंकार पैदा नहीं होता। 7. अहंकार से अशुभ कर्मों का बंध और आत्मा का पतन होता है, दुःख की प्राप्ति होती है और विनय से सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होता है। 8. अच्छा काम या धर्म करते समय असावधानी से यदि अहंकार आ जाए तो उस अहंभाव के लिए तुरन्त ही पश्चात्ताप कर लेना चाहिए। जब तक पश्चात्ताप नहीं किया जाएगा, तब तक उस धर्म कार्य का अच्छा फल भी नहीं मिलेगा। जैसे–बाहुबलीजी को जब तक उनका अहंकार नहीं छूटा तब तक घोर तपस्या का फल मिलना भी रुका रहा। 9. कोई मनुष्य किसी दूसरे प्राणी का उसके अशुभ कर्मों के बिना बुरा नहीं कर सकता। अतः किसी कार्य का अहंकार करना भूल है। 10. मनुष्य अपने ही निकाचित और बहुत से कर्मों को काट नहीं सकता है, उन्हें भोगना ही पड़ता है। फिर

अहंकार करना भूल है। 11. मनुष्य जब बहुत वृद्ध हो जाता है और उसके हाथ पैर काम नहीं देते तब उसे अनुभव होता है कि अहंकार करना भूल है। 12. सारी शक्ति कर्मों के हाथ में है। अतः अपने शरीर का, धन का, परिवार का या बुद्धि का अहंकार करना भूल है। 13. अशुभ कर्मोदय के समय बुद्धि काम ही नहीं देती, किन्तु वह कर्मों के अनुसार उल्टा काम करा देती है। इसलिए अपनी बुद्धि का अहंकार करना बड़ी भूल है।

कपट (माया)

1. किसी भी काम में सफ़लता शुभ कर्मों से मिलती है। कपट करने वाले बहुत से आदमी अपने कामों में असफल रहते हैं। 2. यदि कपट से सुख मिलता तो प्रायः सभी लोग दुःख से बच जाते। 3. कपट अशुभ कर्म है। कपट के साथ किया हुआ अच्छा काम भी बुरा बन जाता है। 4. वह कपट का भेद खुल जाने के डर से हमेशा भयभीत और दुःखी रहता है। 5. कपट करने वाले का कोई भी विश्वास नहीं करता है। सभी लोगों से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और उसका आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पतन हो जाता है। 6. सत्य आचरण करने वाले की देवता भी सहायता करते हैं।

धन लोभ से बचिए

गृहस्थ को अपने और अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए धन तो कमाना ही पड़ता है। किन्तु यदि वह धन कमाते हुए भी अपनी विचारधारा को सही मार्ग पर चलाए और अपने विचारों में हर्ष-विषाद न होने दे तो वह धन के लोभ से होने वाले अशुभ कर्मों के बंध से और अशुभ कर्मों के बंध से मिलने वाले दुःख से बच सकता है। जैसे—एक सेठजी को उनके मुनीमजी ने कहा कि जो एक लाख रुपये का माल गोदाम में रखा गया था उसका भाव घट गया है और बहुत हानि हो गई है। यह सुनने पर भी सेठजी के चेहरे पर उदासी नहीं आई और उन्होंने कहा—"जैसा योग था, वैसा हो गया। चिंता करने की क्या जरूरत है ?" दूसरे दिन ही बाहर भेजे हुए माल के बाबत मुनीमजी ने कहा कि इसमें दो लाख का लाभ हुआ है। यह सुनकर सेठजी के मन में कुछ भी हर्ष नहीं हुआ और उन्होंने मुनीमजी से कहा कि लाभ और हानि तो कर्मों का खेल है। इसमें हर्ष और विषाद करने की क्या जरूरत है ? इस प्रकार की भावना वाले लोग ही अशुभ कर्मों के बंध और अशुभ कर्मों से मिलने वाले दुःख से बच सकते हैं।

हम दूसरों के जीवन या सुख या धन का हक छीन लें तो उस अशुभ कर्म और पाप के बदले में हमारे अशुभ कर्मों का बंध होता है और उससे हमें बहुत समय तक दुःख भोगना पड़ता है।

जैन आगम "दशवैकालिक" कहते हैं 'खणमेत् सोक्खा, बहुकाल दुक्खा' अर्थात् थोड़े समय के थोड़े से सुख के बदले में बहुत समय तक बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। इससे हम छूट नहीं सकते।

भौतिक शारीरिक सुख के पाने से, उसके लिए धन पाने से, पुराने सुखों को याद करने से, उनकी कल्पना करने से, उनकी बाबत विचार करने से, उनकी इच्छा करने से और शेख चिल्ली की तरह मैं ऐसा करूंगा, वैसा करूंगा इस प्रकार के मन के मोदक (लड्डू) खाने से चाहे काम कुछ भी न करें किन्तु केवल विचार करने से ही मन में खुशी होती है। यह सुखानुभूति है। कभी-कभी दूसरों का पतन होने से, दूसरों के संकट में फंसने से या दूसरों को दुःखों में डालने के विचार से सुखानुभूति होती है। इसमें अशुभ कर्मों का बंध होता है और प्रत्येक सुखानुभूति के लिए हमें दुःख उठाना पड़ता है।

सारांश–प्रत्येक थोड़े से भौतिक सुख के लिए भी बहुत काल तक दुःख उठाना पड़ता है। सुख में रस नहीं लेने से नये कर्मों के बंध से बच सकते हैं।

शरीर-निर्वाह की दृष्टि से आवश्यक साधनों का सहारा लेना पड़ता है। परन्तु उसमें जितना अधिक विवेक-सावधानी रहेगी, उतने ही कम कर्मों का बंधन होगा।

सुखानुभूति

1. अपने शरीर से, धन से और अपने मन के विचारों से मिलने वाले भौतिक-शारीरिक-इन्द्रिय सुख को सुखानुभूति कहते हैं। 2. प्रत्येक थोड़े से भौतिक सुख के बदले में बहुत काल तक दुःख भोगना पड़ता है। 3. सुख भोगों में डूबा रहने वाला मनुष्य ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह सातवीं नरक में जाता है। 4. सुख-भोगों में नीरसता रखने वाले (रस नहीं लेने वाले) जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष में जाते हैं। 5. ये सुख-भोग उन गोलियों के समान है जो ऊपर से चीनी की चाशनी लगने के कारण मीठी और स्वादिष्ट लगती है किन्तु जिनके अन्दर हलाहल (जहर) भरा है और वे खाने वाले का प्राणांत कर देती है। 6. ये सुन्दर और सुखद सवारियाँ हैं जो सवार को

नहीं संभलने से उसे नरक में ले जाती है। 7. सुख-भोगों के समय यह विचारना चाहिए कि "खेद है कि मेरे कर्म बंध रहे हैं, मेरे कर्म बंध रहे हैं।" इस विचार से सुख की आसक्ति कम हो जाएगी।

दुःखानुभूति

1. सुख-भोगों में बाधा पड़ने से या उनके लिए धन नहीं मिलने से या रोगों से घिर जाने पर या अप्रिय घटना घट जाने पर या उपसर्गों के आने पर मनुष्य को दुःखानुभूति होती है। इससे अशुभ कर्मों का बंध होता है जो दुःख का कारण बनता है। 2. अपने पति के मर जाने पर और इससे अपने सुख-भोगों में बाधा पड़ने पर चक्रवर्ती की पटरानी छः मास तक दुःख और विलाप करके छठे नरक में जाती है। 3. दुःखानुभूति से बचने वाले और दुःख को कर्मों की निर्जरा में सहायक समझकर समता रखने वाले समता से अपने कर्म काटकर मुनि गजसुकुमाल, मुनि उदाई की भांति मोक्ष में जाते हैं। 4. दुःख में दुःखी होने और रोने से जो नवीन अशुभ कर्म बंधते हैं, उनके बदले में उसे पुनः दुःख मिलता है। 5. दुःख के समय यह विचारधारा दुःख को कम करने में सहायक होगी–"यह दुःख, दुःख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। यह मेरे कर्मों की निर्जरा है। मुझे हिम्मत रखनी चाहिए, मुझे समता रखनी चाहिए। इससे मेरे कर्म कटेंगे। आज मेरा अहोभाग्य है कि मेरे कर्म कट रहे हैं और मैं मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ।

इच्छा

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का आत्म-उत्थान रुक जाए, उसे कर्तव्य या आत्म-धर्म समझना चाहिए। जैसे–दान, तप या स्वाध्याय। इनका करना कर्तव्य है।

जिन कामों के नहीं करने से अपना और दूसरों का जीवन-निर्वाह रुक जाए, उसे आवश्यकता या अनिवार्य कार्य समझना चाहिए। जैसे–भूख में सादे भोजन के लिए मन का चलना, शीत-ताप और वर्षा से बचने के लिए आश्रय की इच्छा।

जिस वस्तु या काम के किए बिना जीवन-निर्वाह या आत्म-उत्थान में बाधा नहीं पहुँचे किन्तु जिससे भौतिक सुखानुभूति मिलती हो, उस वस्तु या काम के लिए मन का चलना इच्छा है। जैसे सादे भोजन के स्थान पर बढ़िया स्वादिष्ट पकवानों की इच्छा करना, साधारण आश्रय की जगह

बड़े-बड़े महलों या वातानुकूलित कमरों की इच्छा करना, थोड़ी दूर जाने के लिए भी पैदल न चलकर सवारियों की इच्छा करना।

इच्छाएँ आकाश के समान अनंत है। उनका अंत नहीं आता। यह याद रखने की बात है कि 1. शुभ कर्मोदय के समय सुख की इच्छा के बिना भी सुख की वर्षा होती है। 2. अशुभ कर्मोदय के समय सुख की इच्छा करने से भीं सुख नहीं मिलता। 3. महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाहिंसा के केवल विचारों से, केवल इच्छाओं से और केवल योजनाओं के बनाने से ही कुछ कार्य किए बिना भी अशुभ कर्मों का बंध होता है और प्राणी सातवें नरक तक पहुँच सकता है। 4. अशुभ इच्छाओं से और कामों से बचना इच्छा निरोध, तप और मोक्ष का मार्ग है। 5. यदि किसी अशुभ बात की इच्छा दस बार की जावेगी तो दस बार ही कुछ काम किए बिना भी अशुभ कर्मों का बंध होगा और प्रत्येक के बदले में दुःख भोगना पड़ेगा। 6. समता, सादगी, सत्याचरण, निर्लोभ और संतोष ये इच्छा शोधन और इच्छा निरोध के कार्य हैं और आत्मा को ऊपर उठाते हैं। 7. सुख भोगों की इच्छा दुःख और नरक का मार्ग है और इनसे बचना सुख और स्वर्ग का मार्ग है।

परिवार नाथ नहीं है साथ नहीं है

गृहस्थ भी यदि कषाय छोड़ें और सही मार्ग पर चलें तो उन्हें भी परिवार में रहते हुए और परिवार की सम्यक् सेवा करते हुए कूर्मा पुत्र केवली की तरह गृहस्थ दशा में भी केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है। जैन आगम में 'गृहस्थ सिद्धा' शब्द आया है। उसका अर्थ है कि गृहस्थ दशा में रहते हुए भी मनुष्य सिद्ध बन सकता है और यह तभी संभव है जबकि उसका मोह पूर्णतया दूर हो जावे और वह परिवार की सम्यक् सेवा करता रहे। परिवार में मोह का होना या परिवार-मोह का टूटना मनुष्य के विचारों पर निर्भर करता है। मनुष्य अपने विचारों को सुधारकर परिवार में रहता हुआ भी अपने विचारों के कारण परिवार-मोह से बच सकता है। किन्तु यदि विचार न सुधारे तो परिवार को छोड़ने के बाद भी परिवार के मोह में फंसा रह सकता है। अतः इस संबंध में उसे अपना दृष्टिकोण सुधारना पड़ेगा और इसके लिए कर्मों की शक्ति को और कर्मों की व्यवस्था को अच्छी तरह समझना जरूरी है। जिन-जिन प्राणियों ने अपने पूर्व जन्मों में अच्छे या बुरे, जो-जो जैसे-जैसे काम किए हैं उनको वैसे-वैसे अच्छे या बुरे कर्मों के

अनुसार अच्छे या बुरे फल देने की व्यवस्था उनके कर्मानुसार होती है। क्योंकि ये फल केवल भौतिक शरीर के माध्यम से ही भोगे जा सकते हैं, इसलिए उन-उन प्राणियों को फल भोगने के लिए देव या मनुष्य या नारकी पशु या पक्षी की, जैसी शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा ही शरीर उन्हें कर्मानुसार मिलता है और किस-किस प्राणी को उस-उस शरीर में कितने-कितने समय तक कब से कब तक रहना है, यह भी उनके कर्मों पर निर्भर है। इसके साथ-साथ किस-किस प्राणी को यानी उपादान को, किस-किस प्राणी से अर्थात् निमित्त से कैसे-कैसे और कितना-कितना सुख-दुःख मिलना है, इस व्यवस्था में भी उनके कर्मों की प्रधानता होती है। और उस फल पाने वाले (उपादान) को फल देने वाले (निमित्त) का उतने समय तक एक परिवार में जन्म द्वारा, विवाह द्वारा रहना या स्वामी-सेवक के रूप में रहना या एक-दूसरे के शत्रु के रूप में एक ही परिवार में रहना या एक परिवार के रूप में रहना भी उनके कर्मों पर आधारित है अर्थात् परिवारों की रचना प्राणियों के कर्मानुसार होती है। दो प्राणियों का संयोग तथा वियोग भी कर्मानुसार होता है। इस प्रकार परिवार की रचना का आधार भी उपादानों या निमित्तों का संयोग ही है।

सारांश–जब तक सब कर्मो का क्षय नहीं होता है तब तक सभी मनुष्यों, पशुओं और पक्षियों को अपनी आयु समाप्त होने पर उनके कर्मों का फल भोगने के लिए कर्मो के आदेशों के अनुसार पुराने शरीर और परिवार को छोड़कर नये शरीर और दूसरे परिवार में जन्म लेना पड़ता है। किसी भी मनुष्य को उसके शुभ कर्मो के बिना उसके परिवार वाले उसके नाथ (रक्षक) नहीं बन सकते और हमेशा उसके साथ नहीं रह सकते। इसलिए परिवार के बाबत कहा जाता है–"नाथ नहीं है, साथ नहीं है।"

परिवार मोह

1. कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी को उसके अशुभ कर्मों के फल से, दुख से, कष्ट से, हानि से और मौत से प्रयास करने पर भी बचा नहीं सकता। 2. पिता-पुत्र या पति-पत्नी एक-दूसरे का भला उनके शुभ कर्मोदय के बिना प्रयास करके भी नहीं कर सकते। 3. शुभ कर्मोदय के समय किसी भी प्राणी का दूसरे शत्रु के द्वारा बुरा किए जाने पर भी उसका बुरा न होकर भला ही होता है। 4. किसी को सुख देना या उसका भला करना परिवार की

शक्ति में नहीं है। केवल कर्माधीन है। 5. यादवों के अशुभ कर्मोदय के समय में श्रीकृष्ण ने उनको और अपने माता-पिता को भी जलने से बचाने का पुरुषार्थ किया, किन्तु वे अपने अशुभ कर्मों के कारण वचाये न जा सके। 6. मुनि सर्वानुभूति और मुनि सुनक्षत्र की आयु-समाप्ति का प्रसंग ज्ञान के आधार जानकर तीर्थंकर महावीर ने उनको बचाने का विचार या प्रयास ही नहीं किया। 7. जब तक हम गृहस्थी में परिवार के साथ रहते हैं तव तक हमें 'यह मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है' ऐसे मोह में नहीं पड़कर उनको 'यह आत्मा है, केवल आत्मा ही है' ऐसा मानकर उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए। 8. परिवार-मोह छोड़ने वाली मरुदेवी माता मोक्ष गई।

आत्म-भावना

(केवलज्ञान प्राप्ति की साधना)

1. शरीर अलग है। मैं (आत्मा) अलग हूँ। 2. इस हाड़-मांस, रक्त-चर्म के शरीर के सम्पूर्ण ढांचे में मैं (आत्मा) फैला हुआ हूँ। 3. इस शरीर में जो जीवन है, शक्ति है, संवेदनशीलता है, ज्ञान है, चेतना है, वही मैं चेतन (आत्मा) हूँ। (वे सब आत्म प्रदेश हैं।) 4. मैं अमूर्त हूँ। इसलिए मुझे देखा नहीं जा सकता है। किन्तु मेरे अस्तित्व की अनुभूति मेरे जीवन और शक्ति आदि से की जा सकती है। 5. शरीर मरता है, मैं (आत्मा) नहीं मरता। 6. मैं शरीर से निकल जाता हूँ, क्योंकि शरीर मेरा नहीं है। 7. मैं ज्ञान का भंडार हूँ, शक्ति का भंडार हूँ, सुख का सागर हूँ और आनंदघन हूँ। मेरा लक्ष्य सिद्ध पद पाने का है। 8. मैं ही मेरा हूँ। मेरे सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं है। यह शरीर, यह परिवार, यह धन कुछ भी मेरा नहीं है। ये तो कर्मों के शुभाशुभ के फल मिलते-बिछुड़ते हैं।

शरीर मेरा नहीं है

1. शरीर अलग है, मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर नाशवान है, शरीर मेरा नहीं है। 2. मरना (विनाश) इस शरीर का स्वभाव है। यह अनिवार्य नियम है। 3. यह शरीर कर्मों की देन है। मनुष्य को उसके कर्मों का फल शरीर के माध्यम से मिलता है। 4. प्राणी को उसके कर्मों के अनुसार मनुष्य, पशु या पक्षी का शरीर मिलता है। 5. यदि समझदार मनुष्य कार्य करते हुए जीवों की यतना रखता है और शरीर से मोह नहीं करते हुए इसे दूसरों के कल्याण-कार्यों में लगाता है तो वह मोक्ष का अधिकारी बनता है।

प्रतिदिन का स्वाध्याय

1. भला हो, भला हो, सबका भला हो, बुरा किसी का कभी नहीं हो। 2. इस संसार में मेरे अशुभ कर्मों के सिवाय कोई मेरा शत्रु नहीं है। क्रोध का आना दिमाग में कुछ खराबी होने की निशानी है। 3. मैंने जो अच्छा काम किया है, उससे समाज का कर्ज चुकाया है। अभी और भी कर्ज चुकाना बाकी है। मेरे अन्दर अहंकार का आना मेरे समझ की कमी है। 4. झूठ, कपट से धन आता नहीं, आता है तो ठहरता नहीं। ठहरता है तो बरबाद करके जाता है। और सत्याचरन वाले की देवता मदद करते हैं। 5. धन का आना और चला जाना दोनों ही कर्मों का खेल है। लोभ से अशुभ कर्मो का बंध होता है। यह भविष्य में दुःखों को निमंत्रण देना है। 6. प्रत्येक भौतिक सुख के बदले में दुःख तो भोगना ही पड़ता है। 7. दुःख को दुःख मानने से और रोने से होने वाले आर्तध्यान के बदले में नया दुःख फिर भोगना पड़ता है। 8. भौतिक सुख भोगों की केवल इच्छा से ही कुछ भी किए बिना भी अशुभ कर्म बंधते हैं और इच्छा निरोध (रोकने) से कर्म कटते हैं। 9. परिवार में कोई किसी का नाथ नहीं है और कोई किसी का साथी भी नहीं है। 10. यह शरीर अलग है और मैं अलग हूँ। यह शरीर मेरा नहीं है। यह परिवार भी मेरा नहीं है और यह धन भी मेरा नहीं है। 11. तन तजना है सिद्ध बनना है। अर्थात् यह शरीर छोड़कर सिद्ध बनना है। 12. प्रतिदिन बार-बार विचारिये कि कहीं क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ की भावना और अशुभ इच्छाओं का शिकार तो मैं नहीं बना हूँ। यदि ऐसा हुआ हो तो उसका पश्चात्ताप करना जरूरी है। 13. सत्य बोलने वाले की देवता प्रार्थना किये बिना भी मदद करते हैं। दान देने से कर्मों की रेखा भी बदल सकती है।

धर्म विचार सार

कषाय मुक्ति : छठा भाग

समता के नौ सूत्र–

क्रोध छोड़ने के लिए हमेशा इस प्रकार स्वाध्याय किया जाए–

1. क्रोध छोड़ने के लिए दिन में आधे घंटे तक नियत समय पर क्रोध नहीं करने का नियम बनाया जाय। इसका सावधानी से पालन करने से क्रोध अवश्य ही छूट जाएगा।

2. भक्षक भीतर, दु:ख का दाता।
क्रोध निमित्त पर व्यर्थ ही आता।।

3. मौन रहो अरु हट ही जाओ।
हठ छोड़ो अरु झुक ही जाओ।।

4. पानी पीओ क्रोध बुझाओ।
गुरु गुण गाओ शीश-झुकाओ।।

2. अहंकार से बचने के लिए नीचे लिखे विचारों का स्वाध्याय किया जावे–

1. सेवा की सो कर्ज चुकाया।
अहम् भाव मन में क्यों आया।।

2. अपने गुरुजनों से और बड़ों से सलाह लेने से, अपने भोजन में, वस्त्रों में, बातचीत में, विचारों में और जीवन के हर एक काम में सादगी रखने से, दूसरों की सेवा करने से, सेवा के प्रत्येक काम को कर्ज चुकाने का काम मानने से, अपनी सफलता का और अच्छे कामों का श्रेय (बड़ाई) अपने गुरुजनों और साथियों को देने से, अपनी बड़ाई नहीं सुनने से और जहाँ अपनी प्रशंसा हो रही हो वहाँ से उठकर थोड़ी दूर पर बैठ जाने से अहं भावना से बचा जा सकता है।

3. कपट (माया)–कपट से यदि सुख मिलता तो रावण परिवार और

कौरव परिवार कभी दुःख नहीं पाते। कपट से धन आता नहीं, यदि आता है तो ठहरता नहीं और ठहरता है तो बरबाद करके जाता है।

4. धन का लोभ–परिवार के और अपने जीवन निर्वाह के लिए धन कमाना तो गृहस्थ का धर्म है किन्तु धन कमाना ही अपना लक्ष्य बनाना मोक्ष मार्ग छोड़कर संसार के मार्ग पर चलना है। धन का आना और धन का जाना कर्मो का खेल है।

5. परिवार है साथी नहीं मेरा।
परिवार है साथी कर्मो का।।

परिवार वाले हमारे अशुभ कर्मों को शुभ कर्मों में नहीं बदल सकते।

6. मनुष्य के शरीर की रक्षा उसके शुभ कर्मों से ही होती है। इसलिए मनुष्य को अपने शरीर की विशेष चिंता नहीं करके अपना समय धर्म-ध्यान में लगाना चाहिए।

7. दुःख के समय रोने से, आर्तध्यान करने से अशुभ कर्मों का बंध होता है जिससे दुःख मिलता है। समता रखने से अशुभ कर्म नष्ट होते हैं।

8. भौतिक सुख भोग–भौतिक सुखों में और मनोरंजन में अशुभ विचार और अशुभ काम करने से, उनमें रस लेने से अशुभ कर्म बंधते हैं और दुःख मिलता है।

9. आत्म-भावना–मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ।
सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।

ऊपर लिखे हुए समता के नौ सूत्रों के संबंध में इस प्रकार चिंतन-मनन करना चाहिए–

10. क्रोध के संबंध में चिंतन-मनन–क्रोध अहंकार का उग्ररूप है। अहंकार से होने वाली सभी बुराइयाँ क्रोध में है। अहंकार छोड़ने से क्रोध छूट जाता है। क्रोध के समय मनुष्य प्रायः पागल-सा बन जाता है। वह चीजों की तोड़-फोड़ करता है। मनुष्यों से मारपीट करता है। दूसरों की तथा कभी-कभी अपनी भी हत्या कर लेता है। क्रोधी मनुष्य जीवन भर पछताता रहता है। क्रोधी मनुष्य अपने शत्रु के पीछे पड़ जाता है। उसके अपराध खोजता रहता है। अपराधों के लिए प्रमाण (सबूत) ढूंढ़ता है और उससे प्रतिशोध (बदला) लेता है। क्रोध आने का कारण है मनुष्य की इच्छापूर्ति में बाधा पड़ना। जैसे–प्रशंसा, धन प्राप्ति, भौतिक सुख प्राप्ति, परिवार से सुख प्राप्ति और उसके दुःख से भागने में बाधा पड़ना।

क्रोध छोड़ने का अभ्यास कल्पना द्वारा भी किया जा सकता है। भविष्य के पाँच-सात दिनों में आज या कल जिन घटनाओं के घटित होने की संभावना है उनकी कल्पना कीजिए और सम्भव है कि उनमें कुछ बातें ऐसी हों जिनसे आपको नाराजगी आवे या क्रोध आवे उनकी कल्पना कीजिए और फिर ये सोचिये कि आप उस समय क्रोध से बचने के लिए किन-किन बातों का विचार करेंगे और किस प्रकार क्रोध करने से बचेंगे। इस प्रकार का अभ्यास प्रतिदिन सबेरे करते रहने से क्रोध से बचा जा सकता है। इसी प्रकार बीते हुए समय में जब-जब क्रोध आया हो उन घटनाओं को याद कीजिए और भविष्य में ऐसी घटना होने पर आप क्रोध से कैसे बचेंगे इस पर गहरा चिंतन कीजिए।

क्रोध जीतने के उपाय हैं—प्रथम मौन रखना, दूसरे इन दो सूत्रों का बार-बार चिंतन-मनन करना "दंड अशुभ कर्मों से मिलता है और बुरा भी अशुभ कर्मों से होता है। मैं क्रोध किस पर करूं और क्यों करूं।"

प्रतिदिन बार-बार जाँच करनी चाहिए कि मेरा क्रोध छूटा या नहीं। अगर नहीं छूटा तो मुझे पश्चात्ताप करना चाहिए। "धिक्कार है मुझे अभी मेरा क्रोध नहीं छूटा।"

11. अहंकार के संबंध में चिंतन—जिस मनुष्य के शरीर में बहुत बल है, जिसके पास विशाल राज्य शक्ति है, जिसको विपुल धन मिला है, जिसको महान् शक्तिशाली और आज्ञाकारी बड़ा परिवार मिला है, जिसकी बुद्धि की प्रशंसा संसार करता है, ऐसा मनुष्य कभी-कभी अपनी शक्ति का अहंकार करता है और कहता है कि मैं जो चाहूँ सो संसार में कर सकता हूँ किन्तु यह उसकी भूल है क्योंकि जब जिस मनुष्य के अशुभ कर्मों का और असातावेदनीय कर्मों का उदय होता है तब उसकी सभी शक्तियाँ अशुभ कर्मों की एक ही चोट में उसकी बुद्धि को विपरीत और विनाशकारी बना देती है और उस मनुष्य का विनाश कर देती है।

रावण के अशुभ कर्मों ने उसकी बुद्धि को विपरीत बनाकर सीता का हरण कराया। विभीषण को लात मरवाकर विद्रोही बनाया, सीता को नहीं लौटाने दिया। राम से युद्ध करवाया और रावण परिवार का विनाश करवाया। दुर्योधन के अशुभ कर्मों ने उसको पांडवों का शत्रु बनवाया। श्रीकृष्ण का संधि प्रस्ताव अस्वीकार करवाया, महाभारत का युद्ध करवाया

और कौरव वंश का विनाश करवाया। पृथ्वीराज के अशुभ कर्मों ने उसको अहंकारी बनवाया, उसे असावधान बनवाया, मोहम्मद गोरी को जेल में कैद करवाया, पृथ्वीराज को अंधा बनवाया और उसकी दुर्दशा करवायी। अशुभ कर्म अपनी पहली चोट मनुष्य की बुद्धि पर ही लगाते हैं और बुद्धि विपरीत बनाकर उस मनुष्य का विनाश कराते हैं। मनुष्य के शरीर को रोग और बुढ़ापा बेकार बना देते हैं। मनुष्य के धन को धूर्त लोग और मनुष्य का दुर्भाग्य खा जाता है। अशुभ कर्मोदय के समय परिवार की शक्ति को परिवार की फूट खा जाती है। उसकी बुद्धि को उसके अशुभ कर्म विपरीत और विनाशकारी बना देते हैं। इस प्रकार मनुष्य की सभी शक्तियाँ बेकार बन जाती है। अतः अहंकार करना भयंकर भूल है।

12. माया (कपट) के संबंध में चिंतन—साधारण मनुष्य से देवता में और देवताओं से तपस्वियों में और तपस्वियों से भी अधिक शक्ति सत्यवादी में होती है, जैसा विश्वामित्र और हरिशचन्द्र की कथा से प्रमाणित होता है।

13. धन का लोभ—जो धन जब, जितना और जिस प्रकार से कर्मों के अनुसार आना है वे तो साधारण पुरुषार्थ से और बिना इच्छा के और लोभ की भावना के बिना भी आ ही जावेगा। समझदार मनुष्य धन का लोभ नहीं करता। वह इच्छा छोड़कर 'इच्छा निरोध तप' से अपने अशुभ कर्मों को नष्ट करता है। साधारण स्थिति में कभी-कभी मनुष्य अशुभ काम और पाप कर बैठता है जिससे साधारणतया आता हुआ धन भी बंद हो जाता है। कभी-कभी शुभ कर्मो से दान देने से और पुण्य करने से तुरन्त ही अधिक धन आ सकता है। जैसे महापुरुष को दान देने से कभी-कभी धन की वर्षा होने लगती है या धन आने लगता है। इसलिए मनुष्य को जीवन में हमेशा शुभ व्यवहार का ही पालन करना चाहिए।

14. परिवार के संबंध में चिंतन—क्या आप मोक्ष पाना नहीं चाहते ? परमात्म पद पाना नहीं चाहते ? यदि चाहते हैं तो यह स्पष्ट है कि आपकी अन्तरात्मा यह मान चुकी है कि परिवार आपका नहीं है। आप इसे मोक्ष पाने के लिए छोड़ने को तैयार हैं। मरते समय परिवार को छोड़ना ही पड़ता है। जब शरीर ही छोड़ना पड़ता है तो परिवार अपना होगा ही कहाँ से ? आत्म-भावना भाने वाला यही स्वाध्याय करता है कि मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं होता। यह शरीर मेरा नहीं है, यह परिवार मेरा नहीं

है, यह धन, घर आदि मेरे नहीं है। संसार में सब प्राणियों में केवल मुख्यतया एक ही संबंध होता है—निमित्त और उपादान कारण। एक प्राणी दूसरे प्राणी को सुख या दुःख, अन्न या धन, ज्ञान या अज्ञान देने में निमित्त कारण बन सकता है और दूसरा प्राणी उन्हें पाकर उपादान। एक दाता बनता है और दूसरा पाने वाला पात्र। संसार में सभी प्राणियों में केवल निमित्त और उपादान बनने का ही संबंध होता है। परिवार के जिन प्राणियों में परस्पर ऐसा बनने का संयोग, कर्मों की प्रेरणा से नहीं होता, तो उन प्राणियों का पारिवारिक संबंध भी टूट जाता है। कुंती ने अपने पुत्र कर्ण को जन्मते ही छोड़ दिया था। करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहां आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। इस दृष्टि से माता-पिता का संबंध बनने का जीवन में इतना महत्त्व नहीं है जितना महत्त्व निमित्त उपादान संबंध होने का होता है।

अतः परिवार यदि कदाचित् अपना शत्रु या मित्र बन जाता है तो भी उसे शत्रु या मित्र नहीं समझना चाहिए क्योंकि वह तो कर्मों की प्रेरणा से ही शत्रु या मित्र बनता है।

परिवार है साथी नहीं मेरा।
परिवार है साथी कर्मों का।।

15. शरीर भावना—शरीर की रक्षा हमारे कार्मण शरीर जो हमेशा हमारी आत्मा के साथ ही चिपका हुआ रहता है के द्वारा ही होती है। आदिनाथ भगवान के बारह महीने तक निराहार रहने के समय, बाहुबलीजी के बारह महीने में तपस्या में रहने के समय, भगवान महावीर के 5 महीने 27 दिन तक निराहार रहने के समय और मृगालोढ़ा के हाथ पैर नहीं होते हुए भी उसके शरीर की रक्षा उनके कर्मों के द्वारा ही हुई। पशुओं की, पक्षियों की, गर्भ के भीतर के जीवों की और अंडों के भीतर जीव की रक्षा भी उनके कर्मों द्वारा और आयु द्वारा होती है। अतः समझदार मनुष्य अपने शरीर के लिए विशेष चिंता नहीं करता और अन्याय, अनीति और अशुभ उपायों और पाप कर्मों का सहारा नहीं लेता। वह साधारणतया अपना जीवन निर्वाह करता हुआ अपने शरीर से अपना अधिक समय परमात्मा के भजन और धर्म ध्यान में ही लगाता है।

16. दुःख भावना के संबंध में चिंतन—जो दुःख जब, जितना, जिस

प्रकार और जिस निमित्त से आना है वह या तो तप से नष्ट होता है या समताभाव पूर्वक भोगने से ही नष्ट होता है। समताभाव पूर्वक दुःख भोगने से मोक्ष मिलता है। जो सेवा जब, जितनी, जिसकी, जिस प्रकार निकाचित कर्मो की गति के अनुसार करने का योग है वह तो चन्दनबाला की तरह करनी ही पड़ती है। दुःख के समय कषाय से बचने और विचारों में और आचरण में समता रखने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय और चिंतन-मनन किया जा सकता है-

दुःख के समय दुःख को दुःख मानना, रोना और आर्तध्यान करना अशुभ क्रिया है। इससे अशुभ कर्म बंध होता है फिर उन अशुभ कर्मो के उदय होने पर दुबारा दुःख मिलता है। इस दुबारा दुःख भोगते समय रोने से और आर्तध्यान करने से फिर नये सिरे से अशुभ कर्मो का बंध होता है। इस प्रकार दुःख और आर्तध्यान करते रहने से दुःख के आने का अंत होता ही नहीं। अधिक रोने वाला और आर्तध्यान करने वाला नरक में जा सकता है। पति के वियोग में छः माह तक मोह वश आर्तध्यान करने वाली चक्रवर्ती की पटरानी छठे नरक में चली जाती है।

17. सुख भावना के संबंध में चिंतन-मनन—भौतिक सुख को सुख मानने से, उसमें आसक्त होने से और अशुभ कार्य करने से अशुभ कर्मों का बंध होता है और थोड़े सुख के बदले में बहुत समय तक दुःख मिलता है। जैन ग्रन्थों में यह भी बताया गया है कि भौतिक सुखों में लीन रहने वाला ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवें नरक में चला गया। यह बात भी विशेष ध्यान देने की है कि सुख भोगना दुःख के आने का कारण नहीं होता किन्तु सुख भोगते समय दुःख प्राप्ति के अशुभ कार्य करने से और अशुभ विचार करने से दुःख का कारण बनता है। यदि सुख भोगते हुए भी शुभ कार्य और विवेक रखा जाय तो दुःख का आगमन नहीं हो सकता है। दुःख का आना तभी बंद होगा जबकि दुःख और सुख दोनों में समता रखी जावे। सुख में रस नहीं लेने वाला, नहीं हँसने वाला जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष में जाता है।

18. अशुभ कर्मो का बंध कराने वाले नीचे लिखे हुए भौतिक सुखों के स्रोत में रस नहीं लेकर मनुष्य को कर्म बंध से बचना चाहिए। वे स्रोत ये हैं—

1. आँखों से टी.वी., सिनेमा, नाटक, नृत्य, मेले, उत्सव, दुर्भावना से

स्त्री पुरुषों को और उनके चित्रों को देखना आदि। 2. कानों से अश्लील गंदे गाने सुनना। 3. नाक से इत्र आदि को सूंघना। 4. जीभ से नहीं खाने योग्य स्वादिष्ट और हिंसा से बनी हुई चीजें खाना, जमीकन्द आदि खाना और उसमें रस लेना। 5. कामभोग आदि में डूबना। 6. मनोरंजन अर्थात् पाँचों इन्द्रियों से मिलने वाले सुखों में रस लेना, उन भोगे हुए सुखों को याद करना, भविष्य में उनको भोगने की कल्पना करना या दूसरों को दुःख में देखकर खुश होना।

19. आत्म-भावना—शरीर अलग है, मैं अलग हूँ। शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है। मैं आत्मा हूँ, मुझे सिद्ध बनना है। "आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।"

आत्मा हूँ मैं देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ चेतन हूँ।
मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ।
शक्ति पुंज हूँ, ज्ञानरूप हूँ, आनन्दघन हूँ, चेतन हूँ।
निराकार हूँ निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।

आत्म भावना भाने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी। जैन और वैदिक दोनों संस्कृतियों में देहात्मभेद और आत्म भावना को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना गया है।

20. णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं—इसका हमेशा जाप करते रहने से यदि मृत्यु के समय भी ऐसी भावना बनी रह जाय तो मनुष्य का जन्म सफल बन सकता है। जैसे दृढ़ प्रहारी और अर्जुनमाली के पाप केवल परमात्मा के भजन से ही कट गए।

21. सेवा बिना मुक्ति नहीं—महासती चन्दनबाला राजा की लड़की थी उसे भी पूर्व कर्मों के कारण रथी के घर पर सेवा करनी पड़ी। पाँचों पाण्डवों और द्रौपदी को विराट राजा के यहाँ, महाराज हरिशचन्द्र और महारानी तारा को काशी में और महाराज नल को महाराज ऋतुपर्ण के यहाँ सेवा करके कर्म काटने पड़े। पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण सेवा तो करनी ही पड़ती है किन्तु जो प्राणी हंस-हंस कर सेवा करता है उसके कर्म नष्ट हो जाते हैं किन्तु जो प्राणी रो-रोकर और उसे बेगार समझकर सेवा करता है, उसके नए अशुभ कर्म बंध जाते हैं।

दूसरों की यथायोग्य सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है किन्तु दूसरों से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है।

दूसरों के प्रति सद्भावना, दुःखी को सांत्वना देना, भटकते हुए प्राणी को सही मार्ग बताना, दूसरों की आत्म-शुद्धि में और जीवन निर्वाह में सहयोग देना तथा अपने सामने आये हुए कार्यों को अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए यथाशक्ति, यथा संभव पूर्ण करना आदि सेवा कार्य है।

22. कर्मो की प्रधानता--हमारे इस जीवन के पहले वाले जीवन की समाप्ति के समय उदय में आने वाले कर्मो ने ही हमारा वर्तमान शरीर, परिवार, जीवन साथी, वर्तमान परिस्थिति और वर्तमान उद्योग धंधा अर्थात् पेशा दिया है। हमारा कार्मण शरीर ही हमारी रक्षा करता है। मृत्यु को बुलाता है, वही कहीं पर उपादान व कहीं पर निमित्त बनाता है, वही सुख और दुःख को खींचकर हमारे पास लाता है और वही हमारा संरक्षक है, वही हमारे प्रायः सभी भौतिक कार्यों में प्रधान रहता है, उसके विधान को बदलना कठिन है। अतः चिंता और राग-द्वेष छोड़कर संतोष और समता रखकर, शुभ और शुद्ध पुरुषार्थ में लगा रहना ही मानव धर्म है।

23. ज्ञानवार्ता--(क) जब कर्मो के प्रभाव से होने वाली पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार रुक नहीं सकते तो क्रोध करने से क्या लाभ ? (ख) जब मनुष्य बडा नहीं किन्तु समय मनुष्य से अधिक बलवान है तो अहंकार करने से क्या लाभ ? (ग) जब कार्मण शरीर ही इस औदारिक शरीर का संरक्षक है तो यह औदारिक शरीर मेरा नहीं हो सकता। (घ) जब प्रत्येक जीव का संरक्षक ही अलग-अलग है तो उनका एक परिवार में होने का कोई अर्थ ही नहीं रहता। इन भावनाओं को लाख-लाख बार जपने से जीवन में परिवर्तन अवश्य ही आता है।

24. मोक्ष प्राप्ति में कुछ बाधाएँ--

1. मोक्ष प्राप्ति में प्रथम बाधक विकार है--क्रोध। इससे बचने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय कीजिए--"क्रोधी कौशिक, चण्डकौशिक सर्प बना और समताधारी मुनि गजसुकुमाल सिद्ध बने।" बहुत दिनों तक ऐसा स्वाध्याय करने से क्रोध अवश्य ही कम होगा। क्रोध के समय मौन रहना और वहाँ से उठकर दूर चले जाना आवश्यक है।

2. दूसरी बाधा है--मान (अहम् भाव)। इसके लिए चिंतन और

स्वाध्याय इस प्रकार करना चाहिए—(क) मैं बड़ा नहीं हूँ, समय बड़ा बलवान होता है। (ख) शुभ कर्मों के उदय के समय मनुष्य का काम बनता है। (ग) शुभ कर्मों के उदय का समय मनुष्य का शरीर, बल, धन बल, विद्या बल, बुद्धि बल आदि को विपरीत बनाकर मनुष्य का विनाश भी करा सकता है, अहंकार के कारण ही कौरवों का विनाश हुआ। अर्जुन ने महाभारत का युद्ध जीता, लेकिन जब भीलों ने गोपिकाओं को लूटा तब वही अर्जुन उन्हें बचा नहीं सका, मनुष्य बड़ा नहीं होता समय बड़ा बलवान होता है।

रहिमन नर को कहा बड़ा, समय बड़ो बलवान।
काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण।।

3. (क) परिवार मोह छोड़नें के लिए वर्षों तक यह स्वाध्याय और चिंतन करना जरूरी है कि "परिवार मेरा नहीं है" जिन्होंने परिवार मोह छोड़ा वे मोक्ष में गए, जिन्होंने परिवार मोह नहीं छोड़ा वे मोक्ष नहीं जा सके। (ख) परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष चली गई। (ग) परिवार मोह में मरने वाले कुछ लोग गाय, भैंस, भेड़, बकरी, कुतिया, बिल्ली आदि पशु बन जाते हैं। महेशदत्त का पिता भैंसा और माता कुतिया बनी। इसका कारण परिवार मोह था।

विशेष चिंतन—(क) परिवार में साथ-साथ रहने से मोह पैदा नहीं होता, साथ-साथ रहने वाली सास-बहू में, देवरानी-जेठानी में, कभी-कभी भाई-भाई में और पिता-पुत्र में भी शत्रुता बन जाती है। (ख) हमारे अन्दर अनादिकाल से परिवार को अपना मानने की भावना बनी हुई है। इसी कारण मोह पैदा होता है। (ग) इस मोह को हटाने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि यह चिंतन बार-बार किया जाय कि—"परिवार मेरा नहीं है" मृत्यु के समय तो इससे अलग होना ही पड़ेगा।

4. चौथी बाधा है—शरीर मोह की (देहात्म शक्ति की)। इसके लिए इस प्रकार स्वाध्याय किया जाय—"यह शरीर मेरा नहीं है। मैं (आत्मा) अलग हूँ, शरीर अलग है और यह शरीर नाशवान है।"

कुछ वर्षों तक प्रतिदिन इन चार भावनाओं का स्वाध्याय करने से महान शांति प्राप्त हो सकेगी और संभव है कि किसी दिन सिद्ध पद की प्राप्ति हो सकेगी।

'णमो सिद्धाणं'

दोष मत दो निमित्त को

कषाय मुक्ति : सातवां भाग

(सिद्ध पद प्राप्ति की साधना)

यह स्वाध्याय जीवन भर प्रतिदिन कई बार करना चाहिए। सामायिक में या किसी भी खाली समय में दुकान में, मैदान में, मकान में, किसी भी जगह, दिन में या रात में, किसी भी समय बिस्तर पर लेटे हुए किसी भी दशा में, विना स्नान किए भी किया जा सकता है। हजारों लाखों बार स्वाध्याय करने से सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

दोष मत दो निमित्त को सप्त-सूत्री-स्वाध्याय

(क) दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।
(ख) भला हो, भला हो, सबका भला हो।
(ग) नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब संतों को।
(घ) शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाश्वान है।
(ङ) परिवार निमित्त ही बनता है।
(च) धन कर्माधीन है।
(छ) मैं सिद्ध बनूंगा।

प्रथम भावना–अद्वेष भावना अक्रोध भावना

इस भावना का प्रतिदिन अधिक से अधिक स्वाध्याय करने से यह भावना मनुष्य के अवचेतन मन में, रोम-रोम में अपना स्थान बना लेगी और संस्कार रूप में अनंतकाल तक साथ रहेगी।

इनमें प्रथम भावना के हजारों या लाखों बार स्वाध्याय करने से, इसके अर्थ का चिंतन करने से, इस भावना को जीवन में उतारने वाले मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी, मुनि खंदक जिनकी जीवित अवस्था में चमड़ी उतारी गई थी और पाँच सौ

संत जिनको घाणी (कोल्हू) में पेरा गया था आदि की घटनाओं का बार-बार अनुमोदन करने से और हर समय पूरी सावधानी रखकर इन्हें जीवन में उतारने से क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त हो सकती है।

लोग कहते हैं कि जो मनुष्य क्रोध को जीत लेता है वह संसार को जीत लेता है। क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त करने से पचहत्तर प्रतिशत से अधिक साधना सफल मानी जाती है। सर्वप्रथम क्रोध को जीतने का अभ्यास कुछ महीनों तक करना चाहिए। इससे बुराइयों को जीतना सरल हो जाता है। यदि अपने मन में दूसरे मनुष्य को दोष देने का विचार नहीं आवे तो क्रोध को पैदा होने के लिए स्थान ही नहीं मिलेगा।

"दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।
निज कर्म फल ही है मिला,
तब निमित्त बेचारा क्या करे।

"क्षमा दस लाख मासखमण से भी बढ़कर है।" इस भावना का स्वाध्याय भी क्रोध के हटाने में समर्थ है। क्रोध को जीतने के लिए निम्न भौतिक उपाय भी सहायक होते हैं–

मौन रखो अरु हट ही जाओ।
हठ छोड़ो अरु झुक ही जाओ।।
पानी पीओ क्रोध बुझाओ।
गुरु गुण गाओ शीश झुकाओ।।

सुख या दुःख या कोई चीज पाने वाला उपादान कहलाता है और दूसरों को सुख या दुःख या कोई चीज देने वाला निमित्त कहलाता है।

सिद्धों को छोड़कर संसार के दूसरे प्राणियों से हमें सुख या दुःख मिलता है। इसलिए वे सब हमारे लिए निमित्त ही हैं।

मेरे लिए मेरे घर के लोग, बाहर के लोग, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, मक्खी-मच्छर आदि सभी निमित्त हैं। उनसे मिलने वाले दुःख के लिए उनको दोष नहीं देना चाहिए और उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए। मेरे अन्तराय कर्म के उदय से यदि मुझे परिवार से सहयोग नहीं मिले तो मुझे परिवार वालों को दोष नहीं देना चाहिए और उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

दूसरी भावना—परहित भावना

"भला हो, भला हो, सबका भला हो" इस भावना के स्वाध्याय से द्वेष, दुर्भावना, क्रोध, प्रतिशोध अर्थात् बदला लेने की भावना धीरे-धीरे दूर हो जाती है और मैत्री, अनुकम्पा, सम्यक् सेवा, समता आदि की भावना आने लगती है।

एक लेखक ने कहा है कि दूसरों का भला करने वाला और भला चाहने वाला भी तीर्थंकर बन सकता है। क्षण भर के अपध्यान से तन्दुल मत्स्य सातवीं नरक जाता है तो दूसरों का भला चाहने वाला जीव मोक्ष क्यों नहीं पहुँच सकता ? हमारे इस सूत्र के स्वाध्याय से चाहे दूसरों का भला नहीं हो तो भी हमारी शुभ भावना के कारण हमारा भला तो अवश्य होगा। जिससे हमें बाधा पहुँचती है उसका नाम लेकर बार-बार कहना चाहिए कि श्री....................का भला हो, भला हो, भला हो। हमारी इन भाव तरंगों से वह हमारा हित करने वाला मित्र भी बन सकता है।

तीसरी भावना—नमस्कार या विनय भावना

घर बैठे हुए भी इस भावना को भाते समय कल्पना में दोनों हाथ जोड़कर संतों को या सिद्धों को कल्पना में सिर झुकाकर और उनके चरण छूकर भाव-वंदना करनी चाहिए और मन में यह कहना चाहिए—"नमस्कार है सब सिद्धों को, नमस्कार है सब संतों को।" इस भावना से पाप नष्ट होते हैं। इससे अहंकार और क्रोध भी दूर होते हैं। इससे पुण्य, विनय, केवलज्ञान तक की प्राप्ति होती है। बाहुबलीजी को अहंकार पूर्वक बारह महीनों तक कठोर तप करने से भी जो केवलज्ञान अविनय के कारण प्राप्त नहीं हुआ था, वह केवलज्ञान उनके अहंकार छोड़ते ही और विनय पूर्वक छोटे संतों को वंदना करने जाने के लिए एक पैर उठाते ही प्राप्त हो गया। विनय से केवलज्ञान की प्राप्ति भी होती है। विनय बारह महीने के लगातार उपवास से भी बढ़कर है।

विनय के संबंध में एक कविता भी है—

मैत्री भाव जीवों पर रखते।
मानवता का आदर करते।।
नमस्कार संतों को करते।

धार्मिकता के अहं से बचते।।
विनयवान् भगवान है बनते।

यदि हम सिद्धों को या संतों को घर बैठे हुए भी बीस बार भाव-वंदना करें तो बीस बार ही पाप का क्षय होगा और पुण्य का लाभ होगा और विनय भावना मजबूत बनेगी। यदि अहंभाव आ जाये तो उसके लिए पश्चात्ताप करके आत्मा को शुद्ध करना चाहिए।

चौथी भावना—शरीर-भावना, आत्म-भावना

"शरीर अलग है। मैं अलग हूँ। शरीर नाशवान है। शरीर मेरा नहीं है।" मैं आत्मा हूँ। मैं देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ, मैं चेतन हूँ, मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ, ज्ञान रूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ, निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमलज्योति हूँ, आत्मा हूँ। यह शरीर भावना है। यह देहात्म भेद ज्ञान है, यही आत्म भावना है। इसको भाते रहने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। शुरू-शुरू में यह भावना अटपटी, विचित्र और अविश्वसनीय लगती है। किन्तु आठ-दस महीनों तक इसे भाते रहने से इसमें पूर्ण विश्वास जम जाता है।

पांचवीं भावना—परिवार मोह

मुक्तात्माओं को छोड़कर संसार के सभी प्राणियों में (देवता, मनुष्य, तिर्यंच आदि में) उपादान निमित्त-संबंध के कारण ही पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु आदि के संबंध बनते हैं।

प्राणी के मन, वचन, काया के हलन-चलन से भिन्न-भिन्न कर्म-वर्गणाओं के पुद्‌गल आते हैं और कषाय के कारण आत्मा के साथ कर्म रूप में जुड़ जाते हैं और इसी कारण प्राणियों में उपादान निमित्त संबंध बनते हैं। यदि मनुष्य में कषाय नहीं हो तो उपादान निमित्त संबंध भी नहीं बनते। उपादान निमित्त का संबंध घनिष्ट होने के कारण या अधिक साथ-साथ रहने के कारण भी प्राणियों में प्रशस्तराग या अप्रशस्तराग या मोह तथा द्वेष आदि पैदा होते हैं।

सिद्धों का जन्म-मरण नहीं होता, उनके शरीर नहीं होता और उनके उपादान-निमित्त संबंध भी नहीं बनते। वे सब अलग-अलग होते हैं। इसी प्रकार सभी प्राणियों की आत्मा मूल रूप में अलग-अलग होती है। किसी

का किसी के साथ संबंध नहीं होता। जब तक स्थूल शरीर होता है तभी तक उपादान निमित्त संबंध बनते और टूटते रहते हैं।

उपादान-निमित्त संबंध सम्यक् द्रव्य सेवा, भाव सेवा, शुद्ध भावनाओं, पश्चात्ताप, तप और समता से समाप्त हो जाता है।

मोह पर विजय पाने के लिए 'परिवार मेरा नहीं है।'' इस भावना का हजारों बार स्वाध्याय करने से भी मोह टूट जाता है। कभी-कभी किसी भावनात्मक चोट लगने से या किसी विशेष घटना से भी मोह टूट जाता है। जिस प्रकार कि मरुदेवी माता, भरत चक्रवर्ती, बाहुबलीजी, नमिराजर्षि आदि का मोह टूट गया था।

परिवार के सभी सदस्य मेरे लिए केवल निमित्त ही बनते हैं। वे अपने परिश्रम से मेरे कर्मो को नहीं बदल सकते, मुझे शरण नहीं दे सकते, मेरे संरक्षक नहीं बन सकते, क्योंकि मेरे शरीर का संरक्षक तो मेरा कार्मण शरीर ही बनता है। वे तो केवल अस्थाई निमित्त ही बनते हैं। उन पर क्रोध करना, मेरे लिए ठीक नहीं है।

छठी भावना—धन का लोभ

"धन का आना और धन का जाना मेरे हाथ में नहीं है, यह मेरे कर्मो के अधीन है।" शुभ कर्मोदय के बिना केवल भाग-दौड़ करने और "हाय धन, हाय धन" करने या रोने से धन नहीं आता है। दान-पुण्य, धर्म करने से इच्छा और लोभ के बिना भी साधारण पुरुषार्थ से भी धन की वर्षा होने लगती है।

सातवीं अन्तिम भावना—संकल्प

"मैं आत्मा हूँ, मैं शरीर के भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल-अवगाहना प्राप्त करेंगे। मैं आनन्दघन और अभय बनूंगा। इस भावना का स्वाध्याय और कल्पना दोनों करनी चाहिए। कल्पना इस प्रकार की जाती है—"मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल-अवगाहना प्राप्त कर चुके हैं और मैं सिद्ध बन गया हूँ।" इस साधना से मनुष्य के मन से सांसारिक बातों और कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है। यह सिद्ध पद प्राप्ति की साधना है।

चौथी शरीर भावना और इस सातवीं भावना का कुछ अभ्यास होने के बाद ये दोनों भावनाएँ केवल छः शब्दों में इस प्रकार भायी जा सकती है–

"मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा।"

इसी प्रकार शरीर परिवार और धन के मोह को दूर करने के लिए भी इस प्रकार स्वाध्याय किया जा सकता है–"शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नहीं हैं।

ज्ञानवार्ता

अपने जीवन में जितने पाप किए हों उनको कभी-कभी याद करके पश्चात्ताप कर लेने से वे हल्के पड़ जाते हैं।

शील पालने के लिए हमें 'शील, शील, शील' इस प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिए। विजय सेठ, विजया सेठानी की कथाओं का अध्ययन या स्वाध्याय, अनुमोदना करते रहना चाहिए।

अकेली स्त्री को अकेले पुरुष के साथ एकान्त में बैठना या एक-दूसरे के चित्रों का देखना या एक-दूसरे की कल्पना करना या मादक भोजन, शराब आदि लेना नहीं चाहिए।

जैन ग्रन्थों में सत्य को भगवान कहा गया है। धर्मात्मा (सत्यवादी) को देवता नमस्कार करते हैं। सत्यवादी देवताओं को प्रिय लगता है, वे उसकी सहायता करते हैं। सत्य पाँच महाव्रतों में एक व्रत है। सत्य को महातप माना गया है। सत्यवादी राजा हरिशचन्द्र में देवताओं से अधिक शक्ति थी।

'णमो सिद्धाणं'

सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना

कषाय मुक्ति—आठवां भाग

"सिद्ध पद पाना ही जीवन का लक्ष्य है।"

—आचार्य श्री नानेश

1. सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना—

स्वाध्याय का पाठ—"मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा।"

चिंतन-ममन-समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म. सा. ने "मैं सिद्ध बनूंगा" इस भावना को समीक्षण ध्यान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, अतः सिद्ध बनने का संकल्प करके हमेशा बहुत समय तक इस संकल्प को बार-बार दोहराकर इसे दृढ़ बनाना चाहिए और स्वयं की (आत्मा की) सिद्ध होने की दशा की कल्पना करनी चाहिए। इससे मनुष्य के मन में सांसारिक बातों व कामों के चित्र मिट जाते हैं। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है, यह सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना है। ये सिद्धों का अरूपी ध्यान जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

2. अहं छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

"बड़ा मत समझो स्वयं को।।
बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को, संतों को।
दयावान को, सत्यवान को, शीलवान को, धर्मी को।।"

चिंतन-मनन-स्वयं को बड़ा अर्थात् बलवान, बुद्धिमान, धनवान व धार्मिक समझना और अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करना अहं (अभिमान) है। बड़ों को अर्थात् गुरुजनों को, संतों को, धर्मात्माओं को बड़ा समझना व उनकी सुसेवा करना विनय है। अहं का पश्चात्ताप करने से अहं और पाप नष्ट हो जाते हैं। अहं से हानि होती है और दुःख मिलता है। विनय से बाहुबलीजी की भांति मोक्ष मिलता है। "विनयवान भगवान है बनता।"

3. क्रोध छोड़ने के लिए स्वाध्याय करने का पाठ–

दोष मत दो निमित्त को, दोष दो तुम स्वयं को।
निज कर्म फल ही है मिला, तब निमित्त बेचारा क्या करे।।'

चिंतन–मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी आदि ने निमित्त को दोष नहीं दिया, स्वयं को ही दोषी माना, इसलिए वे मोक्ष चले गये।

4. देहासक्ति (शरीर का मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"शरीर मेरा नहीं है, शरीर नाशवान है, यह मुझसे अलग है, मैं इस शरीर से अलग हूँ, मैं (आत्मा) सारे शरीर में फैला हुआ भी शरीर से अलग हूँ।"

शरीर मोह छूटने के स्वाध्याय का दूसरा पाठ–"सुख में फूल मत, दुःख में रो मत, सिद्ध बनेगा।"

चिंतन–शरीर मेरा नहीं है, यह नाशवान है, इससे सुख की और दुःख की अनुभूति होती है। इन अनुभूतियों से बचने वाला सिद्ध बन जाता है।

5. आत्मध्यान का पाठ–

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।
मैं अवद्य हूँ, अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ।।
शक्ति पुंज हूँ, ज्ञानरूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ।
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।।

6. परिवार-मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"परिवार अपना न हुआ न होगा।"

चिंतन–जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिए और अपना कर्जा चुकाने के लिए उपादान या निमित्त बन कर परिवार में आता है और परिवार वालों से लेना-देना समाप्त होने पर उनसे अलग हो जाता है। कर्ण, कबीर, शकुन्तला, अजापुत्र आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। बाली-सुग्रीव को, रावण-विभीषण को भाई कैसे माना जाए ? उग्रसेन और कंस को, हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद को पिता-पुत्र कैसे माना जाए ? किसी भी जीव का किसी भी जीव के साथ हमेशा के लिए स्थायी पारिवारिक संबंध नहीं होता।

परिवार मोह छोड़ने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ–

परिवार अपना नहीं वना रहता।

चिंतन–परिवार हमें हमारे कर्म दंड से नहीं वचा सकता। परिवार हमें हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नहीं सकता। उपादान–निमित्त-संवंध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमें अपने साथ रख नहीं सकता। आत्माओं में पारिवारिक संवंध होते ही नहीं। परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया वनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई।

7. लोभ छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"सिद्ध वनूंगा, सिद्ध वनूंगा, धन का लोभी नहीं वनूंगा।"

चिंतन–संसार में लोभ ही पाप और सव दुःखों का मूल है। धन के लिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए। जैसे मधुमक्खियाँ फूलों से शहद इकट्ठा करती है वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए।

8. "णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं" या नमस्कार मंत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सव पापों को नष्ट करता है। इसमें णमो सिद्धाणं पद का, सिद्धों की अटल अवगाहना का, सिद्धों के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणों का ध्यान किया जा सकता है।

9. ऊपर वाले ध्यान और चिंतन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन में दी गई है।

10. सद्भावना–"नहीं दुःख हो, नहीं पतन हो। किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो।"

अर्थ–जिस काम को हम करें उनसे किसी को दुःख नहीं पहुँचे और उनका और हमारा दोनों का पतन भी नहीं हो किन्तु दूसरों को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनों की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सद्भावना युक्त होगा।

11. दान में प्रथम स्थान अभयदान का है। इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। दान में सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी वड़ा महत्त्व है। किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो यह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। किसी भी प्राणी को वाहरी दीन-हीन, करुणाजनक

3. क्रोध छोड़ने के लिए स्वाध्याय करने का पाठ–

दोष मत दो निमित्त को, दोष दो तुम स्वयं को।
निज कर्म फल ही है मिला, तब निमित्त बेचारा क्या करे।।'

चिंतन–मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी आदि ने निमित्त को दोष नहीं दिया, स्वयं को ही दोषी माना, इसलिए वे मोक्ष चले गये।

4. देहासक्ति (शरीर का मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"शरीर मेरा नहीं है, शरीर नाश्वान है, यह मुझसे अलग है, मैं इस शरीर से अलग हूँ, मैं (आत्मा) सारे शरीर में फैला हुआ भी शरीर से अलग हूँ।"

शरीर मोह छूटने के स्वाध्याय का दूसरा पाठ–"सुख में फूल मत, दुःख में रो मत, सिद्ध बनेगा।"

चिंतन–शरीर मेरा नहीं है, यह नाश्वान है, इससे सुख की और दुःख की अनुभूति होती है। इन अनुभूतियों से बचने वाला सिद्ध बन जाता है।

5. आत्मध्यान का पाठ–

आत्मा हूँ मैं, देह भिन्न हूँ, मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।
मैं अवद्य हूँ, अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ।।
शक्ति पुंज हूँ, ज्ञानरूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ।
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।।

6. परिवार-मोह छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"परिवार अपना न हुआ न होगा।"

चिंतन–जीव अपने कर्मों का फल भोगने के लिए और अपना कर्जा चुकाने के लिए उपादान या निमित्त बन कर परिवार में आता है और परिवार वालों से लेना-देना समाप्त होने पर उनसे अलग हो जाता है। कर्ण, कबीर, शकुन्तला, अजापुत्र आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। बाली-सुग्रीव को, रावण-विभीषण को भाई कैसे माना जाए ? उग्रसेन और कंस को, हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद को पिता-पुत्र कैसे माना जाए ? किसी भी जीव का किसी भी जीव के साथ हमेशा के लिए स्थायी पारिवारिक संबंध नहीं होता।

परिवार मोह छोड़ने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ–

परिवार अपना नहीं बना रहता।

चिंतन–परिवार हमें हमारे कर्म दंड से नहीं बचा सकता। परिवार हमें हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नहीं सकता। उपादान–निमित्त-संबंध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमें अपने साथ रख नहीं सकता। आत्माओं में पारिवारिक संबंध होते ही नहीं। परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई।

7. लोभ छोड़ने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, धन का लोभी नहीं बनूंगा।"

चिंतन–संसार में लोभ ही पाप और सब दुःखों का मूल है। धन के लिए दूसरों का शोषण नहीं करना चाहिए। जैसे मधुमक्खियाँ फूलों से शहद इकट्ठा करती है वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए।

8. "णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं" या नमस्कार मंत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सब पापों को नष्ट करता है। इसमें णमो सिद्धाणं पद का, सिद्धों की अटल अवगाहना का, सिद्धों के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणों का ध्यान किया जा सकता है।

9. ऊपर वाले ध्यान और चिंतन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन में दी गई है।

10. सद्‌भावना–"नहीं दुःख हो, नहीं पतन हो। किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो।"

अर्थ–जिस काम को हम करें उनसे किसी को दुःख नहीं पहुँचे और उनका और हमारा दोनों का पतन भी नहीं हो किन्तु दूसरों को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनों की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सद्‌भावना युक्त होगा।

11. दान में प्रथम स्थान अभयदान का है। इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। दान में सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी बड़ा महत्त्व है। किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो यह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। किसी भी प्राणी को बाहरी दीन-हीन, करुणाजनक

दयनीय स्थिति देखकर करुणाभाव से उसको कुछ दान दिया जाय तो इस करुणादान से भी पुण्य और शुभ कर्मों की प्राप्ति हो सकती है। यश और कीर्ति पाने की भावना से किसी को कुछ दिया जाय तो उस दान का शुभफल मिलना रुक जाता है। अशुभ भावना से दिए गए दान का फल बहुत बुरा होता है।

12. अनुकम्पा और करुणाभाव से दिए गए दान का यदि पात्र द्वारा दुरुपयोग होता हो तो उसका अशुभफल दाता को नहीं मिलता किन्तु अशुभ क्रिया करने वाले को मिलता है। दानदाता को तो उसकी भावना के अनुसार ही फल मिलता है। मनुष्य अपनी भावनाओं व कर्मों का फल ही पाता है, दूसरों की भावना व कर्मों का नहीं पाता।

13. परिवार के निमित्त से व्यवहार में हमें जो कुछ मिलता है वह निश्चय दृष्टि में हमारे किए हुए कर्मों का फल ही होता है। उससे अधिक हमें परिवार से या किसी से भी नहीं मिलता क्योंकि अकृत का फल अर्थात् जो काम हमने नहीं किया उसका फल बनता ही नहीं, पर-कृत का अर्थात् दूसरों के द्वारा किए हुए काम का फल उस काम के कर्ता को ही मिलता है, हमें नहीं मिलता।

"किया स्वयं का ही नर पाता, अधिक नहीं परिवार से पाता।
पर-कृत का फल पर को जाता, अकृत का फल कुछ नहीं बनता।"

14. धन—यदि हमारे अन्तराय कर्म का उदय हो तो कोई भी निमित्त मनुष्य या देव हमें कुछ नहीं दे सकता। यदि शुभ कर्म का उदय हो तो सुख और धन की वर्षा होने लगती है। साधारण पुरुषार्थ के बदले में उदरपूर्ति तो हो जाती है परन्तु बहुत सुख और धन तो शुभ कर्म के उदय से ही आता है।

15. हरेक कर्म का फल भोगना पड़ता है। दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता और लिया हुआ व्यर्थ नहीं आता।

16. यदि धन अशुभ कर्मों से भी आ सकता होता तो संसार में कोई भी मनुष्य गरीब नहीं रहता। अन्याय, अनीति, झूठ, कपट, हिंसा, पाप, शोषण, भ्रष्टाचार, अधर्म, अत्याचार और अशुभ कर्म तो सभी लोग कर सकते हैं फिर भी वे लोग शुभ कर्मोदय के बिना गरीब ही रहते हैं। मनुष्य चाहे शुभ पुरुषार्थ करे या अशुभ किन्तु धन आता है शुभ कर्मों के उदय होने से तथा धन जाता है अशुभ कर्मों के उदय होने से।

17. अशुभ कर्म के उदय को रोकना और शुभ कर्म को उदय में लाना हमारे हाथ में नहीं, महापुरुषों की बात अलग है। वे कभी-कभी केवली समुद्घात के समय या कर्मों की उदीरणा करने के लिए उन कर्मों को उनके उदयकाल से पहले उदय में लाकर और भोग कर समाप्त कर लेते हैं।

18. धन का आना और धन का चला जाना कर्मों का खेल है। अतः मनुष्य को लोभ में न पड़कर हमेशा शुभ पुरुषार्थ ही करना चाहिए।

19. कभी-कभी झूठ, कपट, हिंसा आदि से धन आ जाता है तो हम समझते हैं कि अशुभ पुरुषार्थ से धन आ गया है, इसलिये अशुभ पुरुषार्थ करते रहें। लेकिन यह हमारा भ्रम है। हमें पापकर्म से जो धन वर्तमान में मिलता है वह धन वास्वत में पापकर्म से नहीं मिला। वह तो पूर्व में किए हुए किसी शुभ कर्म के उदय से मिला है, जिसका हमें हमारे अल्पज्ञान के कारण पता ही नहीं चलता। इस शुभ कर्म के उदय के समय यदि हम अशुभ कर्म नहीं भी करें तो भी उस पूर्वकृत शुभ कर्म के प्रभाव से यह धन आ ही जाता है। शुभ कर्मों के प्रभाव से कभी-कभी चुपचाप बैठे हुए मनुष्य के पास भी धन आ जाता है। जैसे शालिभद्रजी या धन्नाजी को मिला करता था। तीर्थंकरों को जब वे वार्षिक दान देते हैं उस समय उनके पास देवताओं द्वारा धन पहुँच जाता है, करोड़पतियों के घर में जो बच्चे जन्म लेते हैं वे बच्चे उसी समय करोड़ों रुपयों के मालिक हो जाते हैं। गोद या वसीयत आदि से भी बिना कमाए धन आ जाता है।

20. यदि दुःख धन से दूर हो सकता होता तो संसार के लाखों धनवान मनुष्य दुःखी नहीं रहते। वे धन से सुख खरीद लेते। हमारे द्वारा किए अशुभ कर्मों का और असाध्य रोगों का इलाज धन होते हुए भी नहीं हो सकता। अधिक धन के संग्रह से कुछ लोगों में बुरी आदतें पड़ जाती हैं और घर में फूट और कलह हो जाती है। चोर, डाकुओं, धोखेबाजों और हत्यारों का भय बना रहता है।

21. सुख मिलता है सातावेदनीय नामक शुभ कर्म के उदय से। हम देखते हैं और सुनते हैं कि हजारों साधारण और गरीब मनुष्य, मजदूर आदि धन के अभाव में भी सुखी हैं। उसका कारण उनके सातावेदनीय कर्म का उदय ही माना गया है।

22. लोगों का यह भ्रम है कि धन के बिना बहुत से काम रुक जाते

हैं किन्तु जो शुभ कर्म माता के गर्भ के अन्दर या अंडों के अन्दर भी जीव की रक्षा करते हैं और खुले आकाश में पेड़ों पर घोंसलों में छोटे-छोटे पक्षियों की रक्षा करते हैं और पहाड़ों की चट्टान आदि में भी चींटी आदि जीवों को भोजन पहुँचाते हैं। वे शुभ कर्म ही मनुष्य से शुभ पुरुषार्थ करवाकर उनके जीवन की रक्षा करते हैं। यह शरीर कर्मों की ही देन है। कर्म ही इनके संरक्षक हैं और वे ही शरीर की रक्षा करते हैं। यदि मनुष्य के अशुभ अन्तराय असातावेदनीय कर्मों का उदय हो तो उसे बहुत समय तक निराहार रहना पड़ सकता है। प्राणी ने जैसे कर्म किए हैं उन्हीं कर्मों के फल के अनुसार उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था होती है। इसीलिए अशुभ कर्मों से बचना चाहिए और शुभ कर्म ही करने चाहिए।

23. लोग अपनी कन्या के विवाह के लिए पाप आदि करके धन कमाते हैं, किन्तु लड़कियों के सुख या दुःख की व्यवस्था उनके कर्मों के अनुसार ही होती है। धनवान ससुराल में भी रोग कलह आदि कई कारणों से दुःख मिल सकता है और गरीब ससुराल में भी पुण्यवान लड़की को बहुत सुख मिल सकता है। माता-पिता का कर्तव्य है कि लड़की के लिए अपने वंश व घर की समानता वाला अच्छा घर और योग्य वर तलाश करे, किन्तु उसको दहेज देने के लिए झूठ, कपट आदि पाप कर्मों से धन कमाकर उसको दहेज देने का विचार उचित नहीं है। जिन कर्मों ने लड़की को यह शरीर दिया है या जिस परिवार में जन्म दिलाया है, वे कर्म ही उसके विवाह होने या न होने या दीक्षा लेने आदि की व्यवस्था करते हैं। चिकित्सा के लिए आवश्यकता होने पर धन आदि की व्यवस्था भी उन्हीं शुभ कर्मों के प्रभाव से ही हो जाती है।

24. यदि धन ही जीवन का लक्ष्य होता तो शालिभद्रजी, धन्नाजी, जम्बू स्वामी, भरत चक्रवर्ती और अनेक राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार आदि धन छोड़कर दीक्षा नहीं लेते, वास्तव में त्याग ही मोक्ष का मार्ग है।

25. जिन लोगों को अपने परिश्रम के विना माता-पिता द्वारा कमाया हुआ धन विशेषकर माता-पिता द्वारा पाप कर्मों से कमाया हुआ धन मुफ्त में मिलता है, उनमें से अधिकांश लोग मानवता से भी गिर जाते हैं और उनका भारी पतन हो जाता है।

26. प्रत्येक मनुष्य या जीव का संरक्षक उसका परिवार नहीं किन्तु उसका संरक्षक कार्मण शरीर ही होता है। वह कार्मण शरीर ही जीव से

उस जीव की इच्छा न होते हुए भी उससे अच्छा या बुरा पुरुषार्थ करवाता है, उसको हितकारी या अहितकारी निमित्त से मिलाता है, उसको क्षणभर में अमीर या गरीब बना देता है, उसे कभी सुखी या कभी दुःखी बनाता है और उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था करता है। अतः सुख या दुःख आने पर भी किसी से भी राग-द्वेष नहीं करना चाहिए क्योंकि हमारे अपने कर्मों से ही हमें सुख-दुःख मिलता है।

27. कभी-कभी किसी पूर्वजन्म के पाप से धन का आना रुका हुआ हो तो वर्तमान के शुभदान, पुण्य, धर्म या शुभकर्म करने से धन की वर्षा होने लगती है।

28. "बाहर कुछ नहीं, सब कुछ भीतर।
रक्षक भीतर, भक्षक भीतर।

चिंतन—शरीर के भीतर हमारी आत्मा के साथ चिपके हुए सूक्ष्म शुभ कर्म पुद्‌गल सज्जनों को हमारे सुख का निमित्त बनाते हैं और अशुभ कर्म पुद्‌गल दुर्जनों को हमारे दुःख का निमित्त बनाते हैं। इसलिए किसी से राग-द्वेष करना भूल है।

29. अप्रत्यक्ष रूप से धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सच्चा समाज सेवक उस मनुष्य को समझा जाय जो सामाजिक रीति-रिवाजों में जैसे विवाह आदि में दहेज, रोशनी, बाजा, बहुत बड़ी बारात, बहुत खर्चीले भोजन आदि की व्यवस्था में धन के खर्च को घटाता है जिससे हजारों साधारण मनुष्यों को खर्चा घट जाने से अनीति, पाप और हिंसा द्वारा धन कमाने के लिए मजबूर नहीं होना पड़े।

30. ज्ञानवार्ता—1. शुभ कर्मों के प्रभाव से शत्रु द्वारा की हुई हानि लाभ में बदल जाती है। जैसे—कौरवों द्वारा दिए गए जहर से भीम को लाभ ही हुआ। 2. प्रद्युम्नकुमार के जन्मते ही देवता द्वारा हरण किया जाना और उसे जंगल में भारी पत्थर की शिला के नीचे दबाया जाना प्रद्युम्नकुमार के लिए बहुत लाभ का कारण बना। 3. मुनि गजसुकुमालजी को उनके सिर पर अंगारे रखे जाने का दंड निन्यानवें लाख भव के बाद मिला। 4. अच्छी भावना से की गई सम्यक् सेवा का फल बहुत बड़ी मात्रा में मिलता है। 5. सत्य बोलने के कारण महाराजा हरिशचन्द्र में तपस्वियों और देवताओं से भी अधिक ताकत थी। 6. अहिंसा, संयम, तप और धर्म पालने वालों को देवता भी नमस्कार करते हैं। 7. अपने माता-पिता, वृद्धों और संतों की सेवा

और उनको प्रणाम करने से पुण्य बढ़ता है। 8. मनुष्य जब तक परिवार में रहे तब तक यथाशक्ति परिवार की आवश्यक सम्यक् सेवा करता रहे, इससे परिवार का और संसार का कर्ज उतरता है। 9. प्रसन्नचन्द्र मुनि ने कुछ समय में तीव्र अशुभ भावों से सातवें नरक पहुँचने वाले कर्म पुद्गलों का उपार्जन कर लिया किन्तु उनका बंध होने से पहले ही उन्हें अपने तीव्र पश्चात्ताप के भावों से नष्ट करके केवलज्ञान उपार्जन कर लिया और मोक्ष को प्राप्त किया। 10. धन साथ नहीं जाता किन्तु शुभदान के द्वारा दिया हुआ धन शुभ कर्म रूप में उसी जन्म में या मरने के बाद अलगे जन्मों में सुख पहुँचाता है। 11. श्रीपाल राजा का कोढ़ और मैनासुन्दरी का दुःख धर्म करने से दूर हो गया। 12. जिस मनुष्य के पास धन ठहरने का योग नहीं है, तीर्थंकरों द्वारा उसको दिया गया दान भी देवताओं द्वारा उसकी मुट्ठी से छीन लिया जाता है। 13. तन्दुल मत्स्य एक जीव को भी नहीं मारता फिर भी महादुर्भावना के कारण सातवें नरक में जाता है। 14. किसी भी जीव को थोड़ा-सा दुःख दिए बिना भी केवल बुरी भावना से भी मनुष्य पाप कमा लेता है और छोटे-बड़े जीवों की रक्षा करने की भावना से भी बहुत बड़ा पुण्य कमा लेता है। 15. पाप करके खुश होने वाला मनुष्य अधिक पाप कमा लेता है। 16. मनुष्य से पाप हो जाने पर उस पाप के लिए पश्चात्ताप करने से उसका पाप हल्का हो जाता है या कभी-कभी नष्ट हो जाता है। 17. मृगा लोढ़ा के पिता राजा थे, उनके पास बहुत धन था, फिर भी धन से मृगा लोढ़ा का दुःख दूर नहीं कर सके। 18. जिस मनुष्य का धन और अन्न दूसरों के उचित उपयोग में नहीं आता वह मनुष्य सहज में ही पापी बन जाता है। 19. किसी का कुछ भला करके, अहंकार नहीं करना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि मैं इस प्राणी का कर्जदार था और आज मेरा कर्ज उतर गया। 20. यदि मनुष्यों में कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) न हो तो उपार्जित अशुभ कर्मों का बंध नहीं होता। वे तुरन्त झड़ जाते हैं। 21. 'शील, शील, शील' ऐसा जप नित्यप्रति करने से मनुष्य शील पालने में दृढ़ बनता है। 22. 'समता, समता, समता' ऐसा हमेशा जप करने से मनुष्य समताधारी बनता है। 23. 'सत्य, सत्य, सत्य' ऐसा प्रतिदिन जप करने से मनुष्य सत्यवान बनता है। 24. 'क्षमा, क्षमा, क्षमा' ऐसा नित्य जप करने से मनुष्य का क्रोध नष्ट हो जाता है। 25. हमेशा सन्ध्या के समय या किसी भी समय या उसी समय दिन भर किए हुए पापों का पश्चात्ताप किया जाय तो वे पाप

ग्रायः नष्ट हो जाते हैं। 26. अशुभ कर्मों का बंध अहंकार के कारण नेकाचित बन सकता है। 27. किसी से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है और दूसरों की आवश्यक सुसेवा करना धर्म है। 28. कपट से किसी के पास धन नहीं आता। यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन उसे बरबाद करके चला जाता है। 29. शुभ कर्मों के उदय होने पर ही देवता, तांत्रिक या मित्र आदि सुख के निमित्त बन सकते हैं। 30. मनुष्य चाहे डॉक्टर, इंजीनियर, वकील या बहुत् बड़ा व्यापारी आदि कुछ भी बन जावे किन्तु शुभ कर्मों के उदय के बिना उसे स्वस्थ शरीर, सुखद परिवार, शुभचिंतक, मित्र, मन की शांति, धन और सुख नहीं मिलता। 31. सदा दूसरों का भला करने वाला तीर्थंकर बन जाता है। 32. टेलीविजन से आँखें बहुत जल्दी खराब हो जाती है। कम से कम बारह फुट दूर बैठकर देखना चाहिए। 33. बड़ों की तथा अनुभवी लोगों की राय लेने वाला अहंकार, दुःख व हानि से बच जाता है। 34. मनुष्य अपने परिवार वालों के कर्म को नहीं बदल सकता इसलिए वह व्यर्थ में ही उनके लिए चिंता करता है। 35. गृह कार्य के कार्य का बँटवारा हो जाने से सदस्यों में मन मुटाव नहीं होता। 36. माता-पिता द्वारा घर की जमीन और सम्पत्ति का बँटवारा हो जाने से उनकी संतान में झगड़ा नहीं होता। 37. मनुष्य के बत्तीस दाँत है इसलिए भोजन के हर एक ग्रास को बत्तीस से ज्यादा बार चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। दूध आदि पीने की चीजों को धीरे-धीरे पीना चाहिए। 38. जो मनुष्य दूसरों में गुणों को ही देखता है और उनकी सराहना करता है, वह गुणवान और विनयवान बन जाता है।

31. इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिए गए आठ पाठों का प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करने के साथ-साथ उन्हें आचरण में उतारने का अभ्यास कीजिए और बार-बार दोहराइए, चिंतन कीजिए और याद रखिये।

1. चौथा पाठ–''शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है।'' भोजन, रोग, चोर, दुःख-दर्द, तप, उपसर्ग, मनोरंजन या खुशी आदि के समय इन्हें याद रखने से दुःखानुभूति-सुखानुभूति, हर्ष-विषाद और राग-द्वेष से मनुष्य बच जाता है और नये कर्म नहीं बंधते।

2. छठा पाठ–परिवार अपना हमेशा बना नहीं रहता। परिवार वालों के साथ या उनके बारे में बातचीत या किसी कार्य के समय इस पाठ को दोहराने और याद रखने से परिवार मोह छूट जाता है।

3. दूसरा और तीसरा पाठ–"बड़ा मत समझो स्वयं को, दोष मत दो निमित्त को।" इस पाठ से अहंकार और क्रोध दूर होते हैं।

4. सातवां पाठ–"धन का लोभी नहीं बनूंगा।" इसे व्यापार, दुकान, वेतन, मजदूरी, फीस, ब्याज आदि के और क्रय-विक्रय में लाभ लेते समय याद रखने से लोभ लालच नहीं होता।

5. पहला, पाँचवां, आठवां पाठ–"मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा।" "णमो सिद्धाणं।" इनका स्वाध्याय, जप और ध्यान सवेरे शाम और जब-जब समय मिले तभी करना चाहिए।

इन आठों पाठों का स्वाध्याय और चिंतन सिद्ध पद प्राप्ति का मार्ग है।

32. ग्रन्थ पंथ सब जगत के, बात बतावत तीन,
राम हृदय मन में दया, तन सेवा में लीन।
– जवाहर विचार सार की दो पंक्तियां।

33. भौतिक सुख में फूल मत, दुःख में रो मत।
सिद्ध बनेगा, इस बात को हर पल याद रख।।

34. भौतिक सुख या धन आदि प्राप्त होने पर फूलने या खुश होने के बजाय धन्नाजी और जम्बू स्वामी की तरह यह सोचना चाहिए कि इससे मेरी आत्मा को तो कुछ प्राप्त नहीं हुआ है। मैं हर्ष किस बात का मनाऊँ और कुछ खो जाने या दुःख आने पर रोने के बजाय मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह यह सोचना चाहिए कि इससे मेरी आत्मा को तो कुछ भी नुकसान नहीं हुआ है। अतः मैं दुःख क्यों करूं।

धन तथा सुख प्राप्ति

धर्म के मर्म को जानने वाले और आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले स्त्री पुरुषों को छोड़कर संसार के प्रायः अधिकांश लोग दिन-रात धनोपार्जन के लिए भाग-दौड़ करते हैं फिर भी सब धनवान नहीं बनते हैं। इस प्रकार की दौड़ लगाने वाले में कुछ लोग तो ऐसे भी मिलेंगे जिनको पेट भरने के लिए पूरा भोजन भी नहीं मिलता।

जिन लोगों ने पूर्व जन्मों में या इस जन्म में खटमल या पर-जीवी जन्तु की तरह दूसरों का खून चूसा है, गरीबों का शोषण किया है, सीधे-साधे लोगों को ठगा है, दूसरों का धन लूट-लूट कर उन्हें दुःखी

बनाया है, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की है और दूसरों के काम में बाधा और अन्तराय पहुँचाई है, उन लोगों ने अन्तराय कर्म और असातावेदनीय अर्थात् दुःख देने वाले अशुभ कर्मों का बंध किया है। उनको उनके अशुभ कर्म और अन्तराय कर्म धन और सुख को प्राप्ति नहीं होने देते।

अन्तराय कर्म करने वालों को बाधा ही बाधा मिलती है। दूसरों के धन लाभ में अन्तराय डालने वाले को लाभान्तराय के कारण धन का लाभ नहीं होता। दूसरों के भोजन में अन्तराय डालने वाले को भोगान्तराय के कारण धन होते हुए भी भोजन की प्राप्ति नहीं होती है। वह बीमार पड़ जाता है और कुछ खा नहीं सकता। दूसरों के शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति में अन्तराय डालने वाले को विद्या और ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

अन्तराय कर्म में महान शक्ति है। तीर्थंकर ऋषभदेव को भी बारह महीनों तक निराहार (भूखा) रहना पड़ा। तीर्थंकर महावीर को भी पाँच महीने सताईस दिन तक अभिग्रह पूरा न होने के कारण निराहार रहना पड़ा। जब तक अन्तराय कर्म की अवधि समाप्त नहीं होती तब तक दिन-रात कठोर परिश्रम करने पर भी मनुष्य को धन और सुख का लाभ नहीं होता।

धन और सुख उन्हें मिलता है जो दूसरों को दान, भूखों को भोजन, प्यासों को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र, आश्रयहीन को आश्रय, रोगी को दवा, दुःखी को सांत्वना देते हैं और निराश्रित, पीड़ित, विकलांग, रोगी आदि की सेवा करते हैं। ऐसे परोपकारी लोगों में भी जो अधिक पुण्य करते हैं उनको साधारण पुरुषार्थ करने पर और कभी-कभी बिलकुल पुरुषार्थ नहीं करने पर भी केवल पूर्वकृत पुण्य के कारण धन और सुख की प्राप्ति हो जाती है। शालिभद्र को उनके पूर्वकृत महापुण्य के कारण परिश्रम किए बिना भी देवलोक से धन आता रहा। धन्नाजी को साधारण पुरुषार्थ से ही हमेशा धन की प्राप्ति होती रही। तीर्थंकरों को वार्षिक दान देने के लिए पूर्वकृत महापुण्य के कारण देवों द्वारा बिना किसी परिश्रम के धन प्राप्त होता था।

करोड़पति के घर में जन्म लेने वाला बच्चा जन्म लेते ही करोड़ों रुपयों का स्वामी बन जाता है। कारकुण्ड जिसका बचपन चांडाल के घर में बीता, उसको भी आसानी से ही राज्य मिल गया। किसी को वसीयत से और किसी को जमीन में गड़ा हुआ धन मिल जाता है। इस धन की

प्राप्ति में पुरुषार्थ और बुद्धि प्रधान नहीं है। केवल धन पाने वाले के शुभ कर्मों की प्रधानता रहती है।

धन की प्राप्ति हो न हो किन्तु मनुष्य के जीवन की रक्षा भी उसके पुरुषार्थ किए बिना भी उसके पूर्वकृत पुण्यों से होती है। जैसे कौरवों द्वारा भीम को जहर खिलाने के बाद भी उसके जीवन की रक्षा और महाबल की प्राप्ति भी उसके पूर्वकृत पुण्य के कारण हुई। प्रद्युम्नकुमार की रक्षा और अनेक विद्याओं की प्राप्ति इसी प्रकार हुई। अर्जुनमाली के मुद्गर से सेठ सुदर्शन की रक्षा भी केवल उसके पूर्वकृत पुण्य से हुई।

जिस पुरुषार्थ से और बुद्धि से मनुष्य धन कमाता है वही पुरुषार्थ और बुद्धि अशुभ कर्मोदय के कारण धन के विनाश का कारण बन जाता है। वह धन किसी धूर्त ग्राहक द्वारा ठग लिया जाता है, बाजार के भाव गिरने से उसमें हानि हो सकती है, वह धन आग में जल सकता है, चोर-डाकुओं द्वारा छीना जा सकता है या मनुष्य बीमार पड़ जाता है और उसका सारा धन रोग खा जाता है। यदि मनुष्य के भाग्य में धन की प्राप्ति न हो तो तीर्थंकरों द्वारा दीक्षा लेने से पहले दिया गया दान भी देवताओं द्वारा बीच में ही छीन लिया जाता है। यदि अन्तराय कर्म और अशुभ कर्मों के कारण किसी मनुष्य के उपादान (भाग्य) धन के आने या ठहरने का योग न हो तो संसार की कोई भी शक्ति या स्वर्ग के देवता भी उसे धन नहीं दे सकता। मनुष्य धन कमाने के लिए अपने पुरुषार्थ और बुद्धि का अहंकार करता है किन्तु यह उसका भ्रम ही है क्योंकि "बुद्धि वैसी ही बन जाती, जैसी कर्मों की गति चाहती।" बुद्धि तो प्रायः कर्मों के खेलने के लिए एक सुन्दर मैदान तैयार करती है। जिस प्रकार साइकिल के दोनों पहिये हैंडल के साथ ही मुड़ते रहते हैं उसी प्रकार बुद्धि और बल रूपी दोनों पहिये कर्म रूपी हैंडल के साथ-साथ ही मुड़ते रहते हैं। बुद्धि और बल की अपेक्षा कर्मों में अधिक शक्ति है।

यह मनुष्य का केवल भ्रम ही है कि कपट या हिंसा या अशुभ उपायों से धन कमाया जा सकता है या जाते हुए धन को रोका जा सकता है। कपट से यदि धन आता तो कोई भी मनुष्य गरीब नहीं रहता। कपट से धन आता नहीं, यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन अपने स्वामी को बरबाद करके चला जाता है।

कर्म सिद्धांत का यह अटल नियम है कि मनुष्य दूसरों को सुख या दुःख, अन्न या धन जो कुछ जैसा देता है वह वैसा ही सुख या दुःख अन्न या धन उसी रूप में या अन्य किसी रूप में पाता है और यदि एक देता है तो उस दान के बदले में सौ या हजार या लाख या करोड़ गुना पा सकता है। सेठ धनावह के घर में तीर्थंकर महावीर को उड़द के बाकले बहराये गये। उसके बदले में वहाँ सोने की वर्षा हो गई। धन्नाजी को पूर्वभव में साध्वीजी को खीर बहराने के बदले धन, सुख और सिद्ध पद की प्राप्ति हुई। जो दान देता है, शील पालता है, तप करता है, समता भाव रखता है, शुभ भावना भाता है, स्वाध्याय करता है और दूसरों की सम्यक् सेवा करता है वह उसके बदले में धन, सुख, स्वर्ग और मोक्ष भी पा सकता है।

नहीं रोऊंगा, सिद्ध बनूंगा

आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म. सा. ने अपने एक प्रवचन में फरमाया है कि जीव की जैसी भावना उसकी मृत्यु के समय होती है, वैसी ही उसकी गति बन जाती है। महापुरुष तो अपने गहरे ज्ञान से और मर्यादित जीवन से महाव्रतों का पालन करते हुए अपनी मति और गति सुधार लेते हैं, किन्तु हम साधारण श्रावक हमेशा बहुत समय तक शरीर की आसक्ति और परिवार मोह छूटने की भावनाओं का स्वाध्याय करें और अभ्यास भी करें तो हमारी भी मति और गति सुधर सकती है। स्वाध्याय सबसे बड़ा तप है और इसमें भावनाओं को सुधारने की महान शक्ति है।

मनुष्य को साधारणतया उसके अन्तिम समय में या तो शरीर का कष्ट सताता है या परिवार का मोह बाँध रखता है। शरीर का मोह छोड़ने के लिए इस प्रकार का चिंतन किया जा सकता है–"यह शरीर मेरा नहीं है। इसकी रक्षा होना या नहीं होना कर्मों के हाथ में है।" इसके लिए स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है–"शरीर के कष्ट व दुःखों के समय चिंता नहीं करूंगा। मुनि गजसुकुमाल शरीर कष्ट से नहीं रोये, वे सिद्ध बने। मैं भी सिद्ध बनूंगा।"

परिवार का मोह जीव को संसार में बाँधे रखता है। कभी-कभी नरक में भी भेज देता है। परिवार का मोह छोड़ने के लिए इस प्रकार का चिंतन करना चाहिए–"परिवार बंधन किसी को कर्मों के दंड से नहीं बचा सकते।

महासती अंजना कहती है कि मेरे अशुभ कर्मों ने उदय में आकर बहुत वर्षों तक मुझे व मेरे पतिदेव को दूर-दूर रखा। उसके बाद मेरे ससुराल वालों व पीहर वालों को भी बहका दिया और मुझे घर से निकलवा दिया। परिवार और धन भी किसी को सातावेदनीय कर्मों के उदय के बिना सुख नहीं दे सकते। परिवार के और संसार के सभी जीवों को उनके कर्म अपने-अपने कमरों में बंद रखते हैं। उन कर्मों की आज्ञा के बिना कोई किसी की कुछ भी सहायता नहीं कर सकता है।" परिवार की चिंता और मोह छोड़ने वाला ही सिद्ध बनता है। इसके लिए यह स्वाध्याय किया जा सकता है–"सभी जीवों का भला या बुरा करना या उनको सुख या दुःख देना उन जीवों के कर्मों के हाथ में है। उनके परिवार के हाथ में नहीं है। मैं परिवार-मोह छोड़ूंगा और मरुदेवी माता की तरह सिद्ध बनूंगा।"

संक्षेप में अपनी मति और गति सुधारने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय किया जा सकता है–(क) शरीर कष्ट में और दुःखों में नहीं रोऊंगा, सिद्ध बनूंगा। (ख) परिवार मेरे कर्मों की स्वीकृति के बिना मेरी सहायता नहीं कर सकता। (ग) मरुदेवी माता परिवार मोह छोड़कर सिद्ध बनीं।

इनके साथ-साथ जीवन को ऊँचा उठाने व सिद्ध-पद पाने के लिए इस प्रकार का चिंतन व स्वाध्याय किया जा सकता है–(क) "दोष मत दो निमित्त को" इस भावना के स्वाध्याय से मनुष्य क्रोध से मुक्त हो जाता है। (ख) स्वयं को अधिक बुद्धिमान् या धनवान या धर्मात्मा समझने वाला अहंकारी बन जाता है और वह फूल उठता है। बाहुबलीजी ने अहंकार छोड़ा और वे केवली और बाद में सिद्ध बने। (ग) "णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं" व नवकार का ध्यान करने वाला सब पापों से मुक्त हो जाता है। और (घ) अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करने वाला भी अपने पापों को प्रायः नष्ट कर देता है। पश्चात्ताप करन से महासती मृगावतीजी, मुनि चण्डरुद्राचार्य और मुनि कूरगडुक को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

'समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि में

कषाय मुक्ति : नवां भाग
समीक्षण ध्यान एवं स्वाध्याय संग्रह

1. आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म. सा. ने समता दर्शन और समीक्षण ध्यान पर प्रकाश डालकर मानव जीवन का बहुत उपकार किया है। समीक्षण ध्यान का अर्थ है—अपने आत्मा के उद्धार और सुधार हेतु अपने विचारों और कार्यों को देखना, अपने पाप और पुण्य का हिसाब देखना, पिछले किये हुए अशुभ कर्मों से बचते हुए अपने जीवन का नवनिर्माण और सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय और अभ्यास करना।

2. समीक्षण ध्यानकर्ता का यह लक्ष्य होता है कि उसकी विचारधारा व आचरण ऐसे बन जावें कि उसके शरीर, वचन व मन से दूसरों का बुरा न हो, किसी की हिंसा न हो। उसके किसी भी कार्य से दूसरों को दुःख नहीं हो, उनका पतन नहीं हो, उनको सुख मिले और उनकी आत्मा का उत्थान हो।

न ही दुःख हो न ही पतन हो।
किन्तु सुख संग आत्मोन्नति हो।।

इसके साथ ही साथ स्वयं की आत्मा का उत्थान हो और इसके लिए अपनी तरफ से कुछ त्याग करने की जरूरत हो तो वह त्याग करे।

यह अखेद, अद्वेष, अभय, अभिमानहीन, मोहहीन, चिंताहीन, रागहीन बनने की साधना है। वह बाहर की प्रतिकूल या अनुकूल स्थितियों से प्रभावित नहीं होता और भीतर से विचलित नहीं होता। वह पूर्ण वीतराग बनने का प्रयास करता है। ये कार्य भी तभी हो सकता है जबकि हम अपने जीवन के लक्ष्य को समझ लें और स्वाध्याय, जप द्वारा उसे पुष्ट बना लें।

3. इस दृष्टि से समीक्षण ध्यान को तीन भागों में बांटा जा सकता है। सर्वप्रथम मानव जीवन के लक्ष्य को समझना और उसे पुष्ट करना। दूसरे नम्बर पर अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मों को पश्चात्ताप द्वारा और समतापूर्वक भोग-भोग कर उनको क्षय करना। तीसरे नम्बर पर नये अशुभ

कर्मों से बचते हुए जीवन का नवनिर्माण करना अर्थात् अपने शरीर, परिवार, धन आदि की चिंता, मोह से बचना।

4. लक्ष्य का स्थिरीकरण—मनुष्य को धन और सुख की चिंता अधिक सताती है तथा विद्वानों और पंडितों को अपनी प्रसिद्धि और पूजा की प्यास लगी रहती है। मनुष्य को धन और सुख के सम्बन्ध में छः बातों का पूरा ध्यान रखना चाहिए, जिससे वह धन व सुख के लोभ से बच सके। (क) जाने वाला धन चला ही जाता है। इसे चले जाने से रोकने वाली शक्ति संसार में नहीं है। अमीर आदमी भी पापोदय से गरीब हो जाता है। (ख) अन्तराय कर्म का उदय हो तो कठिन से कठिन मेहनत करने पर भी धन नहीं आता। कभी-कभी तो बुद्धि विपरीत बनकर मनुष्य के धन और सुख दोनों का विनाश कर देती है। (ग) धन होते हुए भी सातावेदनीय कर्म के उदय के बिना सुख नहीं मिलता। (घ) सातावेदनीय कर्म के उदय होने से साधारण आमदनी होते हुए भी मनुष्य सुखी बना रहता है। (ङ) यदि किसी काम के होने का योग नहीं हो तो अपार धन के होते हुए भी वह काम नहीं बनता। (च) यदि किसी काम के बनने का योग हो तो धन नहीं होते हुए भी कहीं से सहायता मिलकर वह कार्य बन जाता है। इन छः बातों का ध्यान रखकर मनुष्य को धन और सुख का लोभ छोड़ना चाहिए और धन को हमेशा दान और शुभ कार्यों में लगाना चाहिए। दान से धन और सुख दोनों ही मिलते हैं। दान में महान शक्ति है।

5. विद्वान, पंडित और धार्मिक लोगों को प्रसिद्धि और पूजा की भूख सताती है, जिससे अहम् भाव से उनकी बुद्धि विपरीत बनकर उनका पतन और विनाश करा देती है।

6. मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है सिद्ध पद पाना और सिद्ध पद वही पा सकता है, जो धन और सुख का लोभ छोड दे और प्रसिद्धि व पूजा का लोभ छोड दे।

7. पुराने अशुभ कर्मों का व पापों का क्षय जिस प्रकार किसान खेत में बीज बोता है, उससे पहले वह खेत को साफ करता है। इसी प्रकार सिद्ध पद पाने की इच्छा करने वाला प्राणी अपने पुराने पापों को याद करता है। उनके लिए पश्चात्ताप व प्रायश्चित्त करता है और उदय में आने वाले कर्मों को समतापूर्वक भोग-भोग कर क्षय करता है।

8. जीवन का नवनिर्माण—समीक्षण ध्यान में तीसरी मुख्य बात है कि नवीन कर्मों को आने से रोक देना। यह तभी हो सकता है जबकि मनुष्य

कषाय को और मोह-ममता को छोड़ दे। इस कार्य को करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय है स्वाध्याय और दूसरा उपाय अभ्यास। साधारणतया शरीर की आसक्ति, परिवार का मोह, क्रोध और अहंकार इन चारों अवगुणों को छोड़ने से जीवन का नवनिर्माण हो सकता है और वह कभी न कभी सिद्ध पद पा सकता है।

9. शरीर की आसक्ति को छोड़ने के लिए नीचे लिखी भावनाओं का हमेशा वर्षों तक स्वाध्याय, चिंतन करना चाहिए।

(क) दुःख में रो मत, भौतिक सुख में फूल मत, सिद्ध बनेगा।

(ख) शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।

(ग) मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा, सिद्ध लोक में सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा।

(घ) शरीर कष्ट में, उपसर्गों में रोना छोड़ो, सिद्ध बनोगे। मुनि गजसुकुमाल नहीं रोये, वे सिद्ध बने।

10. परिवार के मोह से मुक्ति पाने के लिए इन भावनाओं का स्वाध्याय किया जा सकता है।

(क) मनुष्य के उपादान में अर्थात् भाग्य में यदि धन और सुख पाने का योग नहीं हो तो उसे परिवार से भी धन और सुख नहीं मिलता है।

(ख) कर्म परिवार वालों को क्षण भर में दूर-दूर कर देता है।

(ग) कौन है अपना ? कोई नहीं अपना।

11. क्रोध से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है—दोष मत दो निमित्त को, यह कर्म-फल ही है मिला, निमित्त बेचारा क्या करे।

12. अहंकार से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है। अहंकार बुद्धि को विपरीत बना कर बड़ों-बड़ों का विनाश कर देता है।

बड़ा मत समझो स्वयं को।
बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को, संतों को।

13. संक्षेप में समीक्षण ध्यान के लिए प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल बनाने का स्वाध्याय कीजिए और इसकी कला संतों से सीखिए और उनका अभ्यास कीजिए। रो मत दुःख में, फूल मत सुख में, सिद्ध बनेगा। इस भावना का भी हमेशा बहुत देर तक स्वाध्याय कीजिए।

14. ध्यान हमेशा निश्चित समय पर शांतिपूर्ण एकांत स्थान में सुखपूर्वक बैठकर करना चाहिए। किन्तु जीवन का नवनिर्माण कराने वाली भावना को अनाशक्त बनाने वाला, वीतराग भाव को मजबूत करने वाला समीक्षण ध्यान 24 घंटों में जब-जब भी समय मिले तब-तब ही किया जा सकता है। इसके लिए स्थान की भी कोई पाबंदी नहीं होनी चाहिए। यह घर में, दुकान में या बाहर कहीं भी किया जा सकता है। यह कमजोरी या बीमारी की अवस्था में लेट कर भी किया जा सकता है।

याद रखिए—

शरीर की आसक्ति छोड़नी है, परिवार का मोह छोड़ना है, क्रोध से बचना है और अहंकार से दूर रहना है। इन चार बातों से जीवन निर्माण हो सकता है।

प्रतिकूल और अनूकूल

जो बात हमें अच्छी नहीं लगे, उसे हम प्रतिकूल स्थिति कहते हैं। ऐसे समय में हमारे मन में दुर्भावना आती है और हम हिंसक विचार और हिंसक काम करने लगते हैं। जो मनुष्य प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल समझने की कला को सीख लेते हैं वे मनुष्य समीक्षण ध्यान की साधना कर सकते हैं। मृत्यु, रोग, चोट, अपमान, हानि आदि के समय हमें दुःख होता है और हम हिंसक बन सकते हैं। ऐसे समय में हमें उस दुःख की अनुभूति को भुलाना, दुःख को समतापूर्वक सहने के लिए अपने विचारों को स्वाध्याय द्वारा दूसरी तरफ मोड़ देना ही प्रतिकूल को अनुकूल बनाना है।

उस समय यह स्वाध्याय करना चाहिए कि—1. यह दुःख, दुःख नहीं है। 2. यह हमारे कर्मों का फल है। 3. इसे तो भोगना ही पड़ेगा। 4. इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। 5. इससे आत्मा का कुछ बिगड़ता नहीं है। 6. इससे आत्मा का लाभ ही होता है। 7. इस समय समता रखने से कर्म कटते हैं। 8. कर्म कटने से जीव को सिद्ध पद मिलता है।

महासती चन्दनबाला को जब मूला सेठानी ने उसका सिर मुँडवाकर उसे कमरे में बंद कर दिया था, तब चंदनबाला ने यही भावना भायी कि मेरे लिए यह अच्छा हुआ। मुझे तपस्या करने और स्वाध्याय करने के लिए समय मिल गया। धन्य है मूला सेठानी, उसने मुझे मेरे कर्म काटने में सहायता दी।

इसी प्रकार अनुकूल को प्रतिकूल समझ कर सुख भोगों से बंधने वाले कर्मों से बचा जा सकता है। उस समय इस प्रकार स्वाध्याय करना चाहिए कि–

1. यह सुख सच्चा सुख नहीं है। 2. यह आर्तध्यान है। 3. इंद्रियों से मिलने वाले सुख से तृप्ति नहीं होती है। 4. उससे तृष्णा बढ़ती है। 5. इससे आत्मा की हानि होती है। 6. इससे आत्मा को लाभ नहीं होता है। 7. इन सुखों में रस लेने से नये कर्म आते हैं। 8. इसमें रस लेने वाला संसार में भटकता रहता है। 9. भौतिक सुखों को सुख नहीं समझकर इनमें रस नहीं लेने वाला ही सिद्ध बनता है।

प्रतिकूल को अनुकूल समझना और अनुकूल को प्रतिकूल समझना समीक्षण ध्यान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

संक्षेप में नीचे लिखी भावना को हमेशा बहुत देर तक भाते रहिये–"शरीर की, परिवार की चिंता छोड़ो, ममता छोड़ो, दुःख-दर्द में रोना छोड़ो, भौतिक सुख में फूलना छोड़ो, परिवार और शरीर की चिंता छोड़ो क्योंकि दोनों की रक्षा केवल कर्मों के हाथ में है, ममता छोड़ो क्योंकि आयु कर्म और दूसरे कर्म जीव को परिवार से दूर कर देते हैं, दुःख-दर्द में रोना छोड़ो क्योंकि रोने से दुःख दूर नहीं होता, रोने से नवीन अशुभ कर्म आते हैं और वे बाद में दुःख देते हैं, भौतिक सुख में फूलना छोड़ो क्योंकि यह भौतिक सुख खाज-खुजली की तरह है, जितनी खाज शरीर पर करेंगे उतनी ही अधिक खाज करने की इच्छा बढ़ती जावेगी, सुख भोगों से कभी तृप्ति नहीं होती है। इससे नवीन अशुभ कर्मों का बंध भी होता है।

"शरीर बनेगा मिट्टी–मैं बनूंगा सिद्ध'

कुछ लोग अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पछताते हुए और यह कहते हुए पाये गये हैं–हमने अपना जीवन शरीर के मोह में और सुख भोगों में खो दिया। हमने अपनी आत्मा के साथ ले जाने के लिए कुछ भी नहीं कमाया। इस पछतावे से बचने के लिए आप आज से ही प्रतिदिन कम से कम डेढ़-दो घंटे नीचे लिखे हुए चार सूत्रों का जाप (स्वाध्याय) और चिंतन-मनन कीजिए–

1. शरीर बनेगा मिट्टी। इस सूत्र के स्वाध्याय के समय अपनी मृत्यु के बाद अपने शरीर के मिट्टी बन जाने की दिशा में कल्पना भी कीजिए।

2. शरीर अलग है, इस शरीर से मैं (आत्मा) अलग हूँ। इस शरीर के अन्दर अपने आत्मा के होने की अनुभूति या कल्पना कीजिए।

3. मैं (आत्मा) ही मेरा हूँ। इस सूत्र के स्वाध्याय के साथ केवल अपने आत्मा की कल्पना कीजिए और किसी भी दूसरी चीज की कल्पना मन में नहीं आनी चाहिए।

4. मैं बनूंगा सिद्ध। आप अपनी आत्मा की सिद्ध रूप में होने की कल्पना कीजिए।

ऊपर वाले चार सूत्रों के भावार्थ के चिंतन-मनन की सामग्री कुछ नीचे दी जा रही है, कुछ संत महात्माओं से पूछिए, कुछ दूसरी पुस्तकों से प्राप्त कीजिए और शेष अपनी आत्मा से पूछिए जो अनंत ज्ञान का भण्डार है।

5. शरीर बनेगा मिट्टी। संसार में कोई मनुष्य अमर नहीं रहा। तीर्थंकरों को भी देह छोड़नी पड़ी। सभी जीवों के शरीर मिट्टी बन जाते हैं। मेरा शरीर भी किसी दिन मिट्टी बनेगा। शरीर के दुःख में रोना और सुख में फूलना अज्ञान है और नवीन अशुभ कर्मों के बंध का कारण है। शरीर के कष्ट से आत्मा कुछ खोता नहीं है। इसलिए दुःख में रोना भूल है। इस समय समता भावना के स्वाध्याय में लीन होकर मुनि गजसुकुमालजी की तरह समतामय बन जाना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। भौतिक सुख से आत्मा को कुछ मिलता नहीं, इस सुख के समय फूलना नहीं चाहिए किन्तु स्वाध्याय में लीन होकर समतामय बन जाना चाहिए। शरीर के लिए चिंता छोड़ने वाले और मोह छोड़ने वाले को मोक्ष मिलता है।

6. संदूक अलग है और इसके भीतर वाले कपड़े उससे अलग है। ढोल अलग है और उसके अन्दर वाला सामान अलग है। इसी प्रकार शरीर अलग है और शरीर के भीतर फैला हुआ मैं (आत्मा) शरीर से अलग हूँ।

7. मैं आत्मा ही मेरा हूँ। यह शरीर, परिवार, धन आदि मुझसे अलग हैं। ये मेरे नहीं है। इनकी चिंता व मोह छोड़ो। मोह राग छोड़ने से, वीतराग बनने से, अनासक्त बनने से मोक्ष मिलेगा।

8. मैं सिद्ध बनूंगा। मैं संसार की सब चीजों को छोड़कर सिद्ध लोक में सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा। इस समय केवल अपनी आत्मा के सिद्ध दशा में होने की कल्पना ही मन में होनी चाहिए।

उपरोक्त सूत्रों के जाप और चिंतन से ये विचार प्रथम चरण में श्रद्धा बनकर ज्ञान का रूप धारण करते हैं। उसके बाद साधना जारी रखने से

दूसरे चरण में यह ज्ञान दर्शन अर्थात् दृढ़ श्रद्धा का रूप ले लेते हैं और तीसरे चरण में यह दर्शन आचरण में आकर चारित्र का रूप ले लेता है। यही मोक्ष का मार्ग है। यह स्वाध्याय आभ्यन्तर तप भी है। इससे कर्मों की निर्जरा भी होती है। एक विद्वान ने लिखा है कि किसी विचार का दस लाख बार जप हो जाने से वह अनन्त काल तक जीव के साथ उसके आचरण में बना रहता है।

"शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।" इन दो सूत्रों का अधिक से अधिक स्वाध्याय कीजिए।

साधना की विधि

बहुत से लोगों ने संतो के बहुत से प्रवचन सुने हैं किन्तु उन्हें उनमें से बहुत कम बातें याद है और जो याद है उनमें से बहुत कम बातें उनके जीवन में, आचरण में आती है। यदि प्रवचन सुनकर उनमें से कुछ बातें घर आकर कॉपी में नोट कर लें तो कभी-कभी इनकी पुनरावृत्ति भी हो जाती है और यदि किसी विचार को साधना के लिए हमेशा कुछ महीनों तक प्रतिदिन कुछ समय तक बार-बार दोहरावें, उसे तोते की तरह रटें, इनकी पर्यटना करें, उसका जाप करें, उसके अर्थ और भावार्थ का चिंतन-मनन करें, उस विचार की दृष्टि से अपने कार्यों और घटनाओं का चिंतन-मनन करें तो यह विचार या भावना उस साधक के अवचेतन मन में जम जाती है, आदत का रूप ले लेती है और कुछ महीनों तक इस साधना को जारी रखने से उस साधक का मनचाहा पूर्ण रूपान्तरण भी हो जाता है।

मुनि अर्जुनमाली ने भगवान महावीर द्वारा दिए गए उपदेश की बातों का इसी प्रकार स्वाध्याय किया और साधना से उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उन्होंने उन उपदेशों को शायद कुछ-कुछ इस प्रकार सूत्रों में बाँध लिया होगा–"संसार में कोई भी जीव किसी का या मेरा शत्रु नहीं है, मैं अपने ही अशुभ कार्यों का फल पा रहा हूँ, यक्ष के प्रभाव में मेरे आ जाने से, मेरे इस निमित्त से 1141 आदमियों की हत्या हुई है, इसके बदले में मुझे कठोर दंड मिलना चाहिए था, किन्तु ये लोग तो बहुत दयालु दिखते हैं, मुझे थोड़ा-सा दण्ड देकर ही छोड़ देते हैं। मुझे समता रखनी चाहिए। मैं इन्हें दोष क्यों दूं ?........समतापूर्वक कष्ट सहन करने से मेरे अशुभ कर्म कट जाएँगे..........।" मुनि अर्जुनमाली ने छः महीने तक उपर्युक्त विचारों का स्वाध्याय किया होगा और कष्ट सहने का अभ्यास किया होगा। छः महीने की इस साधना से उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

मुनि दृढ़ प्रहारी ने भी नगर के दरवाजों पर खड़े रहकर पाँच महीनों तक राहगीरों के द्वारा दिए गए उपसर्गों और कठोर वचनों को समता भाव पूर्वक स्वाध्याय करते हुए सहन किया और इस प्रकार स्वाध्याय और अभ्यास के द्वारा साधना करने से उन्हें भी केवलज्ञान हो गया। साधना करने में समय अवश्य लगता है, मुनि गजसुकुमाल जैसे प्राणी की साधना तो एक ही दिन में सफल हो सकती है किन्तु जिन पर कर्मों का भारी बोझा लदा हुआ हो, उनको तो साधना में 2-4 वर्ष और इससे भी कुछ ज्यादा समय लग सकता है।

कुछ लोग कहते हैं–"क्रोध छूटता नहीं। समय पर क्रोध आ ही जाता है। जो लोग अभ्यास में बार-बार चूकते हैं, ऐसे लोग यदि क्रोध छोड़ने के लिए ही स्वाध्याय करते रहें तो उन्हें भी 2-4 वर्ष में सफलता अवश्य मिल सकती है। एक सूत्र की टीका में लिखा है कि एक संत ने "धम्मो मंगल मुक्किट्ठ" इस सूत्र का लगातार स्वाध्याय किया तो उसे 12 साल बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। एक विचार का बार-बार स्वाध्याय करने से उस विचार में श्रद्धा उत्पन्न होती है और यह श्रद्धा चारित्र का रूप ले लेती है। साधना का यही मंत्र है।

स्वाध्याय तोता रटंत नहीं है, तोता अबोध पक्षी है, उसका रटना बेकार जा सकता है किन्तु मनुष्य तो समझदार होता है। उसका किसी स्वाध्याय रूप जीवन सूत्र को शुद्ध भावना से रटना कभी भी व्यर्थ नहीं जा सकता। उसका फल इस जन्म या भविष्य के किसी जन्म में अवश्य मिलता है। रटना स्वाध्याय का एक अंग है। यह आभ्यन्तर तप है। इससे कर्मों की निर्जरा होती है और आत्मा मोक्ष तक प्राप्त कर सकती है।

धार्मिक शिविरों में क्रोध, मान, माया, लोभ, चिंता, मोह, दुर्भावना, विकथा आदि से मुक्ति पाने का अभ्यास अवश्य कराया जाना चाहिए।

परिवार भावना

(क) सभी जीवों के मुख्य-मुख्य भौतिक काम उनके संरक्षक कार्मण शरीर के आदेशानुसार होते हैं। (ख) कोई भी जीव किसी भी दूसरे जीव के कर्मों को नहीं बदल सकता। (ग) परिवार का या संसार का कोई भी जीव किसी दूसरे जीव को उसके कर्मों के दण्ड से बचा नहीं सकता। (घ) इसीलिए परिवार का मेरे लिए और मेरा मेरे परिवार के लिए चिंता करना व्यर्थ है। (ङ) परिवार के सदस्यों का एक दूसरे से वियोग होना भी

निश्चित है। (च) इसलिए परिवार को अपना समझना और परिवार का मोह करना व्यर्थ है। (छ) परिवार की चिंता छोड़ो, मोह छोड़ो। (ज) मनुष्य के ऊपर परिवार का कर्जा हो सकता है। उसे सम्यक् सेवा द्वारा अपने परिवार व माता-पिता का कर्जा चुकाना चाहिए। प्राणी मात्र की सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है। (झ) चिंता और मोह को छोड़ने वाला अनासक्त बन सकता है और मरुदेवी माता की तरह मोक्ष पा सकता है।

शरीर भावना

शरीर भावना इस प्रकार भायी जा सकती है–

(क) यह शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है। यह मेरा नहीं है।

(ख) शरीर पर कष्ट आने के समय इस कष्ट को भूलने के लिए उस समय नीचे लिखी हुई भावना में लीन हो जाना चाहिए–यह कष्ट मेरे कर्मों का फल है, यह मुझे भोगना ही पड़ेगा। इसको भोगते समय समता रखने से ये कर्म कट जाएंगे और चिंता व आर्तध्यान न होने से नवीन अशुभ कर्म नहीं बंधेंगे। इससे मेरी आत्मा का कुछ भी नहीं बिगड़ा है, मैंने कुछ भी नहीं खोया है, किन्तु मेरा आत्महित ही हुआ है। कर्मों की निर्जरा हो रही है, मैं मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ, इसलिए शरीर की चिंता छोड़ो व शरीर का मोह छोड़ो, इससे मुनि खन्दक, मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह मोक्ष मिलेगा।

उपर्युक्त भावना को और अधिक मजबूत बनाने के लिए 8-10 महीनों तक डेढ़-दो घंटे प्रतिदिन स्वाध्याय और चिंतन-मनन करना चाहिए। इसी प्रकार भौतिक सुख के समय भी मनुष्य को फूलना नहीं चाहिए, खुशी नहीं मनानी चाहिए किन्तु स्वाध्याय करना चाहिए कि–"यह सुख भी सच्चा सुख नहीं है, इससे अशुभ कर्मों का बंध होगा।" इस भौतिक सुखानुभूति से बचने वाला ही अनासक्त बन सकता है।

धन, परिवार, शरीर की चिंता करने से अशुभ नारकीय कर्मों का बंध होता है। अनासक्ति भावना की तरह समता भावना, बारह भावनाएँ, आत्मध्यान, आत्म-भावनाएँ, कषाय मुक्ति की भावनाएँ, भगवान का भजन आदि भी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं।

चिंता छोड़ो, मोह भी छोड़ो।
अनासक्त को मोक्ष मिलेगा।।

अनासक्ति भावना को बार-बार दोहराने से, इसका जप करने से अनासक्ति के सूक्ष्म शुद्ध परमाणु का कवच-सा बन जावेगा, जो साधक को आसक्ति से बचावेगा। संक्षेप में इस भावना का सूत्र इस प्रकार है। इसको हमेशा एक-डेढ़ घंटे भाने वाला सब कर्मों से मुक्त होकर मोक्ष मार्ग का पथिक बनता है।

धन, परिवार, शरीर की,
चिंता छोड़ो, मोह छोड़ो,
अनासक्त को मोक्ष मिलेगा।

कर्म निर्जरा

जीवन लक्ष्य पाने के लिए कर्मों की निर्जरा करना बहुत जरूरी है। इसका प्रथम उपाय है शुभ और शुद्ध कर्मों का अनुमोदन करना। इस अनुमोदन से मनुष्य के विचार और उसकी भावना शुद्ध बनती है और किसी कठिन परिश्रम के बिना आसानी से धर्म का लाभ होता है। चन्दनबाला ने भगवान महावीर स्वामी को दान दिया और सुबाहुकुमार ने सुमुख गाथापति के भव में साधुजी को दान दिया और संगम ने साधुजी को खीर बहराई। इससे वे मोक्षमार्ग के अधिकारी बने। इसका अनुमोदन करने से भी अनुमोदन करने वाले को दान देने का फल मिलता है और वह भवसागर पार भी कर सकता है।

विजय सेठ और विजया सेठानी के शीलपालन की, सेठ सुदर्शन के शीलपालन की और दूसरों के शीलपालन की कथा का अनुमोदन करने से शीलपालन में दृढ़ता आती है और अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है, काली रानी, महाकाली रानी, सुकाली रानी, धन्ना मुनि आदि के तप की सराहना, अनुमोदना करने से, तप करने से होने वाले धर्म-लाभ का फल मिलता है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ़ प्रहारी, मुनि खण्दक आदि के समता भाव और क्षमा भाव का अनुमोदन और चिंतन करने से हमारे अशुभ कर्म नष्ट होते हैं।

कर्म निर्जरा का दूसरा उपाय है—अपने किए हुए पापों का पश्चात्ताप करना और हो सके तो उनका प्रायश्चित लेना। इससे बहुत से कर्म ढीले पड़ जाते हैं और कुछ कर्म तो नष्ट ही हो जाते हैं।

कर्म निर्जरा का तीसरा उपाय है—समता भाव रखना। इसके स्वाध्याय का सूत्र है—"रो मत दुःख में, फूल मत सुख में, सिद्ध बनेगा।"

कर्म निर्जरा का चौथा उपाय है–शुद्ध ज्ञान, ध्यान में लीन रहना। शुद्ध ज्ञान के चिंतन से मन अशुद्ध कामों की तरफ नहीं जाता है और इससे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय भी होता है और मनुष्य के विचार निर्मल (शुद्ध) बनते जाते हैं।

तीन बातें

स्व. आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने पद्य की दो पंक्तियों में थोड़े शब्दों में जीवन को ऊँचा करने वाला सब धर्मों का सार बता दिया है–

ग्रंथ पंथ सब जगत् के, बात बतावत तीन,
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन।

'राम हृदय' इन शब्दों का भाव है कि मनुष्य भगवान् का अर्थात् सिद्धों का गुणगान, ध्यान और सिद्ध बनने का संकल्प करे तो सिद्धों का ध्यान और सिद्ध बनने का संकल्प करने वाला और इस भावना को दृढ़ बनाने वाला कर्मों की बहुत निर्जरा करता है। इसके साथ-साथ सिद्धों का ध्यान करते हुए और 'णमो सिद्धाणं' इस पाठ का जप करते हुए मनुष्य संसारी वातावरण से निकलकर आध्यात्मिक वातावरण और शुद्ध ध्यान में लगा रह सकता है। यह भक्ति मार्ग है और परमात्मा की भक्ति करने वाला मुनि दृढ़ प्रहारी की तरह परमात्मा बन जाता है।

इस पद्य में दूसरी बात यह बताई गई है कि "मनुष्य को अपने मन में सब जीवों के प्रति दया रखनी चाहिए।" दया अर्थात् अनुकम्पा, करुणा आत्मा का सबसे बड़ा गुण है। जो मनुष्य सब जीवों पर पूर्ण दयाभाव रखता है, धर्मरुचि अणगार की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से बच जाता है। उसकी आत्मा स्वच्छ, निर्मल और शुद्ध बन जाती है। सभी धर्मों ने दया को, अहिंसा को मनुष्य का प्रथम व सबसे बड़ा धर्म बताया है।

इस पद्य में तीसरी बात 'तन सेवा में लीन' बताई गई है। जैन दर्शन में सेवा धर्म को तप से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। अगर कोई साधु तपस्या करता है और इससे उसके दूसरे संतों की सेवा करने में बाधा आती हो तो वह तप को छोड़ दे किन्तु दूसरे संतों की सेवा अवश्य करे। दूसरों की सेवा करने से मनुष्य का अभिमान दूर होता है। सेवा वही कर सकता है जो अपने शरीर, परिवार और धन के लोभ को छोड़ता है। सेवा में गृहस्थ और साधु अपनी-अपनी मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए अपने आत्म धर्म का और पाँच महाव्रतों का भी पालन कर सकते हैं। इस प्रकार परमात्मा का

भजन, सब जीवों पर दयाभाव और उस दयाभाव के अनुसार दूसरों की सम्यक् सेवा करना सिद्ध पद प्राप्ति का एक मार्ग बन जाता है।

अंजना का चिंतन

महासती अंजना को ससुराल वालों ने और पितृगृह वालों ने घर से निकाल दिया। तब वन में पहुँचकर वह अपनी सखी वसन्तमाला से कहने लगी–"सखी ! कर्मों का खेल बड़ा विचित्र है। कर्मों के साथ न देने पर कोई भी प्राणी दुःख से बच नहीं सकता। मैंने पहले ही कहा था कि वन में जाना ही ठीक है, मेरे अशुभ कर्मों के उदय ने मुझे अपना अशुभ फल देने के लिए, मेरे परिवार वालों को निमित्त बनाकर मुझे घर से निकलवाया। वन में भिजवाया ताकि मैं उन कर्मों का दुःख भोग सकूं, उन्हीं कर्मों ने मुझसे प्यार करने वाले मेरे माता-पिता के विचारों को भी बदल दिया और मुझे घर में ठहरने भी नहीं दिया। जब तक उन अशुभ कर्मों का फल मैं भोग नहीं लूंगी तब तक मुझे वन में ही रहना पड़ेगा। उन कर्मों की अवधि समाप्त होने पर मेरे ससुराल वाले और पीहर वाले दोनों ही मुझे प्रेम से अपने पास बुलायेंगे। परिवार वालों को मेरा नहीं किन्तु मेरे कर्मों का साथ देना पड़ता है। अतः परिवार का मोह करना व्यर्थ है।"

परिवार है साथी नहीं मेरा।
परिवार है साथी कर्मों का।

ज्ञान की बातें

नीचे लिखे हुए विचार सम्यक् ज्ञानवर्धक हैं। इनका हर समय और विशेषकर सवेरे, शाम स्वाध्याय किया जा सकता है। इनके स्वाध्याय के लिए सभी समय और सभी स्थान उपयुक्त है। इनका स्वाध्याय सामायिक में या दुकान पर बैठे हुए भी किया जा सकता है। इनके स्वाध्याय के लिए स्नान आदि करने का भी कोई नियम नहीं है। इनके स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1. जीव (मनुष्य, पशु-पक्षी आदि) अपने इस जन्म में या किसी पूर्व जन्म में किए हुए कर्मों का फल ही पाते हैं।

2. यह फल जिस जीव को हमने पूर्व में सुख या दुःख दिया, वो उस निमित्त से या उस निमित्त के मोक्ष आदि में चले जाने पर किसी दूसरे निमित्त से या प्रकृति से (जैसे गिर जाने से, टाँग के टूट जाने पर) मिलता

है। इसलिए संसार में किसी को अपना शत्रु समझना या निमित्त को दोष देना भूल है। जो किसी को दोष नहीं देता है, वह क्रोध और द्वेष से बच जाता है।

3. परिवार या धन किसी जीव को अशुभ कर्मों के दंड से नहीं बचा सकता इसलिए परिवार के मोह या धन के लोभ से बचना ही राग से बचना है।

4. राग और द्वेष से बचने वाला ही वीतरागी बनता है और वही मोक्ष पाता है।

5. संसार में एक जीव का दूसरे जीव के साथ उपादान निमित्त का सम्बन्ध कर्मों के द्वारा, कर्मों के कारण और कर्मों के विधानानुसार बनता है। इसी उपादान निमित्त का सम्बन्ध निभाने के लिए एक जीव दूसरे जीव के साथ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्वामी-सेवक आदि के रूप में परिवार में या मित्र-शत्रु के रूप में आते हैं और उपादान निमित्त सम्बन्ध के समाप्ति के साथ ही साथ संसार के दूसरे सारे सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं और एक जीव का दूसरे जीव से वियोग हो जाता है। परिवार केवल उपादान निमित्तों का एक स्थान पर संयोग ही है। इसके स्वाध्याय से मोह से बचा जा सकता है।

6. मनुष्य कर्माधीन है। जीवों को अपने कर्मों का फल भोगने के लिए उपादानों और निमित्तों के रूप में प्रायः एक परिवार में आना पड़ता है। इस प्रकार जन्म के लिए परिवार का चुनाव करना जीव के हाथ में नहीं किन्तु उनके कर्मों के हाथ में है।

7. जब-जब पुराने कर्मों का योग समाप्त हो जाता है और दूसरे नवीन कर्मों का उदय होता है तब-तब जीव को परिवार से अलग होना पड़ता है या मृत्यु जन्म द्वारा दूसरे परिवार में जाना पड़ता है। इस प्रकार मृत्यु और जन्म का समय कर्मों द्वारा साधारणतया नियत होता है।

8. जीव अपने कर्मों का फल जिस उद्योग धन्धे से भोग सके उसे वैसा ही धन्धा करने की या उसे बार-बार बदलने की योजना भी प्रायः कर्मों से बनती है, सम्भव है कभी-कभी कोई बहुत हल्के कर्मों वाला जीव इसमें अपनी उच्च भावना के अनुसार परिवर्तन भी कर सके।

9. भिन्न-भिन्न अन्तराय कर्मों के उदय द्वारा जीव के ज्ञान प्राप्ति में, धन प्राप्ति में, सुख प्राप्ति में, स्वास्थ्य प्राप्ति में बाधाएँ भी कर्मों द्वारा आती

है और सुख-दुःख भी साता-असाता वेदनीय कर्मों के उदय और समाप्ति पर निर्भर करता है।

10. साधारणतया सभी मोटे-मोटे भौतिक कार्यों की योजना कर्मों के हाथ में रहती है फिर भी कभी-कभी किसी अज्ञात उच्च भावना के आ जाने पर जीव सब कर्मों को दबाकर ऊपर उठ जाता है और फिर अपना आत्महित कर लेता है।

11. सभी जीव अपने ही शुभ कर्मों से ऊँचे उठते हैं और अपने ही अशुभ कर्मों से नीचे गिरते हैं। निमित्त तो केवल निमित्त ही रहता है। निमित्त किसी को ना तो ऊँचा उठा सकता है ना ही किसी को नीचा गिरा सकता है। अतः जीव को अपनी ही भावनाओं को उच्च और मजबूत बनाने की जरूरत है।

12. द्रव्य क्रिया दुर्भावना से जीव को नीचे गिराती है और शुद्ध भावना से जीव को ऊँचा उठाती है।

13. काया से मनुष्य जितना पाप, पुण्य या धर्म करता है उससे हजारों, लाखों, करोड़ों गुणा पाप-पुण्य या धर्म वह केवल अपनी ही भावनाओं से कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक जीव को भी नहीं मारता है फिर भी दुर्भावना से सातवें नरक में जाता है और वीतराग अनासक्त भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है।

14. जीव को हमेशा दान, शील, तप, समता भावना आदि का अनुमोदन और अपने पापों का प्रायश्चित करते रहना चाहिए। इससे जीवन ऊँचा उठता है।

15. दान, शील, तप, समभाव, सेवा, परसेवा और अपने धार्मिक क्रियाओं का अहंकार करने वाले जीव को इन सब क्रियाओं का शुफल किंचित मात्र मिलता है अतः अहंकार आने पर अहंकार का प्रायश्चित करना चाहिए। अहंकार छोड़ने के निम्नलिखित विशेष सूत्र हैं–

(क) अहंकार से रावण जैसे महापण्डित का और हिरण्यकश्यप जैसे महाशक्तिशाली व्यक्ति का पतन हो गया। मनुष्य अपने-आप को कर्म-दंड से नहीं बचा सकता।

(ख) मनुष्य कर्मों के हाथ का खिलौना है। उसका किसी बात के लिए अहंकार करना भूल है।

(ग) शक्ति है थोड़ी, ज्ञान है थोड़ा, अहं को छोड़ो।

(घ) मैंने पर-हित नहीं किया है। अपना निज कर्ज चुकाया है। इसके लिए अहं भाव मन में आना भूल है।

(ङ) बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को, गुरुजनों को, संतों को।

16. मोक्ष जाने में शरीर आसक्ति ही बाधक है। इसे किसी स्वाध्याय से या तप से दूर करने वाला ही मोक्ष पा सकता है। इसका एक सूत्र यह है–"शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।" दो-चार वर्ष हमेशा इसका स्वाध्याय और इसके भावार्थ का चिंतन-मनन करते रहना चाहिए।

17. (क) धन का आना और धन का चले जाना कर्मों के हाथ में है। इसका लोभ करने वाला और इसके लिए चिंता करने वाला मनुष्य कभी सुख नहीं पा सकता।

(ख) जिस घर में छोटे, बड़ों का आदर और उनकी सेवा करते हैं और बड़े, छोटों में अच्छे धार्मिक संस्कार डालते हैं किन्तु उन्हें धार्मिक उन्माद से बचाते हैं, उस घर में सभी लोग यदि उनके पूर्व के अशुभ कर्मों का उदय न हो तो प्रायः सभी सुख पाते हैं।

18. महाहिंसा, महाआरम्भ, महापरिग्रह और बड़े-बड़े हिंसा के कारखानों की योजना बनाना अशुभ कर्म बंध का कारण है। जितने दिन तक जिनती बार ऐसे कार्यों का विचार किया जाता रहेगा उतने दिन तक उतनी ही बार अशुभ कर्मों का बंध होता रहेगा और उनका उदय होने पर दुःख पाना होगा।

19. इन चार बातों का हमेशा चिंतन करना चाहिए–

(क) किसी को दोष न देने वाला क्रोध से बच जाता है।

(ख) ज्ञान है थोड़ा, शक्ति है थोड़ी, इसका स्वाध्याय करने वाला अहंकार से बच जाता है।

(ग) परिवार और धन किसी को कर्म बंध से नहीं बचा सकते। इसका स्वाध्याय करने वाला परिवार के मोह और धन लोभ से बच जाता है।

(घ) "शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध" इसका स्वाध्याय करने वाला सभी आसक्तियों से बच जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

20. किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता, दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता और मुफ्त में कुछ नहीं मिलता।

21. परमात्मा की भक्ति, दीनों के प्रति दया भावना और सभी जीवों की यथाशक्ति सम्यक् सेवा करना ही मानव मात्र का धर्म है।

सम्यक् सेवा–

सम्यक् सेवा के तीन लक्ष्य और चार विवेक हैं–

जीव को जीविका लायक, ज्ञान प्राप्त करने लायक और मोक्ष प्राप्त करने लायक बनाना। ये तीन लक्ष्य हैं और आत्मा को केवल आत्मा समझना अर्थात् उनको भाई-भतीजा आदि समझकर मोह नहीं करना, निःस्वार्थ भाव से सेवा करना, किसी तीसरे जीव को दुःख नहीं देना और अपने स्वार्थ का भी कुछ त्याग करना–ये चार विवेक हैं, अपनी आत्मा का ज्ञान होना ही ज्ञान योग है और आत्म भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। आत्मभावना ये हैं–मैं ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मुझ आत्मा का नहीं है। यह शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नहीं हैं। इनकी चिंता छोड़ने वाला और मोह छोड़ने वाला मोक्ष पाता है।

22. मनुष्य शुभ कर्म करके बहुत से अशुभ कर्मों को शुभ में बदल सकता है।

23. कपट से धन आता नहीं, अगर आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह उस व्यक्ति को बरबाद करके चला जाता है।

24. सत्य आचरण और धर्मात्मा व्यक्ति को देवता भी नमस्कार करते हैं, सहयोग करते हैं।

25. शुभ या अशुभ कर्मों का फल यदि उनके करते समय नहीं मिले तो कभी-कभी बाद में इस जन्म या अलगे जन्मों में मिलता है।

26. यदि आप किसी जीव को दुःख देना चाहते हैं या गाली देते हैं तो उस व्यक्ति का नुकसान तो उसके अशुभ कर्मों के उदय के विना नहीं होगा किन्तु आपकी दुर्भावना के कारण आपके अशुभ कर्मो का वंध तो हो ही जायेगा और उसका अशुभ फल आपको तो मिलेगा ही।

27. दूसरों का केवल हित चाहने वाला भी तीर्थंकर वन सकता है।

28. दोनों वक्त भोजन के समय और रात को सोते समय अपनी भूलों और पाप का पश्चाताप करने से कर्म निकाचित नहीं वंधते और प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

29. दूसरों को गाली देने वाला, दूसरों का बुरा चिंतन करने वाला और बुरा करने वाला निश्चय में अप्रत्यक्ष रूप से अपने अशुभ भावों के कारण अपना ही बुरा करता है।

30. दूसरों का हित सोचने वाला और हित करने वाला निश्चय में अप्रत्यक्ष रूप से अपने शुभ भावों के कारण अपना ही भला करता है और यह तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करने का एक उपाय है।

31. जिस घर में माता-पिता अधिक धन कमाने की अपेक्षा बच्चों में अच्छे संस्कार डालने पर ध्यान देते हैं और बच्चे माता-पिता को सवेरे नमस्कार करते हैं और माता-पिता में पूरी श्रद्धा रखते हैं वह परिवार सुख समृद्धि से परिपूर्ण रहता है।

32. मनुष्य और कुछ नहीं कर सके तो 'णमो सिद्धाणं', णमो सिद्धाणं' इसका स्वाध्याय ज्यादा से ज्यादा समय तक करे, यह भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

33. दो मित्रों में एक मित्र वेश्या के यहाँ गया किन्तु वहाँ जाकर पश्चात्ताप करने लगा–"हाय ! मैं, कहाँ आ गया, धन्य है मेरा मित्र जो धर्म चर्चा सुन रहा है।" दूसरा मित्र संतों के प्रवचन सुनने गया किन्तु वह सोचने लगा कि "मैं कहाँ इन रूखे शब्दों को सुनने आ गया। धन्य है मेरा मित्र, जो वेश्या के यहाँ जाकर मनोरंजन कर रहा है।" ऐसा सोचकर पहले मित्र ने शुभ कर्मों का उपार्जन किया और दूसरे मित्र ने अशुभ कर्मों का उपार्जन किया। अतः शुभ या अशुभ कर्म अपनी-अपनी भावना के अनुसार बनते हैं।

34. प्रत्येक धार्मिक क्रिया में भावना के साथ विवेक रखने से धर्म होता है, किन्तु विवेक नहीं रखने से अर्थात् जीव रक्षा का ध्यान या यतना नहीं रखने से या उस क्रिया के परिणाम पर ध्यान नहीं रखने से पाप भी हो सकता है। जैसे उपवास करना धर्म है किन्तु गर्भवती महिला यदि उपवास करे तो उसे पाप लगता है।

35. दो साधु हैं, उनमें से एक बीमार है। यदि दूसरा साधु तप करता है और तप के कारण बीमार साधु की सेवा नहीं कर सकता है या बाधा पहुँचती है तो वह तप धर्म नहीं है।

36. कभी-कभी मनुष्य के मन में बहुत निकृष्ट, दुष्ट-भावना आती है जिससे वह बिना कुछ किए हुए ही तन्दुल मत्स्य की तरह और प्रसन्नचंद्र

मुनि की तरह केवल भावना-भावना से ही सातवीं नारकी के कर्मों का उपार्जन कर लेता है। उस समय यदि वह प्रसन्नचंद्र मुनि की तरह पश्चात्ताप कर लेता है तो उन सभी अशुभ कर्मों को उसी समय नष्ट कर सकता है। भावना में इतनी महान शक्ति है कि पश्चात्ताप से प्रसन्नचंद्र मुनि ने, कुरगडुक ने, चंडरुद्राचार्य ने और चंडरुद्राचार्य के नवदीक्षित शिष्य ने केवल भावना-भावना से ही क्षण भर में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

37. धार्मिक चर्चा सिर्फ ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से बहुत कम मात्रा में करनी चाहिए। उसके हार या जीत की सीमा तक पहुँचने से वह झगड़े का रूप धारण कर लेती है और पालक व स्कन्दकाचार्य की कहानी बन जाती है। पालक ने धर्मचर्चा में हारने के कारण स्कन्दकाचार्य के पाँच सौ शिष्यों की हत्या करवायी थी।

38. कम बोलो और अधिक सुनो। जो सुनो उस पर विचार करो। उसे समझो तथा उसका पालन करो। इसी प्रकार जितना पढ़ो उससे अधिक उस पर चिंतन करो और उससे अधिक स्वाध्याय करके उसे आचरण में उतारो। इसीसे जीवन ऊँचा उठता है।

39. सुख में फूलने का अर्थ यह है कि धन, पद, मान आदि पाकर अपने-आप को बड़ा समझना, जिससे अहं भाव पैदा होता है। अहं भाव के कारण मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। सच्ची और सही सलाह को सुनने के लिए उसके कान बंद हो जाते हैं, सही सलाह देने वालों के सामने उसकी आँखें बंद हो जाती है। उसके पंख लग जाते हैं, वह जमीन पर नहीं चलता, वह आकाश में ही उड़ता रहता है और अंत में तूफानों में घिर जाता है या थक कर गिर पड़ता है। भौतिक सुख में फूलने वाले का पतन हो जाता है।

निम्नलिखित महाहिंसक चीजों से बचिए

मोटे मुलायम चमड़े के लिए जीवित पशुओं के ऊपर उबलता पानी डालकर उन्हें बेंतों से पीटा जाता है तथा जीवित अवस्था में ही उनकी खाल खींच ली जाती है। बढ़िया जूतों के लिए गर्भिणी मादा पशुओं का वध करके उनके गर्भ के बच्चों को निकाल कर उनका वध किया जाता है। असली रेशम जीवित कीड़ों को पानी में उबालकर प्राप्त किया जाता है। लोरिस जानवर की आँखें पीस कर सौंदर्य प्रसाधन बनाए जाते हैं। हजामत बनाने के बाद जिस लोशन का उपयोग किया जाता है उसकी जाँच गिन्नी पिग नामक जानवर की त्वचा पर की जाती है। सील मछली के सिर में

सिलाई घोंप दी जाती है ताकि बेदाग व अखण्ड खाल निकल आए। इसके बच्चे के रोओं से कोट आदि बनते हैं। कस्तूरी मृग व सीवेट को कस्तूरी के लिए मारा जाता है। मृग की नाभि से कस्तूरी मिलती है। इसके चर्म से चप्पलें, पर्स, खिलौने बनते हैं। कछुए के अवयवों से प्राप्त चर्बी से तेल बनाया जाता है जो सौंदर्य प्रसाधन की तरह काम में लेते हैं। साँप के गॉल ब्लडर से शराब, दवाई बनाई जाती है। मधुमेह–डायबिटीज की इन्सुलिन नामक दवा भेड़, बैल, गाय के अग्न्याशय से प्राप्त होती है।

शेम्पू की जाँच खरगोश की आँखों में की जाती है। टिड्डों को चर्बी में मिलाकर चॉकलेट बनाई जाती है। दीमक को तलकर मसालों में बघारा जाता है। मेंढ़क की टाँगें विदेशों में बड़ी स्वादिष्ट मान कर खाई जाती है। हाथी दाँत की बनी चीजें, मछली के तेल से बनी हुई दवाइयाँ, चरबी से बनी साबुन, शहद आदि हिंसा से बनी हुई वस्तुएँ हैं। भैंस की खाल में चाँदी को पीसकर वर्क तैयार की जाती है।

अशुभ कर्मों को क्षय करने का सरल तरीका है–सिद्धों का ध्यान, स्वाध्याय और सेवा।

समीक्षण ध्यान के कुछ सूत्र

1. शरीर मेरा नहीं है, मैं (आत्मा) भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा।
2. रो मत, रो मत, दुःख में रो मत : सिद्ध बनेगा।
3. फूल मत भौतिक सुख में, सिद्ध बनेगा।
4. बड़ा मत समझो स्वयं को, बड़ा समझो बड़ों को।
5. दोष मत दो किसी को।
6. 'कोई लेनदार कोई देनदार।
   परिवार नहीं होता अपना।'
7. शरीर बनेगा मिट्टी, मैं बनूंगा सिद्ध।

ऊपर लिखी हुई भावनाओं में और अनित्य आदि बारह भावनाओं में भी जिन भावनाओं का महीनों और वर्षों तक स्वाध्याय अर्थात्–चिंतन और जाप होने से उनमें साधक की अटूट श्रद्धा पैदा हो जावेगी और ये भावनाएँ साधक के आचरण में स्वतः उतर जावेगी। इन भावनाओं से पूर्णतया भावित होने वाला जीव अवश्य ही मोक्ष पाता है। जरूरत है एक-एक भावना को पाँच-पाँच, सात-सात बार जपने की।

इस कषाय मुक्ति की नववीं पुस्तक में इन भावनाओं को पुष्ट बनाने की सामग्री दी हुई है।

जीवन निर्माण के कुछ उपाय

1. जो मनुष्य दूसरे जीवों की, अपने परिवार और विशेषकर अपने माता-पिता की सम्यक् सेवा करता है वह महा-महा पुण्यवान और महाभाग्यवान बनता है। सेवा और स्वाध्याय महातप है। इनसे पाप और अशुभ कर्मों का नाश होता है और मनुष्य स्वर्ग या मोक्ष की तरफ आगे बढ़ता है।

2. जो मनुष्य दूसरों को बरबाद करता है वह मरने के बाद उस बरबाद घर में जन्म लेकर या वहाँ पशु बनकर पहुँचता है और उस बरबादी का फल भोगता है या वह बरबाद होने वाला मनुष्य उस बरबाद करने वाले के घर में पहुँचकर अपने बरबाद करने वाले मनुष्य को बरबाद करता है। कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है।

3. जैन दर्शन कहता है उपादान को अर्थात् अपने-आप को सुधारो, केवल निमित्त तुम्हें ऊँचा नहीं उठा सकता। यदि उपादान ने शुभ कर्म नहीं किये हों तो उसके माता-पिता, उसके गुरुजन, स्वर्ग के देवता और तीर्थंकर भी उसे कुछ नहीं दे सकते और ऊँचा नहीं उठा सकते। यदि उपादान अशुभ पुरुषार्थ और अविवेक को छोड़कर शुभ पुरुषार्थ विवेक के साथ करता है तो साधारण पुरुषार्थ से या कभी-कभी पुरुषार्थ के बिना भी केवल अपने पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से और कभी-कभी निमित्त के बिना भी स्वयं बुद्धों की तरह ज्ञान और करोड़पति के घर में जन्म लेने वाले बच्चे की तरह धन आदि प्राप्त कर लेता है। मनुष्य कभी-कभी अशुभ कर्मों के उदय के समय कठोर पुरुषार्थ करता हुआ भी धन आदि खो देता है। जैनागमों में निमित्त से उपादान को अधिक प्रधानता दी गई है।

अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा

कषाय मुक्ति : दसवां भाग

चिंतन की कुछ भावनाएँ–

{1. अद्वेष, 2. अखेद, 3. अभय,
4. अराग, 5. अलोभ, 6. अमान }

1. अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा
   दोष किसी को कभी न दूंगा
   क्रोध द्वेष से बचा रहूँगा।
2. दुःख-दर्द में दुःखी न होता
   अशुभ कर्म समता से धोता।
3. मौत का मैं भय छोड़ूंगा
   अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
4. किया स्वयं का स्वयं ही पाता
   परिवार भी कुछ काम न आता।
5. लोभ से यदि धन है मिलता
   जग में कोई दीन न रहता।
6. मान-बड़ाई ईर्ष्या भावे
   वह नर कैसे मोक्ष में जावे।
7. अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा
   णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं।

उपर्युक्त भावनाओं का जितना अधिक स्वाध्याय और चिंतन किया जाएगा उतना ही शीघ्र मनुष्य सिद्ध पद पाने का अधिकारी बनेगा और जितना कम स्वाध्याय किया जाएगा उतना ही देरी से वह मोक्ष जाएगा, इन भावनाओं में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए चिंतन-मनन की सामग्री नीचे दी जा रही है–

(1) अद्वेष भावना–क्रोध मुक्ति

हम अपने ही कर्मों का फल पाते हैं। हम अपने ही अशुभ कर्मों का अशुभ फल पाते हैं, इसमें निमित्त का कोई दोष नहीं है। दूसरे जीव को तो कर्मों की प्रेरणा से जबरदस्ती निमित्त बनना पड़ता है। अतः निमित्त को दोष देना अज्ञान है। यदि हम किसी को दोष नहीं देंगे तो हमारे अन्दर किसी भी जीव के प्रति द्वेष भावना पैदा नहीं होगी। हम क्रोध से बचेंगे, दुर्भावना से बचेंगे, दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार से बचेंगे, संसार के सभी जीवों के साथ हमारे मन में द्वेषभाव, शत्रुभाव भविष्य के लिए पैदा होना बंद हो जाएगा। सारे संसार के जीवों के लिए हमारे मन में मैत्री भावना आ जावेगी और अनेक अशुभ कर्मों का आना बंद हो जाएगा, मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कन्दक, सेठ सुदर्शन आदि ने किसी को दोष नहीं दिया, वे सिद्ध बने।

(2) अखेद भावना–दुःख चेतना से मुक्ति

मनुष्य सांसारिक पीड़ा में या अनेक प्रकार की प्रतिकूल अवस्था आने पर रोता है, विलाप करता है, आर्तध्यान में डूबता है, दूसरों के प्रति द्रव्य और भावहिंसा के विचार अपने मन में उठाता है और अनेक अशुभ कर्मों का उपार्जन करता है। यदि वह कर्म सिद्धांत आदि के चिंतन में लग जाता है तो अपने दुःख-दर्द को भूलकर अशुभ कर्मों का आना बंद कर सकता है। वह विचार सकता है कि यह दुःख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। इनको समतापूर्वक भोगने से ही मोक्ष मिलेगा। यदि मैं शुभ चिंतन में या शुभ कार्य में लग जाऊंगा तो अशुभ कर्मों का आना भी रुक जाएगा। इस दुःख और पीड़ा से मेरी आत्मा का कुछ बिगड़ता नहीं है। इससे मेरी आत्मा का अहित नहीं होता है। इससे आत्मा का हित ही होता है। कर्म कटते हैं और मैं मोक्ष के नजदीक पहुँचता हूँ। इस विचारधारा से समता की प्राप्ति होगी और अशुभ कर्म नहीं आ पावेंगे।

(3) अभय भावना–मौत के भय से मुक्ति

यह देखा गया है कि संसार में मौत का भय सबसे बड़ा भय है और इस भय से भयभीत मनुष्य अनेक प्रकार की द्रव्य और भावहिंसा के विचारों में डूबा हुआ बहुत लम्बे समय तक महामोहनीय अशुभ कर्मों का बंध करता है। कंस ने देवकी के आठवें पुत्र द्वारा अपने मृत्यु की भविष्यवाणी सुनकर बहुत वर्षों तक बहुत भयंकर अशुभ कर्मों का उपार्जन किया। शत्रु से स्वयं को बचाने के लिए अनेक मनुष्य महापाप में लगे रहते हैं किन्तु जो मनुष्य

मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है वह तीर्थंकर महावीर की भांति, सेठ सुदर्शन की भाँति, भक्त प्रह्लाद की भाँति द्रव्य और भावहिंसा के विचारों से दूर रहता हुआ अपनी आत्मा को नवीन कर्मों के बंध से मुक्त रखता है। सेठ सुदर्शन को अभया महारानी ने धमकी दी, वें सूली पर चढ़ाये गए, हरिणी वेश्या ने उनको घर में बंद कर दिया, व्यन्तरी ने कपड़ों में आग लगा दी लेकिन सेठ सुदर्शन मृत्यु भय से मुक्त थे, इसलिए उन्होंनें मृत्यु की किसी भी धमकी से डरकर अशुभ कर्म का बंध नहीं किया।

यदि मनुष्य इसका बार-बार चिंतन-मनन करे तो मृत्यु का भय हट सकता है।

मनुष्य कई बार बीमार पड़ता है और हर बार मृत्यु भय से भयभीत होकर अशुभ कर्मों का बंध करता है किन्तु उसको यह याद रखना चाहिए कि रोग असातावेदनीय कर्मों से आता है और मृत्यु का इस कर्म से कोई संबंध नहीं है। चाहे वह कितनी ही बार बीमार पड़े उसे मृत्यु आ नहीं सकती। मृत्यु तभी आयेगी जबकि आयु-कर्म समाप्त होगा। इसलिए रोगों के आने पर मृत्यु के भय से अशुभ चिंतन नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना शत्रु भी हमें मार नहीं सकता, बल्कि कभी-कभी तो शत्रु द्वारा मारने का प्रयत्न हमें लाभ पहुँचा देता है। प्रद्युम्नकुमार को मारने की देवता ने चेष्टा की किन्तु उसको लाभ हुआ। भीम को मारने की दुर्योधन ने कोशिश की किन्तु भीम को लाभ ही हुआ। यदि आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना कोई किसी को मार सकता तो बहुत से निर्दयी लोग भले आदमियों को जीने ही नहीं देते।

रोग, शत्रु, चोर, पशु, पक्षी, शरीर की कमजोरी आदि किसी के द्वारा आयु-कर्म समाप्त हुए बिना जीव मारा नहीं जा सकता। अतः ऐसे मौकों पर आर्तध्यान को छोड़कर शुभ ध्यान में लीन होना चाहिए। कुछ-कुछ ऐसा स्वाध्याय किया जा सकता है–"मौत का मैं भय छोड़ूंगा, अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा" मनुष्य इसमें पूर्ण श्रद्धा रखकर स्वाध्याय व चितन्त-मनन करे तो अभय बनना असम्भव नहीं है।

(4) अराग भावना–परिवार मोह से मुक्ति

मुक्ति प्राप्त करने में परिवार का मोह भी बहुत बाधक होता है, इस संबंध में इस पुस्तक में आगे चिंतन की विशेष सामग्री दी गई है। साधारणतया यह विचार और चिंतन परिवार मोह को घटा सकता है–

अशुभ कर्म जब उदय में आता
कुटुम्ब पराया है बन जाता।
अपना-अपना रह नहीं पाता
अपनों को ही दण्ड दिलाता।।

(5) अलोभ भावना

लोभ सब पापों का मूल है और धन के मोह में संसार के अधिकतम मनुष्य डूबे हुए हैं। झूठ, कपट, ठगी, चोरी, अन्याय, अनीति, मिलावट, दूसरों का शोषण आदि करते हैं किन्तु धन का आना और जाना मनुष्य के हाथ में नहीं है। धन के लिए मनुष्य का रोना बेकार हो जाता है। इसके लिए यह चिंतन किया जा सकता है–"अधिक लोभ से धन आता तो संसार में कोई भी जीव गरीब नहीं रहता।" धन के बाबत संक्षेप में छः बातें याद रखनी चाहिए–1. धन का कमाना मनुष्य के हाथ में नहीं है। यह तो दान, पुण्य, तप, सेवा, परोपकार आदि शुभ कर्मों के करने से आता है। 2. जाने वाले धन को कोई रोक नहीं सकता। 3. धन से सुख मिलना जरूरी नहीं है। 4. बिना धन के भी सातावेदनीय कर्म से सुख मिल सकता है। 5. धन के बिना संसार का कोई कार्य नहीं रुकता। उसके लिए कहीं से भी धन आ ही जाता है। 6. यदि किसी कार्य के करने का योग नहीं हो तो सब सुविधा होते हुए भी कार्य नहीं होता।

(6) अमान भावना

अहंकार भी मोक्ष प्राप्ति में बहुत बाधक है। अहंकार की यह एक विशेषता है कि यह मनुष्य को अपना शिकार बनाकर भी उसे अपने आने का पता ही नहीं चलते देता। बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष भी इसके चक्कर में आ जाते हैं और सोचते हैं कि मैं बहुत ज्ञानी हूँ, उस समय यह नहीं सोच पाते कि मेरा ऐसा सोचना अहंकार है, अज्ञान है, मैं ऐसा सोचता हूँ तो ज्ञानी कहाँ रहा। इसी प्रकार तपस्वी, शीलव्रतधारी, धनवान और परोपकार करने वाले भी अहंकार के शिकार बन जाते हैं। इस अहंकार से उनके धार्मिक कार्यों के फल भी शिथिल पड़ जाते हैं। अहंकार से मोक्ष का मार्ग रुक जाता है। बाहुबलीजी को भी इतना घोर तप करने के बाद भी अहंकार छोड़ने से ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके लिए संक्षेप में इस भावना का चिंतन किया जा सकता है–

मान बड़ाई ईर्ष्या भावे
वह नर मोक्ष में कैसे जावे।

दूसरा चिंतन इस प्रकार किया जा सकता है–

अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है।
बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।।

जीवन की भौतिक बातें

कोई भी जीव किसी भी दूसरे जीव के कर्मों के फल में हेर-फेर नहीं कर सकता। उसे अपने कर्मों का दंड स्वयं को ही किसी-न-किसी रूप में भोगना ही पड़ता है। वह बचना चाहे तो भी उसकी बुद्धि उसके कर्मों के दंड से प्रायः बचने नहीं देती। क्योंकि–

बुद्धि वैसी ही बन जाती
जैसी कर्मों की गति है चाहती।

इस दृष्टि से मनुष्य के जीवन की प्रायः मोटी-मोटी भौतिक घटनाओं का नियंत्रण मनुष्य के कर्मों के हाथ में होता है। कुछ लोग तो बचने की कोशिश ही नहीं करते किन्तु कुछ बड़े-बड़े मनुष्य भी बहुत कम परिवर्तन कर पाते हैं। ये घटनाएँ इस प्रकार हैं–

1. जीव की गति–वह क्या बनेगा देव या पशु या मनुष्य।

2. परिवार–जिन लागों के साथ उसे ये कर्म भोगने हैं, उन लोगों के परिवार में जन्म लेना पड़ता है और यदि उसे परिवार आगे बदलने पड़ेंगे तो उसका भी निर्णय कर्मानुसार निश्चित हो जाता है।

3. आयु–यह नया शरीर कितने समय तक टिकेगा।

4. कुछ छोटी-मोटी बातें–उसके साथी, उसके रहने के स्थान आदि-आदि।

5. विद्या–शिक्षा मिलेगी या कम मिलेगी या नहीं मिलेगी।

6. विवाह–किस परिवार में होगा या वह अविवाहित रहेगा या दीक्षा लेगा या नहीं लेगा आदि-आदि।

7. धंधा–व्यापारी बनेगा या कहीं नौकरी करेगा या मजदूरी करेगा और अपने कर्मों को किस तरह भोगेगा।

8. अमीरी-गरीबी का निर्णय–उसके उपादान में निमित्त से जैसा जितना धन आना है वैसा और उतना ही धन आवेगा और अशुभ कर्मों के योग से जो धन जाना है वह जायेगा।

9. सुख-दुःख—उसे किस प्रकार के सुख-दुःख उसके सातावेदनीय असातावेदनीय और अन्तरायकर्म के उदय के अनुसार मिलेगा।

10. स्थान और साथी—उसे पुद्गल स्पर्शना के अनुसार नियमित स्थानों और साथियों के साथ रहना होगा।

11. रोग और बुढ़ापा—कर्मों के अनुसार जीवन में और बुढ़ापे में क्या-क्या रोग आयेंगे और कब-कब आयेंगे। वे उसके वेदनीय कर्मों के अनुसार उसे भोगने पड़ेंगे।

12. मृत्यु—मृत्यु कब, कैसे और कहाँ होगी। यह भी कर्मों के अनुसार नियत है।

ये बारह बातें प्रायः साधारणतया उसके पूर्वकृत कर्मों के अनुसार होती हैं, किन्तु विशेष शुभ पुरुषार्थ करने से, दान, पुण्य, सेवा आदि से उसके पुराने अशुभ कर्मों के उदय से आये हुए कर्म शिथिल पड़ सकते हैं।

यह याद रखने की बात है कि स्वाध्याय, सेवा, ध्यान, तप, दान, पुण्य और तीव्र चढ़ते हुए परिणामों में महान शक्ति है। इनकी साधना करने वाले मनुष्य को कभी-कभी इनसे उपार्जित होने वाले महान शुभ कर्मों का फल तुरन्त ही मिल जाता है और साधक के जीवन में भारी शुभ परिवर्तन हो सकता है। अतः कर्मों में बहुत ही शक्ति है इसलिए मनुष्य को हमेशा शुभ कर्म ही करने चाहिए और अशुभ किए हैं तो उसका पश्चात्ताप करना चाहिए।

मोह छोडूंगा सिद्ध बनूंगा

मरुदेवी माता	मोह
मुनि गजसुकुमाल	दुःखानुभूति
जम्बूस्वामी	सुखानुभूति
वाहुबलीजी	अहंकार

1. मरुदेवी माता ने मोह छोड़ा, मोह छोड़े वे सिद्ध वने। सव सिद्धों को नमस्कार है, मैं मोह छोडूंगा, सिद्ध वनूंगा।

2. मुनि गजसुकुमाल देह कष्ट में नहीं रोए, वे सिद्ध वने, उन्होंने किसी को दोष नहीं दिया, वे क्रोध से वचे रहे। क्रोध नहीं किया वे सिद्ध

बने, सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं किसी को दोष नहीं दूंगा, क्रोध नहीं करूंगा, मैं दुःख में नहीं रोऊंगा, मैं सिद्ध बनूंगा।

3. जम्बू स्वामी भौतिक सुख में नहीं फूले। नहीं फूले वे सिद्ध बने। सब सिद्धों को नमस्कार है। मैं सुख में नहीं फूलूंगा, मैं सिद्ध बनूंगा।

4. बाहुबलीजी ने अहं छोड़ा, अहं छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है, मैं अहं छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।

5. अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है। अहं छोड़ा वे सिद्ध बने, सब सिद्धों को नमस्कार है।

नोट–परिवार का मोह छोड़ना मुक्ति को देने वाला है, किन्तु जब तक परिवार में रहें तब तक परिवार की सम्यक् सेवा करके परिवार का कर्ज चुकाना मनुष्य का परम धर्म है।

उपर्युक्त भावनाओं में प्रत्येक भावना का दो-दो, तीन-तीन लाख बार पर्यटन अर्थात् स्वाध्याय और चिंतन-मनन करेगा वह किसी दिन सिद्ध पद प्राप्त करेगा।

मंगल भावना

वीर नहीं बचा सके दो संतों को उनके कर्मों के दंड से, कृष्ण नहीं बचा सके यादवों को, उनके कर्मों के दंड से। परिवार किसी को नहीं बचाता, उसके कर्मों के दंड से।

परिवारं मोह से मुक्ति

मनुष्य के सिद्ध पद प्राप्ति में सबसे बाधक है परिवार मोह। इस मोह को ढीला करने का सर्वोत्तम उपाय है स्वाध्याय। अधिक स्वाध्याय करने से परिवार मोह का क्षय होता है।

एक राजा ने एक कैदी से पूछा–"तुम्हारे शरीर में इतना बल है कि तुमने लोह की भारी बेड़ियों को क्षण भर में ही तोड़ दिया तो फिर तुम कैद में इतने महीने कैसे रुके रहे ?" इस पर कैदी ने कहा–"महाराज ! मुझे आपके जेल की छड़ों ने नहीं बाँध रखा था। मैं परिवार मोह की बेड़ियों में बंधा हुआ था। मुझे भय था कि यदि मैं इन बेड़ियों को तोड़कर निकल जाऊंगा तो मेरा परिवार संकट में पड़ जाएगा। आप मेरी जगह उन्हें दंड देंगे। इसलिए जेल की छड़ों को तोड़कर नहीं भागा।"

महाज्ञानी गौतम स्वामी को महावीर स्वामी ने कहा–"हे गौतम ! तुमको मेरे ऊपर प्रशस्त राग है। यही तुम्हारे केवलज्ञान प्राप्ति में बाधक है।

यह राग दूर होने से तुम्हें केवलज्ञान प्राप्त होगा।"

यह राग देव, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी में होता है। इसका कारण यह है कि जीव अनादि अनंतकाल से परिवार राग में बंधा आ रहा है और साथ-साथ रहने से और उपादान निमित्त बनकर एक दूसरे का सहयोग देने से यह दृढ़ होता जाता है। इस राग को अधिक स्वाध्याय और कथाओं का चिंतन-मनन करके दूर किया जा सकता है।

यह भ्रम है कि परिवार हमारा है। यदि परिवार हमारा होता तो मोक्ष में भी तो वह बना रहता। अतः इस भ्रम को दूर करने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिए–1. परिवार हमें कर्मदंड से नहीं बचा सकता। 2. परिवार इस जन्म में भी हमेशा हमारा साथी नहीं रहता। 3. उपादान निमित्त संबंध समाप्त होते ही पारिवारिक संबंध समाप्त हो जाता है। कुन्ती ने कर्ण को जन्मते ही दूर कर दिया। शकुन्तला को उसकी माता ने जन्मते ही जंगल में छोड़ दिया–"कर्ज पुराना पड़ा हुआ है इसीलिए परिवार बना है।"

उपर्युक्त तीन विचारों का इन तीन भावनाओं का वर्षों तक हमेशा स्वाध्याय करने से परिवार मोह का डोरा टूट जाता है।

परिवार का हमारे ऊपर कुछ कर्जा भी हो सकता है। उसको चुकाने के लिए परिवार की सम्यक् धार्मिक सेवा करनी चाहिए और यह भावना भी हमेशा भानी चाहिए कि मेरे परिवार वाले स्वस्थ हों, सुखी हों, धर्मात्मा बनें, वे सिद्ध बनें, परिवार की शुद्ध सेवा करनी चाहिए। इससे परिवार के प्रति घृणा पैदा नहीं होती। परिवार का मोह टूटने से मरुदेवी माता की तरह मनुष्य सिद्ध पद प्राप्त करता है।

आत्मा भावना भी परिवार मोह को हटाती है। अतः यह भावना भ भायी जा सकती है कि–"मैं ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा का, मुझ आत्मा वे सिवाय और कुछ भी मेरा नहीं है। शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नहीं हैं परिवार मोह छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।"

मृत्यु भय और अभय भावना

मृत्यु भय और शरीर की चिंता से मुक्त होने वाला सिद्ध पद पाने का अधिकारी बनता है।

जब तक जीव का आयु-कर्म समाप्त नहीं होता, तब तक उसे मौत नहीं आ सकती, चाहे वह कई बार कई बीमारियों से एक साथ ही घिर क्यों न जावे, चाहे उसका शरीर कमजोर हो या उसको अधिक काम करना पड़े

और स्नान न मिले, भले उसे दूध, जल और भौतिक पदार्थ [illegible] रहे मरणांत म.ज. भोजन भी पूरे मास में नहीं मिले। आदिनाथ भगवान बाहुबलीजी एक-एक वर्ष निराहार रहे। आज के मनुष्य भी दो-दो, तीन-तीन वर्ष तक एक-एक महीने में पाँच-पाँच पंचोले का तप करते हुए भी जीवित और स्वस्थ रह जाते हैं।

यदि मनुष्य को परिवार का सहयोग नहीं मिले, सेवा करने वाला नहीं मिले, चाहे उसे अकेला ही रहना पड़े तो भी शरीर का कुछ नहीं बिगड़ता। शत्रु द्वारा की हुई उसे मारे जाने की योजना भी सफल नहीं होती जब तक कि मनुष्य का आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता। पाण्डव, भीम, प्रद्युम्नकुमार भक्त प्रह्लाद, सेठ सुदर्शन आदि को मारने की योजनाएँ सफल नहीं हुई क्योंकि उनका आयु-कर्म समाप्त नहीं हुआ था। परिवार का षड्यंत्र, धन की हानि, मान की हानि और मनुष्य को मिलने वाली अनेक असफलताएँ मनुष्य को नहीं मार सकती जब तक आयु-कर्म समाप्त नहीं हो जाता।

मनुष्य को मौत के भय से बचने के लिए चिंतन-मनन करना चाहिए जिससे अंतिम समय में वह सद्भावनाओं के साथ मरता हुआ दुर्गति में नहीं जावे और सम्भव हो तो भावना पूर्वक संथारा भी ले सके।

चिंतन में प्रथम स्थान कर्म सिद्धांत को देना चाहिए, असातावेदनीय और अन्तरायकर्म दोनों ही आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना मौत को नहीं ला सकते, मनुष्य को अपने पहाड़ के समान दुःख को भी रेत के समान तुच्छ मानना चाहिए। अभय भावना की साधन से दुर्भावनाओं और हिंसा आदि पापों से बचा जा सकता है, इससे शरीर का मोह छूटता है और सभी चिंताएं दूर होती हैं।

"जवाहर विचार सार" में आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने तीन बातें बताई हैं–प्रथम परमात्मा का ध्यान, दूसरा अपने मन में दुःखियों और जीव मात्र के लिए दया भावना रखना और तीसरा यथाशक्ति प्राणीमात्र की सम्यक् सेवा में अपने शरीर को लीन रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चिंता और अनुकम्पा में जमीन आसमान का अन्तर है। जहाँ दूसरे मनुष्य पर ममता है उसके लिए चिंता करना चिंता और मोह है किन्तु जहाँ पर दूसरे जीव को आत्मा केवल आत्मा ही समझा जाता है उसके लिए चिंता करना चिंता और मोह नहीं बल्कि अनुकम्पा है, चिंता ज्वाला है, अनुकम्पा शीतल जल है, चिंता जहर है, अनुकम्पा अमृत है जो मनुष्य को अमर, आनन्दघन और अभय बनाता है और मोक्ष पहुंचाता है।

पंचभिः सह गन्तव्यं, स्थांतव्यं पंचभि सह।
पंचभिः सह वक्तव्यं, न दुःखं पंचभि सह।।

अर्थात् पाँच आदमियों के साथ जाना चाहिए, पाँच आदमियों के साथ रहना चाहिए, पाँच आदमियों के साथ बातचीत करनी चाहिए, पाँच आदमियों के साथ से कोई दुःख नहीं होता, पाँच आदमियों की राय परमेश्वर की राय मानी जाती है, पाँच आदमियों की राय लेकर काम करने से हानि नहीं होती। व्यक्ति दुःख से बच जाता है और अहंकार अवश्य ही घटता है।

अमृतवाणी

ये दो कविताएँ बच्चों को याद कराइये और कभी-कभी सुनते रहिए–

1. "सच बोलूंगा सच बोलूंगा,
निश्चय ही मैं सच बोलूंगा।
चाहे मेरा सिर कट जावे,
झूठ कभी भी नहीं बोलूंगा।"

2. "चोरी से मैं दूर रहूँगा,
चोरी से मैं बचा रहूँगा।
माता ने चोरी सिखलाई,
बेटे को फाँसी दिलवाई।"

3. माता-पिता और बड़ों की सेवा करने वाला,
भाग्यवान महापुण्यवान बनता है।

4. जिस घर में प्रेम और सहयोग रहता है उस घर में लक्ष्मी आती है तथा फूट व कलह से लक्ष्मी चली जाती है।

5. दान पुण्य और सेवा महान धर्म है इससे कभी-कभी इसी जन्म में धन और सुख की प्राप्ति हो सकती है।

6. दूसरों के प्रति दुर्भावना रखने वाला, ठगी और चोरी आदि द्वारा दूसरे को बरबाद करने वाला कभी-न-कभी स्वयं दुःखी व बरबाद हो जाता है।

7. संसार में दूसरों का बुरा चाहने और बुरा करने से बढ़कर कोई पाप नहीं है और दूसरों का भला चाहने और उनका भला करने और उन पर अनुकम्पा करने से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

हम क्या करें

मोक्षार्थी को यह समझ लेना चाहिए कि विचारों और भावनाओं में महान शक्ति है और शुभ विचार करके हम आसानी से मोक्ष पहुँच सकते हैं। मनुष्य जितनी बार कोई विचार करता है उतनी ही बार वह शुभ या अशुभ विचारों का बंध या क्षय कर लेता है।

एक मनुष्य बीस दिन तक दिन में पाँच-पाँच बार किसी मनुष्य की हत्या करने का विचार करता है तो वह उस मनुष्य को यदि नहीं मारे तो भी एक सौ बार हत्या करने के विचारों से आने वाले अशुभ कर्मों का बंध कर लेता है। यदि एक मनुष्य किसी दूसरे दुःखी मनुष्य को सांत्वना देने या धैर्य बंधाने या मदद देने का विचार करता है तो यदि वह उसे मदद नहीं दे सके तो भी इस विचार से आने वाले शुभ कर्मों का उपार्जन करता है और यदि उसकी भावना अति तीव्र हो तो वह क्षणभर में अनेक वर्षों के अशुभ कर्मों का क्षय कर लेता है और केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अनेक मकान बनाने के विचारों का या हिंसक कारखानों का या महाआरंभ या पाप के कार्यों का विचार करता है तो वह कुछ भी नहीं करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की तरह या कालसौरिक कसाई की तरह महापाप के अशुभ कर्मों का बंध कर लेता है। प्रसन्नचंद्र मुनि ने क्षणभर में सातवीं नरक में ले जाने वाले कर्मों का उपार्जन किया और विचारधारा बदलने से केवल पश्चात्ताप द्वारा उन सभी कर्मों को क्षणभर में नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

आपको जितना अधिक-से-अधिक समय मिले उस समय में इस भावना का स्वाध्याय अर्थात् पर्यटन और चिंतन करें—"सिद्ध भगवान हैं, वे अशरीरी हैं, वे अतिसूक्ष्म हैं, वे दिखाई नहीं देते, वे ज्ञानस्वरूप हैं, वे ज्ञान के भण्डार हैं, वे सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल अवगाहना प्राप्त करके, आनन्दघन बनकर विराजे हुए हैं। उनको, उन सब सिद्धों को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है। णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं।

इस विचार का या भावना का हमेशा अधिकाधिक चिंतन करने वाला अपने पापों का क्षय करता है और वह अंत समय में यदि इसी ध्यान में जमा रहकर मरण प्राप्त करता है तो वह इसी जन्म में या भविष्य में कभी-न-कभी अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा।

मधु बिन्दु

1. परिवार या अपनों का कर्ज उतरा, वे अलग हुए, अलग हुए, इस भावना के बार-बार चिंतन से मोह नष्ट होने लगता है।

2. शरीर अलग है, मैं अलग हूँ, शरीर नाशवान है, मेरा नहीं है, मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा" इस भावना के बार-बार चिंतन करने से शरीर मोह नष्ट होता है। इसका विशेष विवरण 'ध्यान एक अनुशीलन' नामक पुस्तक में मिलेगा।

अहं से मुक्ति

"अहं को छोड़ो, विनय को धारो, सिद्ध बनोगे"
अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है,
बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।
अकड़ न करना, झुककर रहना, सुख पाओगे।
रावण अकड़ा, कौरव अकड़े, सुख नहीं पाये।।
भौतिक शक्ति है बहुत ही थोड़ी।
देह कष्ट से पता है चलता।।
कर्म दण्ड से बच नहीं सकता।
जो चाहता सो कर नहीं सकता।। टेर।। अहम्...........
ज्ञान है थोड़ा, बहुत ही थोड़ा।
जीवन में यह उतर न पाया।।
मन में भारी अहं भरा है।
ऊँचा-ऊँचा उछल रहा है।। अहम्...........
अहं में मानव भूल है करता।
भले बुरे का ज्ञान न रहता।।
अहं बुद्धि विपरीत बनाता।
बड़ों-बड़ों को अहं गिराता।। अहम्...........
बड़ा स्वयं को नहीं समझता।
गुरुजनों का विनय जो करता।।
उनकी आज्ञा पालन करता।
वही किसी दिन सिद्ध है बनता।। अहम्...........

मोक्ष मार्ग का पथिक

कषाय मुक्ति : ग्यारहवां भाग

1. कषाय मुक्ति

दया भावना मन में रखता।
सेवा करता वह सिद्ध बनता।।
पश्चात्ताप से पाप है कटता।
सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता।।1।।

चोरी हत्या महापापों को।
प्रहारी ने पाँच मास में।।
पश्चात्ताप अरु प्रभु भजन से।
काट-काट कर सिद्ध पद पाया।।2।।

क्रोधी मरकर सर्प है बनता।
अभिमानी मुर्गा है बनता।।
माया कपट से औरत बनता।
लोभी मृगा लोढ़ा बनता।।3।।

खोट मिलाता, चोरी करता।
झूठ बोलता, धोखा देता।।
साहू बन धन लूट मचाता।
अति लोभी दुर्गति में जाता।।4।।

आत्म ध्यान से मोह है हटता।
हिंसा पाप लगने से बचता।।
दान जो देता वह सुख पाता।
विनयवान भगवान है बनता।।5।।

माता-पिता की सेवा करता।
देवलोक में देव वह बनता।।

अहं छोड़ता वह सिद्ध बनता।
कषाय मुक्त है सिद्ध पद पाता।।6।।

2. सिद्धों का अरूपी ध्यान

(क) "णमो सिद्धाणं, णमो सिद्धाणं। सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।"

सिद्धों के अरूपी ध्यान का यह बहुत ही सरल और साधारण सूत्र है। इसको इस प्रकार भी किया जा सकता है–"णमो सिद्धाणं" या "नमस्कार है सब सिद्धों को" या "सब सिद्धों को नमस्कार है।"

इस ध्यान को करते समय जो आत्माएँ सिद्ध बनी हैं उनको याद करके, उनका नाम लेकर, उनके आत्म प्रदेशों को लोक के अग्रभाग में, अटल अवगाहना में होने की कल्पना करके यह कहना चाहिए–'सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।' इस समय उनके अरूपी शरीर की लोक के अग्रभाग में होने की कल्पना करनी चाहिए। 'मैं नमस्कार करता हूँ।' इन शब्दों को बोलते समय हाथ जोड़कर, शीश झुकाकर वंदन करना चाहिए जिससे मन की एकाग्रता हो सके। मन इधर-उधर नहीं दौड़े।

(ख) इस ध्यान को करते समय जो मनुष्य सिद्ध बने हैं, उनके नाम को याद करके, उनके अरूपी होने की कल्पना करके उनको हाथ जोड़ना चाहिए, तथा गुणगान करना चाहिए। सभी तीर्थंकर सिद्ध बने हैं। आदिनाथ भगवान के परिवार के प्रायः सभी सदस्य सिद्ध बने हैं। स्कन्धकाचार्य के पाँच सौ शिष्य सिद्ध बने हैं। दान देने वाले सुमुख गाथापति, धन्नाजी चन्दनबाला, शील पालने वाले विजय सेठ, विजया सेठानी, सेठ सुदर्शन तपस्या करने वाली काली, महाकाली, सुकाली आदि की तपस्या को याद करके समता विभूति गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली मुनि स्कन्दक आदि पश्चात्ताप करने वाले, प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्डरुद्राचार्य आदि की मुख्य घटनाओं को याद करके इन सबको शीश झुकाकर नमस्कार करना चाहिए। यह भावना रखनी चाहिए कि सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ, वंदन करता हूँ। इस प्रकार का सिद्धों का ध्यान मनुष्य को मोक्ष का अधिकारी बनाता है। सिद्धों का ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है–"सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान।

आत्म द्रव्य है, अति सूक्ष्म है, अगम अगोचर अजर अमर है।
वे सर्वज्ञ हैं, शक्तिमान हैं, आनन्दघन हैं, निराकारा हैं।।
सब सिद्धों को नमस्कार है।"

(ग) समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म. सा. सिद्धों के अरूपी ध्यान पर बहुत जोर देते हैं। इस ध्यान से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसा कि नमस्कार मंत्र में बताया गया है। दृढ़ प्रहारी तो प्रभु का भजन करने से चार मोटी हत्याओं के पाप से न्यारा हो गया था। जो जैसा विचार करता है, वह वैसा ही बन जाता है। फिर सिद्धों का ध्यान करने वाला यदि सिद्ध बन जावे तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

आचार्य भगवन् ने समीक्षण ध्यान के अन्दर "मैं सिद्ध बनूंगा" इस भावना पर बहुत जोर दिया है। इसका स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है-"मैं भीतर हूँ, मैं भीतर हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। सिद्ध लोक में, सिद्ध दशा में, अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा। आनन्दघन और अभय बनूंगा।

'सब सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ और मैं सिद्ध बनूंगा।'

सिद्धों के आठ गुणों का, पन्द्रह भेदों का, अटल अवगाहना का, अमूर्त भाव आदि का चिंतन करते हुए चित्त को एकाग्र करना चाहिए। इन भावनाओं का हजारों, लाखों बार जाप और चिंतन-मनन करना चाहिए। यह सामायिक या बिना सामायिक भी, सोते हुए या बैठे हुए, कहीं भी, कभी भी किया जा सकता है।

2. (क) सिद्धों के ध्यान के अलावा आत्म भावना भी केवलज्ञान प्राप्ति की साधना है। वह इस प्रकार भायी जा सकती है-

आत्मा हूँ मैं, देह नहीं हूँ,
मैं अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।
मैं अवद्य हूँ, मैं अदाह्य हूँ,
अजर, अमर हूँ, शाश्वत हूँ।।
ज्योतिपुंज हूँ, ज्ञान रूप हूँ
मैं चेतन हूँ, जीवन हूँ।
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ,
आत्मा हूँ, मैं चेतन हूँ।।

(ख) शरीर अलग है, मैं आत्मा अलग हूँ। शरीर नाशवान है, यह मेरा नहीं है। मैं आत्मा हूँ, मैं सिद्ध बनूंगा। मैं ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय मुझ आत्मा का और कुछ भी नहीं है। शरीर, परिवार, धन ये मेरे नहीं हैं।

3. समीक्षण ध्यान

मोह छोड़ो परिवार का	सिद्धों का ध्यान और गुणगान
मैं सिद्ध बनूंगा	सब सिद्ध बनें

(क) आत्मा की मुक्ति कषाय छोड़ने से ही हो सकती है। कषाय उत्पत्ति का मूल मोह, ममत्व भावना है। मोहनीय कर्म सब कर्मों का राजा है। इसको जीत लेने वाला निश्चय ही सिद्ध पद प्राप्त करता है। मोह कई प्रकार का है परन्तु परिवार का मोह शायद सबसे अधिक प्रबल है। अतः इसको जीतने का अचूक उपाय स्वाध्याय है।

(ख) 'मोह छोड़ूंगा परिवार का' इस पाठ का कुछ उदाहरणों के साथ चिंतन-मनन करना और प्रतिदिन काफी समय तक स्वाध्याय करना आवश्यक है। यह मोह अनादिकाल से हमारे साथ लगा हुआ है। अतः इसको हटाने के लिए हजारों लाखों बार स्वाध्याय करना जरूरी है।

(ग) मोह में मनुष्य तीन बातों का विचार करता है–1. परिवार मेरा है। 2. यह हमेशा मेरे साथ रहने वाला है। 3. यह हमेशा मेरी मदद करेगा। ये तीनों विचार ही भ्रमात्मक है और अज्ञान से भरे हुए हैं। सभी आत्माएँ अलग-अलग हैं। किसी का किसी के साथ स्थायी संबंध नहीं है। अगर आत्माओं का इस संसार में स्थायी संबंध होता तो वह संबंध मोक्ष में भी रहता, किन्तु ऐसा नहीं है।

दूसरा विचार है कि परिवार हमेशा मेरे साथ रहने वाला है। यह एक भ्रम है। जब तक साथ रहने के लिए कर्मों की स्वीकृति है और उपादान-निमित्त संबंध बना हुआ है तभी तक परिवार साथ रह सकता है। उपादान-निमित्त संबंध समाप्त होते ही सभी प्रकार के पारिवारिक संबंध समाप्त हो जाते हैं। कर्ण, करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहां आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। विभीषण ने रावण को मरवाया, सुग्रीव ने बालि को मरवाया। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को कैद किया। कौणिक ने अपने पिता श्रेणिक को कैद किया। कौरव-पाण्डव चचेरे भाई ही थे।

तीसरा विचार है क़ि परिवार से मदद मिलती है किन्तु कोई भी सहायता कर्मों की स्वीकृति के बिना नहीं मिलती। अन्तराय कर्म और असातावेदनीय कर्म उदय में आकर परिवार को दूर हटा देते हैं। जब कर्म

जीव को नाच नचाता है उस समय यह परिवार को शत्रु बनाकर मनुष्य की हत्या तक करवा देता है।

(घ) परिवार मोह से एक भयंकर हानि हो सकती है। परिवार मोह में मरने वाला जीव महेशदत्त के माता और पिता की तरह कुतिया एवं पाडा (भैंस का बछड़ा) बन सकते हैं। वे बिल्ली, चूहा, कौआ आदि तिर्यंच बनकर वहीं चक्कर लगाते हैं किन्तु परिवार मोह को बिलकुल छोड़ देने वाले मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। अतः 'मोह छोड़ूंगा परिवार का' इस भावना का लाखों करोड़ों बार जप और चिंतन-मनन करना प्रत्येक प्राणी के लिए लाभदायक है।

(ङ) परिवार मोह छोड़ने का अर्थ यह नहीं है कि परिवार को छोड़ दिया जाय। जब तक मनुष्य परिवार में रहता है तब तक उसे परिवार की सरल और निःस्वार्थ भाव से सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

(च) 'मैं सिद्ध बनूंगा' इस भावना को जपने वाला और इस संकल्प को दृढ़ बनाने वाला कभी-न-कभी अवश्य ही सिद्ध बनता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो जैसा विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है। 'सब सिद्ध बनें' इस भावना का जाप करने वाला अपनी मंगल भावना से स्वयं मंगल रूप बन जाता है। ऐसा साधक दुर्भावनाओं से, दूसरों के प्रति अनिष्ट चिंतन से, द्वेष और क्रोध भाव से और अनेक प्रकार के अवगुणों से बच जाता है और वीतराग दशा प्राप्त करता है।

4. समता आचरण

परिवार मोह छोड़ंगा सिद्ध बनूंगा	रो मत दुःख दर्द में	फूल मत सुख व मनोरंजन में	अहं छोड़ो

(क) 'परिवार का मोह छोड़ूंगा' महेशदत्त की माता परिवार मोह के कारण कुतिया बनी व पिता भैंसा बने। नन्दन मणिहार मेंढ़क बना। एक राजा अपनी रानियों के मोह के कारण मरकर उन रानियों के मल-मूत्र के कुण्ड में लाल रंग का कीड़ा बना। चक्रवर्ती की पटरानी मोह के कारण पति वियोग में छः महीने विलाप करती हुई छठे नरक में गई। "मैं परिवार छोड़ूंगा व सिद्ध बनूंगा।" परिवार मोह छोड़ने से मरुदेवी माता सिद्ध बनी।

परिवार मोह से होने वाली हानियों का और परिवार मोह छोड़ने से होने वाले लाभ का बार-बार चिंतन-मनन करने से परिवार मोह छूट जाता है।

(ख) परिवार मोह छोड़ने की जरूरत है। परिवार को या परिवार की सम्यक् सेवा को छोड़ने की जरूरत नहीं है। परिवार के स्वस्थ, सुखी व सिद्ध बनने की कामना करना और परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

(ग) 'रो मत दुःख दर्द में' इस शरीर की रक्षा करना मेरे हाथ में नहीं है। इसकी रक्षा होना या विनाश होना मेरे उन कर्मों के हाथ में है जिन्होंने अपना फल भोगने के लिए मुझे यह शरीर दिया। शरीर के कष्ट और अन्य किसी दुःख के समय दुःखानुभूति, आर्तध्यान, क्रोध, द्वेष और दुर्भावना से बचने के लिए—(अ) कर्म सिद्धांत (ब) आत्म भावना या आत्म ध्यान (स) समीक्षण ध्यान (द) श्री जवाहराचार्य की तीन बातें 'राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन' ध्यान में रखने से मनुष्य को दुःख में दुःखानुभूति नहीं होती और वह समता भाव धारण करके कर्मों को काटता हुआ सिद्ध पद का अधिकारी बनता है।

कर्म सिद्धांत इस प्रकार है—यह दुःख, दुःख नहीं है। यह मेरे कर्मों का फल है। इसे भोगना ही पड़ेगा। इससे आत्मा का कुछ पतन नहीं होता है। इससे आत्मा का लाभ होता है, कर्म कटते हैं। आत्मा मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ती है। यह पुद्गल स्पर्शना है। यह टल नहीं सकती। मैं किसी को दोष नहीं दूंगा। तब मुझे क्रोध नहीं आएगा। इस प्रकार मैं द्वेष भावना से बच जाऊंगा। शरीर का मोह भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाएगा। मुनि गजसुकुमाल दुःख में नहीं रोए, वे सिद्ध बने।

(घ) 'फूल मत मनोरंजन में' आत्म भावना, सिद्धों का ध्यान, अनुकम्पा भावना आदि आत्मा का स्वाध्याय है। मनुष्य अपनी पाँचों इन्द्रियों के सुख के लिए मनोरंजन करता हुआ भारी अशुभ कर्मों का बंध करता है। शत्रु को तथा किसी दूसरे को दुःख में देखकर खुश होता हुआ बहुत बड़े अशुभ कर्मों का बंध करता है। इस बात को याद रखिए—'फूल मत भौतिक सुख में, मनोरंजन में और दूसरे को दुःख में देखकर।' भौतिक सुखों के समय भी कर्म सिद्धांत में, आत्म भावना में, समीक्षण ध्यान में और श्री जवाहराचार्य की तीन बातों में लीन होता हुआ सुखानुभूति से बचकर अशुभ कर्मों के बंध से बच सकता है। जम्बू स्वामी भौतिक सुख में नहीं फूले, वे सिद्ध बने।

(ड़) 'बाहुबलीजी ने अहं छोड़ा, वे सिद्ध बने।' अहं छोड़ने के लिए "बड़ा मत समझो स्वयं को–तप में, ज्ञान में, धन में, दान में और धार्मिक बातों में।" अहंकार से बहुत बड़े-बड़े लोगों और महात्माओं का पतन हुआ है। इससे शुभ कर्मों का फल मिलना रुक जाता है। अहं छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। 'अहं बम है, यह महा विस्फोटक है।'

(च) इन चारों भावनाओं का कोटिशः चिंतन करने से अवश्य लाभ होगा। यह भौतिक सुख मीठे जहर के समान है, किम्पाक फल के समान है, जो देखने और खाने में तो अच्छा लगता है किन्तु खाने वाले की मृत्यु का कारण बनता है।

5. क्रिया और भावना

मनुष्य जो भी करता है उसके मूल में या उसे कराने वाली जो भावना होती है, उसी शुभ या अशुभ भावना के अनुसार उसे शुभ या अशुभ फल मिलता है। क्योंकि बिना विचार या भावना के कोई काम नहीं होता। अतः अशुभ विचार से किसी भी क्रिया का फल, दान या सेवा का फल भी अशुभ हो जाता है। अतः साधु, परिवार या शत्रु की सेवा करने वाला या किसी को कुछ देने वाला अपनी भावना के अनुसार शुभ या अशुभ कर्म बांधता है। अतः परिवार की भावना में भी मोह छोड़कर परिवार वालों को केवल आत्मा समझकर अनुकम्पा भाव से सेवा करने वाला ही कर्म निर्जरा और पुण्य का अधिकारी बन सकता है। जो व्यक्ति दुर्भावना से, अपने मन में दुःख करता हुआ जो भी कार्य करता है वह अशुभ कर्म उपार्जित करता है। अतः प्रत्येक कार्य अनुकम्पा भाव से करना चाहिए।

6. क्रिया का फल

(क) भारतवर्ष के बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने चीन देश के सम्राट बुश से कहा–"राजन् ! तुम कहते हो कि मैंने हजारों धार्मिक स्थान बनवाये। धर्म का खूब प्रचार किया, ग्रंथ लिखवाये। धर्म पर खूब पैसा खर्च किया, लेकिन तुमने यह सब काम प्रसिद्धि की भूख, कीर्ति का लोभ होने के कारण किये। इससे तुम्हारा नाम फैला। तुम्हारे अहंकार की तुष्टि हुई। इससे ज्यादा तुम्हें कुछ मिलना नहीं है। अहंकार से खर्च किए हुए धन से मोक्ष नहीं मिलता।

(ख) साधु सुपात्र होता है फिर भी भगवान महावीर को शुद्ध भावना के बिना दिए हुए दान से पूर्ण सेठ को महापुण्य की प्राप्ति नहीं हुई तथा

दान की भावना रखने वाले जीर्ण सेठ को भगवान महावीर को दान देने का अवसर नहीं मिलने पर भी केवल भावना से ही पुण्य की प्राप्ति हुई।

(ग) अनुकम्पा से किए हुए काम दान, धर्म तथा सेवा आदि का फल सबसे श्रेष्ठ, महापुण्य को देने वाला और मोक्ष प्राप्ति का साधन भी हो सकता है। अपंग, बीमार, लंगड़ा, अंधा आदि की सेवा की जाय, वह अनुकम्पा है।

(घ) दूसरों को शिक्षा देना, जीविकोपार्जन के योग्य बनाना, मोक्ष मार्ग पर चलाना आदि महान सेवाएँ हैं। परिवार वालों का भी मोह छोड़कर निःस्वार्थ केवल आत्मा समझकर उनकी सेवा करना महापुण्य को देने वाला है। परिवार में रहता हुआ परिवार की सेवा नहीं करने वाला महान पाप का उपार्जन करता है। जिसके ऊपर परिवार का भार है, उस भार को नहीं निभाने वाला और परिवार को असहाय छोड़ने वाला अशुभ कर्म और पाप का उपार्जन करता है।

(ङ) भौतिक कामों में सौदा पटने पर दलाली मिलती है किन्तु आध्यात्मिक कामों में सौदा पटे या नहीं पटे, भावना के कारण दलाली तो मिल ही जाती है।

7. आशीर्वाद और श्राप

साधारण मनुष्यों का यह भ्रम है कि दूसरों का दिया हुआ आशीर्वाद और श्राप भला और बुरा कर सकता है। लेकिन आशीर्वाद या श्राप से किसी का भला या बुरा नहीं हो सकता। मनुष्य के जिस भले या बुरे काम करने पर उसको श्राप या आशीर्वाद मिलता है, उस भले या बुरे काम के गुप्त अदृश्य फल के कारण ही मनुष्य का भला या बुरा होता है। आशीर्वाद या श्राप से जिसको वह दिया जाता है उसको लाभ या हानि नहीं होती किन्तु श्राप या आशीर्वाद तो देने वाले का ही बुरा या भला कर सकता है। बच्चों की गालियों से और अपराधियों के श्राप से अध्यापकों या सिपाहियों का कुछ नहीं बिगड़ता। धनवानों या शक्तिशाली पुरुषों के बल से प्रभावित होकर उनको जो आशीर्वाद दिया जाता है, उस आशीर्वाद से राजाओं, जमींदारों या आतंक फैलाने वाले पुरुषों का भला नहीं हो सकता।

शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ सेवा करते हुए पुण्य कमाओ। पूर्वजन्म के या इस जन्म के पुण्य से विद्या और धन आते हैं। पुण्य के बिना शिक्षा और धन प्राप्त नहीं हो सकते। भगवान महावीर का स्पष्ट उपदेश है कि–

किया स्वयं का स्वयं ही पाता।
पर का दिया कुछ काम न आता।।

8. दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता

जब मनुष्य अपने परिवार, पड़ोसी, शत्रु, भिखारी या किसी संस्था को कुछ सहयोग देता है तो उस दाता को अपनी भावना के अनुसार सुख या दुःख के रूप में उस दिए हुए (दान) का बदला अवश्य मिलता है। वह बदला, यदि जिसे दिया गया है, उससे नहीं मिले तो किसी अन्य निमित्त से मिल जाता है और कभी-कभी प्रकृति से या उसके अपने शुभ कर्मों की सहायता से अपने-आप ही मिल जाता है। प्रह्लाद, प्रद्युम्नकुमार, भीम, पाण्डव आदि को उनके किए हुए पुण्य के प्रभाव से सुख ही मिला तथा उनकी रक्षा हुई। सेठ सुदर्शन बिना किसी रक्षक की सहायता के अर्जुनमाली के मुद्गर से बच गया। दूसरों का भला करने वाला मनुष्य अपने शुभ कर्मों के प्रभाव से करोड़पति के घर जन्म लेकर या वसीयत से या गोद लेने से धनवान बन जाता है। शुभ कर्मों से मनुष्य को स्वस्थ शरीर, सहायक मित्र, ऊँचा पद व सुखी जीवन आदि भौतिक व आध्यात्मिक ऐश्वर्य मिलता है। दूसरों को दुःख देने वाले तथा अशुभ कर्म करने वाले रावण को, बाली को और कौरवों को दुःख ही मिला। अभय रानी, हिटलर आदि ने आत्महत्या कर ली। पापी मनुष्य अपने अशुभ कर्मों के कारण रोगी और विकलांग शरीर पाता है। वह जल में डूब सकता है, अग्नि में जल सकता है। वह हमेशा शत्रुओं से घिरा रहता है तथा दुःख ही पाता है। इसलिए कहा गया है कि–"दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता।" उसका बदला सुख या दुःख के रूप में अवश्य मिलता है।

किसी से लिया हुआ भी मुफ्त में नहीं मिलता है, उसका बदला अवश्य चुकाना पड़ता है। इस बदले में निमित्त की प्रधानता नहीं रहती। निमित्त के बिना भी उपादान की किस्मत में जो लिखा होता है, वह उसे अवश्य मिलता है। जैसे कबूतर आदि पक्षियों को चुगने के लिए अनाज डाला जाता है और घर से निकाली हुई गायों को खाने के लिए घास डाला जाता है। उसका फल भी हमें अन्य रूप में मिलता है। प्रायः दूसरे निमित्तों से और दूसरे ही रूप में तथा कभी-कभी इसी जन्म में और कभी भविष्य के जन्मों में मिलता है। वे फल पाने की दृष्टि से उपादान ही बनते हैं। इसमें निमित्तों का विशेष महत्त्व नहीं रहता। उपादान ही प्रधान होता है।

अर्थात् किसी को कुछ दिया जाए तो उस दान का शुभ फल दान दाता को मिलता है। निमित्त चाहे कोई बने।

परिवार के संबंध में भी लोगों को यह भ्रम है कि परिवार वालों को दिए हुए का बदला नहीं मिलता। यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिए कि परिवार तो सिर्फ उपादानों या निमित्तों का ही संजोग है। परिवार में किसी को कुछ दिया जाता है या किसी से कुछ लिया जाता है, उसका रत्ती-रत्ती का हिसाब स्वयं चालित कर्म पुद्गलों पर स्वयं ही अंकित हो जाता है। उन्हीं की शक्ति से बदला देने लेने का काम इस जन्म में या अगले जन्मों में पूर्ण होता है। मुनि गजसुकुमाल को, उनके सिर पर अंगारे रखे जाकर निन्यानवे लाख जन्म या भव पहले का बदला जो कर्म पुद्गलों पर अंकित था, वह मिला। परिवार में हरेक सदस्य अपने-अपने कर्मों का फल भोगता है। वहाँ मुफ्त में लेने देने का काम तो हो ही नहीं सकता।

किसी कार्य के बदले सुख या दुःख मिलेगा और वह कितनी मात्रा में मिलेगा इसका निर्णय कभी भी भूल नहीं करने वाले कर्मों द्वारा भाव तराजू पर तुलकर कर्म पुद्गलों पर अंकित होता है। इसमें कभी भूल हो ही नहीं सकती। इसमें मनुष्य अपने परिवार की सहायता भी न्यूनाधिक मात्रा में नहीं कर सकता। वास्तव में तो कोई किसी को न कुछ दे सकता है और न कुछ ले सकता है। वह उपादान को देने में केवल निमित्त ही बनता है। इसलिए किसी को सहायता देकर अंहकार व कीर्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिए और परिवार को सहायता देते समय उसे वेगार या दबाव समझकर मन में आर्तध्यान नहीं करना चाहिए। इससे कर्मों का शुभ फल क्षीण या नष्ट हो जाता है तथा अशुभ कर्मो का वंध हो जाता है। सहायता देते समय उसे अनुकम्पा भाव रखना चाहिए और मन में यह विचारते रहना चाहिए कि यह मेरा अहोभाग्य है कि मुझे अनुकम्पा भाव से परिवार की सेवा करने का मौका मिला है। इससे मैं सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी वन रहा हूँ। अनुमोदना करने से शुभ-फल वढ जाता है और पश्चात्ताप करने से शुभ और अशुभ दोनों ही क्षीण या नष्ट हो जाते हैं। अहं भाव और कीर्ति का मैल पश्चात्ताप रूपी सावुन से धो देना चाहिए। हिंसक भावना, कपट और आर्तध्यान का जहर दान या सेवा में नहीं सम्मिलित होने देना चाहिए। शुभ कर्मो का अमृत अनुकम्पा रूपी स्वर्ण पात्र में सुरक्षित रखना चाहिए। यही मोक्ष का मार्ग है।

स्वास्थ्य चर्चा

स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को इन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिएं–

भोजन का प्रत्येक ग्रास (कवा) छोटा हो, उसको गिन-गिन कर बत्तीस बार चबा करके खाना चाहिए। सूर्य का प्रकाश रहते हुए (छिपने से पहले) किया हुआ भोजन लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद होता है। अधिक चटपटा, खट्टा भोजन स्वास्थ्य खराब करता है। तली हुई चीजें जैसे--पूड़ी, कचौरी, पकौड़ी, मिठाइयाँ आदि पेट को खराब करती हैं। जिनको दूध से गैस बनती हो वह थोड़ा-थोड़ा करके तीन-चार बार में दूध पीवे। जितनी भूख हो उससे ¼ (एक चौथाई) भोजन कम खायें। कभी-कभी उपवास या ऊनोदरी तप करें। यह स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। दवाइयाँ कम से कम लेनी चाहिए।

जीवनोपयोगी चर्चा

1. जे न मित्र दुःख होहिं दुःखारी।
   तिन्हीं विलोकित पातक भारी।।

जो अपने मित्रों अर्थात् परिवार के लोगों सम्बन्धियों, पड़ोसियों आदि के दुःख में दुःखी नहीं होता अर्थात् उन पर दया नहीं करता और उनकी तन, मन, धन से सहायता नहीं करता उस पुरुष को कभी सिद्ध पद प्राप्त नहीं हो सकता। वही मनुष्य परमात्मा बनने का अधिकारी है जो अपने शत्रु से भी बदला लेने की बात सोचना तो दूर रहा, किन्तु अपने दया भावना से, निःस्वार्थ त्याग से और सेवा से उसका भला करने की बात सोचता है और करता है।

2. बुरा काम करते हुए यदि धन आता है तो उसे उस बुरे कर्म का फल सोचना भूल है। वह किसी पहले हुए कर्म का ही फल है। इस वर्तमान कर्म का बुरा फल आगे कभी इसके उदय में आने पर ही होगा। इसलिए हमेशा अच्छा कर्म ही करना चाहिए।

3. आलसी मनुष्य को कोई अपने पास नहीं रखना चाहता। गरीबी हमेशा उसको घेरे रहती है। प्रथम मीठी बोली, दूसरा मिलनसार स्वभाव, तीसरा सत्य भाषण, चौथा ईमानदार तथा पाँचवां परिश्रम–ये पाँच गुण होने से मनुष्य ऊँचा उठता है।

4. लोभी को कुछ धन देकर, क्रोधी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को

उसकी इच्छानुसार चलने देने पर और पण्डित को सत्य बोलकर अपने पक्ष में किया जा सकता है।

5. माता-पिता को सवेरे उठते ही प्रणाम करने से मनुष्य का भाग्य खुलता है।

6. झूठ बोलने वालों को भविष्य के जन्मों में बोलने वाली जीभ नहीं मिलती। अर्थात् वह पशु-पक्षी आदि बनता है।

7. चोरियाँ करने वाले को हाथ की जगह दो पैर मिलते हैं और वह चौपाया पशु बनता है।

8. कपट करने वाला मनुष्य अगले जन्म में स्त्री बन सकता है।

9. अपने नौकर से बहुत ज्यादा काम लेने वाला अगले जन्म में नौकर बनता है और उसको अधिक काम और कम भोजन मिलता है।

10. मांस खाने वालों को अगले जन्मों में पशु आदि बनकर दूसरों को अपना मांस खिलाना पड़ता है।

11. अपने दान और तप की प्रशंसा और अहंकार करने वाले को दान और तप से मिलने वाला फल शिथिल पड़ जाता है।

12. अहंकार और अपने पाप का पश्चात्ताप करने से कर्म हल्के पड़ जाते हैं या नष्ट भी हो सकते हैं।

13. सेवा अर्थात्—अनुकम्पात्मक क्रिया मोक्ष का मार्ग है।

नियत-अनियत

भंगवान महावीर का अनेकान्त सिद्धांत यह बताता है कि न तो सब बातें नियत हैं और न ही सब बातें अनियत हैं। कर्मवाद के अनुसार वर्तमान का कर्म पूर्व के कर्मों में परिवर्तन कर सकता है। दिव्य दिवाकर ज्योति सातवां भाग, साठ पेज में यह लिखा है कि दान से विधाता का लेख भी झूठा पड़ जाता है। बड़े-बड़े जैन विद्वानों का कहना है कि सर्वज्ञ सभी द्रव्यों की सभी पर्यायों को जानते हैं। इसका अर्थ यह है कि जो नियत है उनको नियत रूप में जानते हैं तथा जो अनियत है उनको अनियत रूप में जानते हैं। दृढ़ प्रहारी ने चोरी और चार हत्याओं के महापापों को पश्चात्ताप से तथा प्रभु भजन से क्षीण कर दिया। अनिकाचित कर्मों का अर्थ है कि वे पूर्ण रूप से नियत नहीं है, उन्हें बदला जा सकता है। बहुश्रुत स्वर्गीय श्री समरथमलजी महाराज सा. एक मंत्री पुत्र की कथा सुनाकर कहते थे कि कर्मों को बदला जा सकता है। तंत्र-मंत्र, तप और दान आदि से कर्मों में परिवर्तन होता है।

दूसरी ओर स्वर्गीय कवि श्री अमरचंदजी म. सा. ने जैनत्व की झाँकी नामक पुस्तक में समवाय के पाठ में साफ लिखा है कि चाहे कुछ भी करो, होता वही है जो नियति को स्वीकार है। श्री कानजी ऋषि ने 'क्रमबद्ध पर्याय नामक पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि अगले जन्म स्थान का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुए बिना मरना भी मनुष्य के हाथ में नहीं होता। भव स्थिति पके बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नहीं होती। भव्य-अभव्य द्रव्य नहीं हो सकता और अभव्य भव्य नहीं हो सकता। प्रकृति की बहुत-सी बातें सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों की गति की तरह नियत है। वृद्धालोयणा में लिखा है कि पुद्गल स्पर्शना टलती नहीं है।

एक बहेलिये (चिड़ीमार) नें एक पक्षी को पकड़ा और एक केवलज्ञानी को झूठा साबित करने के लिए पूछा कि मैं इसे मारूंगा या छोड़ूंगा। तब केवलज्ञानी ने जवाब दिया कि तुम इसे मार भी सकते हो और छोड़ भी सकते हो। इन सब बातों से यही प्रकट होता है कि कुछ बातें नियत और कुछ अनियत हैं। हम सर्वज्ञ नहीं हैं इसलिए नियतिवाद और अनियतिवाद के झगड़े को छोड़कर कषाय आदि को जीतने के लिए निश्चय दृष्टि में विश्वास रखते हुए व्यवहारवाद का पालन करना चाहिए। इससे हमें दया भावना आदि की वृद्धि में सहायता मिलती है और हम कर्म काटकर मोक्ष मार्ग पर चल सकते हैं।

पाप का पश्चात्ताप

किसी से झूठ बोलकर, धोखा देकर, चोरी करके या दबाव आदि से धन या कोई चीज लेना बहुत बड़ा पाप है। इस प्रकार लिया हुआ धन या चीज प्रायः अपने साथ धोखेबाज के घर या घर से अधिक धन किसी न किसी रूप में लेकर निकल जाता है। धोखा देने वाले को धोखे से ली हुई चीज या उसकी कीमत असली मालिक को पश्चात्ताप करते हुए लौटा देनी चाहिए। यदि लौटाई नहीं जा सके तो उसके फल रूप में दृढ़ प्रहारी और अर्जुनमाली की तरह पश्चात्ताप करते रहना चाहिए जिससे उस किए हुए पाप का फल हल्का हो सके या नष्ट भी हो सकता है।

सत्-संकल्प

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा।
समता रखकर, कर्म काटकर, सिद्धों का पद प्राप्त करूंगा।।
पश्चात्ताप से, सिद्ध ध्यान से, सब पापों का नाश करूंगा।

झूठ, लूट से बचा रहूँगा, सच बोलूंगा, दया करूंगा।

काम क्रोध, मद, मोह छोड़कर, आनन्दघन और अभय बनूंगा।।

नोट–"सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा" इसका दस लाख बार स्वाध्याय करने से जीव सिद्ध बन सकता है।

"भलो हो, भला हो, सबका भला हो" इस वाक्य का दस लाख बार स्वाध्याय करने से कषाय छूट सकती है।

मानव की भूल

मानव की सबसे भारी महाभयंकर भूल यह है कि वह अपने विचारों को अपनी बुद्धि को तथा स्वयं अपने-आप को सर्वोपरि समझता है। अहंकार में आकर अपनी मनमानी करता है। इससे कभी-कभी वह भारी कर्जे के कचरे में भी फंस जाता है और दुःख के दल-दल में धंस जाता है। इनसे निकलना उसके लिए असंभव-सा हो जाता है। जो स्वयं को बड़ा नहीं समझता तथा बड़ों का आशीर्वाद लेकर उनके बताए हुए मार्ग पर चलता है वही यथार्थवादी मानव है और वही सुखी बनता है। अहंकारी प्रायः नरक के मार्ग पर जाता है लेकिन विनयवान भगवान बनता है।

मोक्ष का मार्ग

महापुरुषों ने मोक्ष प्राप्ति का एक अति सरल मार्ग बताया है। उनका कहना है कि "णमो सिद्धाणं" या "सब सिद्धों को नमस्कार है।" इन भावनाओं को जितनी बार जपोगे तथा अपने मन को, चित्त को सिद्धों के अरूपी ध्यान में लीन रखोगे उतना ही मोक्ष के नजदीक पहुँचोगे क्योकि सिद्धों के ध्यान से पाप कटता है और सिद्ध पद मिलता है।

मधु बिन्दु

1. परिवार का प्रत्यके सदस्य और संसार के सभी प्राणी जैसे पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य सभी अपना-अपना लेना देना चुकाते हैं और अलग हो जाते हैं। मुफ्त में किसी को कुछ नहीं मिलता।

2. झूठ, ठगी, चोरी, मिलावट, साहूकार बनकर लोगों को लूटना तथा दुर्भावना–ये महापाप हैं जिससे मृगा लोढ़ा जैसा शरीर मिलता है।

3. दान देना, दया करना, सेवा करना, सच बोलना–ये धार्मिक कार्य है।

ज्ञेय, हेय, उपादेय

1. कर्मों के सामने इच्छा नहीं चलती।

2. पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार नहीं टलती। किसी को दोष मत दो, क्रोध मत करो।

3. लेन-देन बाकी नहीं रहता।
तब परिवार अलग हो जाता।

4. दया भावना–निस्वार्थ भाव से दूसरे का भला करने का विचार–दया भावना है। भला करना सेवा है, धर्म है और यह मोक्ष का मार्ग है।

5. लोभ और लूट–(क) धनवान बनने की इच्छा लोभ है। (ख) वेतन पाते हुए भी अपने काम के लिए जनता से और अधिक धन लेना भी लूट है। (ग) साहूकार कहलाते हुए चीजों में मिलावट, चोरी, झूठ, कपट द्वारा या बिलकुल मुफ्त में लोगों का धन छीनना या शोषण करना और अपनी चीज की उचित से बहुत अधिक कीमत लेना लूट है।

6. मुफ्त में न तो कुछ आता है और न कुछ पाता है। पति-पत्नी को भी अपना-अपना कर्ज, कर्म तराजू पर तोलकर किसी-न-किसी जन्म में चुकाना पड़ता है। मुफ्त में लेना व खाना छोड़ो, देना व खिलाना तथा दया करना सीखो।

7. पश्चात्ताप और प्रभु भजन से पाप नष्ट होता है और मोक्ष मिलता है।

8. दूसरों की आलोचना व निन्दा करना छोड़ो। कम बोलो, मौन् रखो।

9. अहं से धर्म का फल शिथिल पड़ जाता है तथा पाप का फल निकाचित और भयंकर हो जाता है।

10. "माता-पिता की सेवा करता।
देवलोक में देव वह बनता।।"

कषाय व मोह छोड़ने के उपाय

कषाय मुक्ति : बारहवां भाग

कषाय और मोह सम्बन्धी विचार

1. अन्याय है या अपना कर्म दण्ड–जिस घटना को साधारण मनुष्य अपने ऊपर किया जाता हुआ अन्याय समझते हैं और क्रोध करते हैं उसे पूर्ण ज्ञानी मनुष्य अपने अशुभ कर्मों का फल समझकर समता रख कर कर्म निर्जरा करते हैं। वे सिद्ध बनते हैं।

2. (क). सत्संकल्प–समता विभूति श्री नानेशाचार्य म. सा. का एक मुख्य उपदेश यह है कि जीवन का लक्ष्य है सिद्धत्व प्राप्त करना। इसके लिए स्वाध्याय करने का यह सूत्र है–"सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा, सिद्ध लोक में सिद्ध दशा में अटल अवगाहना प्राप्त करूंगा, आनन्दघन और सिद्ध बनूंगा।"

2. (ख) सत्संकल्प को तथा दूसरे सूत्रों को पाँच-सात लाख बार जपने से यह भावना रोम-रोम में अपना घर बना लेती है और मनुष्य को अवश्य ही सफलता मिलती है।

2. (ग) इस जाप को दिन में, रात में, सामायिक में या बिना सामायिक के समय भी, सोये हुए या बैठे हुए भी दुकान में या खाली बैठे समय में, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय पर और किसी भी दशा में किया जा सकता है। इससे पुण्य की प्राप्ति और कर्मों की निर्जरा ही होगी।

3. (क) गंदा नाला–महापुरुषों के मनोविज्ञान के अनुसार तालाब को सुखाने के लिए उसके अन्दर गंदा पानी लाने वाले नालों को बंद किये बिना वह तालाब कभी सूख नहीं सकता। इस रोक के लिए सूत्र है–उनमें से किसी एक का या सबका ही बार-बार हमेशा जप करना।

(ख) इसका पहला सूत्र है–"भलो हो, भला हो, सबका भला हो।" दूसरा सूत्र है–"बुरा नहीं हो, बुरा नहीं हो, किसी का भी बुरा नहीं हो।" तीसरा सूत्र है–"मैं सबको क्षमा करता हूँ, सभी मेरे मित्र हैं, कोई मेरा शत्रु

नहीं है।" चौथा सूत्र है–"मैं किसी की अशुभ आलोचना, निंदा या विकथा नहीं करूंगा।"

(ग) इन ऊपर वाले सूत्रों से दुर्भावना और अशुभ कर्म आने रुक जायेंगे और साधक मुफ्त में ही तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई बनने से बच जाएगा। यह स्व. गणेशाचार्य जी की अद्वेष भावना है।

4. (क) कषाय को छोड़ने के लिए कुछ उपाय नीचे दिये हैं–प्रथम उपाय है कि मनुष्य को कषाय से प्रायः पशु का जन्म मिलता है। उसे यह जाप करना चाहिए–"क्रोधी मरकर सर्प है बनता।" दूसरा सूत्र है–"अभिमानी मुर्गा है बनता।" तीसरा सूत्र है–"माया कपट से मादा (औरत) है बनता।" मल्लिनाथ भगवान ने तीर्थंकर होते हुए भी मादा अर्थात् औरत रूप में जन्म लिया था। चौथा सूत्र है–"लोभी मृगा लोढ़ा है बनता।" मृगा लोढ़ा के हाथ पैर नहीं थे, उसका जीवन बहुत दुःखी था।

(ख) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकार के अशुभ कामों से दुःख पाने वाले लोगों के जीवन की कथा संतों व साध्वियों से पूछिये और कषाय मुक्ति की भाग एक से ग्यारह तक की पुस्तकों में पढ़िये।

(ग) अपने अड़ोस-पड़ोस में रहने वालों को कषाय से होने वाले दुःखों से अवगत कराइये।

5. (क) मोह छोड़ने के लिए और अराग भावना को मज़बूत बनाने के लिए यह चिंतन-मनन करिए। प्रथम शरीर मोह को छोड़ने के लिए विचार करिये कि मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायीं, मुनि अर्जुनमाली, मुनि खन्दक जिनकी चमड़ी उतारी गई और स्कन्धाचार्य के 500 शिष्य जिनको पालक द्वारा घाणी में पैला गया उन्होंने शरीर का मोह छोड़ा और वे सिद्ध बने।

(ख) अराग भावना को मजबूत बनाने और वीतरागी बनने के लिए परिवार मोह को छोड़ना जरूरी है। यह याद रखिए कि केवल परिवार को छोड़ने से या अपने शिष्यों को छोड़ने से मनुष्य वीतरागी नहीं बनता। छोड़ना है केवल मोह को और जब तक परिवार में रहें तब तक परिवार को श्री जवाहराचार्य के विचारों के अनुसार परिवार को भी तिराने वाली जहाज समझकर धारिणी रानी की तरह इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करें। कूर्मा पुत्र केवली की तरह अनुकम्पा भाव से, दया भाव से परिवार की पूरी सेवा

करना आवश्यक है। परिवार में रहना और परिवार की सेवा नहीं करना या इस सेवा को बेगार व बेकार समझना व आर्तध्यान करना महापाप है।

(ग) धन का लोभ व मोह--इस संबंध में यह चिंतन करना चाहिए कि "धन का लोभी सर्प है बनता, धन की वह रखवाली करता है।

6 (क) श्री जवाहराचार्य ने व वर्तमान श्री नानेशाचार्य ने प्रभु भजन को मोक्ष प्राप्ति का बड़ा साधन माना है।

(ख) "सिद्ध ध्यान से पाप है कटता। सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता।" दृढ़ प्रहारी ने चोरी हत्या और महापापों को पाँच महीनों में काट लिया व सिद्ध बन गये।

7. स्व. श्री जवाहराचार्य की दूसरी बात मन में दया से पाप नष्ट होते हैं व निर्जरा होती है। इसका अध्ययन इस प्रकार भी किया जा सकता है--आचार्य भगवन स्वस्थ हों, सुखी हों। सभी संत स्वस्थ व समतादर्शी हों। अमुक व्यक्ति मांसाहार व अंडे खाना छोड़े, अमुक व्यक्ति माता-पिता का आज्ञाकारी व विनयवान बने। अमुक संत का संकट दूर हो। अमुक व्यक्ति को परमात्मा सुबुद्धि दे, सुमति दे तथा सम्यक् ज्ञान दे। सभी देवता कृपा करें। अमुक व्यक्ति का भला करें।

8. श्री जवाहराचार्य की तीसरी बात--तन सेवा में लीन तिराने वाली जहाज--साधु-साध्वी, माता-पिता, सास-ससुर, वृद्ध-विकलांग व्यक्ति, अंधे, लूले-लंगड़े, रोगी, अबाल व अबोध पशु-पक्षी और दुःखी जीव संसार-सागर से तिराने वाली जहाज के समान हैं। इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करने से मनुष्य संसार सागर से तिर जाता है।

इनकी सम्यक् सेवा से पुण्य की बहुत कमाई व कर्मों की बहुत निर्जरा होती है किन्तु सेवा को बेगार समझने वाला और इस कार्य के लिए आर्तध्यान करने वाला कभी-कभी इस कार्य से अधिक पुण्य खो देता है व पाप कमा लेता है।

9. पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्डरुद्राचार्य और दृढ़ प्रहारी की तरह बहुत से पापों को क्षण भर में नष्ट कर सकता है। पश्चात्ताप साबुन व पानी की तरह मनुष्य के शरीर रूपी कपड़े के सब पापों को धो देता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जा सकता है--"मैंने अमुक व्यक्ति को धोखा दिया, महापाप किया। मुझे इसके लिए धिक्कार है। मैं इसके लिए अमुक

तप करूंगा या अमुक वस्तु खाना छोड़ूंगा। मैंने भूल से या जान बूझकर अमुक व्यक्ति से इतने रुपये या सामान ठगे, मैं महापापी हूँ, हो सकेगा तो उसके रुपये लौटाऊंगा। मैंने अमुक व्यक्ति की नौकरी छोड़ायी, हो सकेगा तो मैं उसकी सहायता करूंगा। अति लोभी को दुर्गति में जाकर भारी दंड सहना पड़ता है। मैंने रिश्वत ली। मैंने मुफ्त में अमुक व्यक्ति का धन खाया, पाप किया। दूसरे का धन मुफ्त में या धोखा देकर या बहुत अधिक ब्याज लेकर मैंने एक प्रकार से दूसरों का खून चूसा। मैं इन सबका पश्चात्ताप करूंगा और करता हूँ।

10. कषाय मुक्ति ग्यारहवां भाग में 'ज्ञेय, हेय, उपादेय' इस शीर्षक में दस नियम दिये हैं उन्हें हमेशा पढ़िये।

11. दूसरों पर व्यवहार में दिखते हुए अन्याय को रोकने के लिए यथाशक्ति, यथा मर्यादा, अनुकम्पा भाव से शुभ प्रयास करना हमारा परम और पवित्र धर्म है।

12. धन के आठ नियम–1. उपादान रूप में आने वाला धन अवश्य आता है। 2. अशुभ कर्म से जाने वाला धन रुक नहीं सकता। 3. धन के बिना भी शुभ कर्मों के उदय से सुख मिलता है। 4. धन होते हुए भी सभी अशुभ कर्मो से दुःख मिलता है। 5. धन होते हुए भी योग नहीं हो तो काम नहीं बनता। 6. धन नहीं होते हुए भी होने वाले काम के लिए कहीं से धन आता है तथा वह काम अवश्य बनता है। 7. धन दान-पुण्य से ही आता है। 8. धन का लोभी सर्प बनकर उसकी रखवाली करता है।

13. कभी-कभी कर्ज चुकाने के लिए पशु का जन्म लेना पड़ता है।

14. आम के पेड़ व दान का शुभ फल बहुत समय तक मिलता है।

15. पति-पत्नी को भी अपने लेन-देन का हिसाब किसी-न-किसी रूप मे चुकाना पड़ता है।

सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।
ममता अरु इच्छा छोड़ूंगा।।
समता रखकर कर्म काट कर।
सिद्धों का पद प्राप्त करूंगा।

परिवार मोह

परिवार नहीं अपना होता।
परिवार पराया है होता।।1।।
जब लेन-देन बाकी नहीं रहता।
तब परिवार अलग हो जाता।।2।।
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
कर्म दंड से बचा न सकता।।3।।
कोई हमेशा साथ न रहता।
मर कर अगले घर वह जाता।।4।।
शत्रु भी घर में जन्म है लेता।
वह अपना बदला है लेता।।5।।
सब अलग-अलग हैं, अलग-अलग हैं।
अलग-अलग हैं, अलग-अलग हैं।
अलग-अलग हैं, अलग-अलग हैं।।6।।
परिवार मोह से कुतिया बनता।
मोह छोड़ता, वह सिद्ध बनता।।7।।
परिवार है साथी नहीं मेरा।
परिवार है साथी कर्मों का।।8।।
मोह छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।
सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।।9।।

नोट—कषाय मुक्ति तीसरा भाग में सेवा धर्म, कर्म सिद्धांत और सिद्धों के ध्यान पर काफी सामग्री दी हुई है।

मोक्ष के पाँच मार्ग

1. दुर्भावना से बचना ही मोक्ष का प्रथम मार्ग है। इसका सूत्र है—'सबका भला हो।' इस सूत्र को खूब जपना चाहिए, जिससे यह सद्भावना रोम-रोम में रम जाए तथा जिससे पाप बंधने वाले सभी कामों से जीव बच जाए। तन्दुल मत्स्य कुछ भी हिंसा नहीं करता हुआ केवल दुर्भावना के कारण नरक में जाता है। इसका जाप इस प्रकार भी किया जा सकता है—'अमुक व्यक्ति का भला हो।'

2. दूसरा सूत्र इस प्रकार है—जीव पर अनेक दूसरे जीवों का अनेक प्रकार का ज्ञात व अज्ञात ऋण चढ़ा हुआ है। उसे निःस्वार्थ भाव से दया, दान और सम्यक् सेवा द्वारा उतारो। मुनि गजसुकुमाल ने निन्यानवें करोड़ जन्मों के बाद अपना आग से जलाने वाला पाप समता-भाव से काटकर मोक्ष प्राप्त किया था। वैदिक संस्कृति में भी बताया गया है कि जीव माता-पिता आदि का ऋणी बने बिना जन्म नहीं ले सकता। 'ऋणम् वई जाय मान।'

3. अपने सभी पापों को बार-बार याद करके पश्चात्ताप द्वारा तथा प्रभु भजन द्वार काट लो।

4. सिद्धों का ध्यान करो। सिद्धों के ध्यान से दृढ़ प्रहारी ने उसी एक जन्म में सब हत्या के महापापों को भी काटकर प्रभु भजन से मोक्ष प्राप्त किया था।

5. 'सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा' इस संकल्प को जाप द्वारा मजबूत वनाओ। इस संकल्प से सिद्ध पद प्राप्त होता है।

चिंतन-मनन की चार बातें

1. परिवार नहीं किन्तु पश्चात्ताप कर्म दंड से बचा सकता है। दृढ़ प्रहारी ने गाय, ब्राह्मण, गर्भवती स्त्री और बालक की हत्या का पाप पश्चात्ताप और प्रभु भजन से नष्ट किया और मोक्ष गए। अर्जुनमाली ने 1141 मनुष्यों की हत्या का पाप पश्चात्ताप और समता से काटा और मोक्ष गए।

2. (क) परिवार, पिता, पुत्र आदि कोई भी कुछ भी मुफ्त में नहीं देता। उसका बदला पहले या बाद में, किसी जन्म में तथा किसी-न-किसी रूप में चुकाना ही पड़ता है।

(ख) दूसरों का धन मुफ्त में खाने वालों को तथा चोरी या उचित से अधिक कीमत लेकर लाया हुआ धन मनुष्य को बरबाद कर देता है या उस मनुष्य को मृगा लोढ़ा अर्थात् बिना हाथ पैर के शरीर वाला मनुष्य बनाता है। मुफ्त में खाना छोड़ो। दया भाव से दूसरों का उपकार करो।

3. परिवार मोह में मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी, उसका पिता भैंसा वना। मोह में मरकर मनुष्य पशु भी वनता है।

4. परिवार मोह छोड़ने वाली मरुदेवी माता सिद्ध बनी।

मुफ्त में कुछ नहीं मिलता

संसार में किसी भी जीव को किसी भी जीव से यहाँ तक कि परिवार में भी एक दूसरे को मुफ्त में कुछ नहीं मिलता। उनके लेन-देन का पूरा हिसाब कर्मों के नियमों के अनुसार कर्मों के अरूपी बही खातों में कर्मों के स्वयं अरूपी लेखनी के द्वारा अंकित हो जाता है और वह लेना-देना उसी रूप में या बदले हुए रूप में कर्मों के माप-तोल के अनुसार चुकाना पड़ता है। इसमें छूट नहीं होती किन्तु वह कर्म पश्चात्ताप द्वारा नष्ट किया जा सकता है।

कोई मनुष्य पहले, कोई बाद में दाता और पात्र अर्थात् निमित्त और उपादान या साहुकार और आसामी (कर्जदार) बनता रहता है। मुफ्त में न कुछ आता है और न कुछ जाता है।

समझदार मनुष्य मोक्ष की इच्छा रखने वाला धन आने पर फूलता नहीं और खो जाने पर रोता नहीं है। वह जानता है कि जितना उपादान में लिखा है उतना तो ईमानदारी से भी मिल जाएगा। इसलिए मुफ्त में खाना छोड़ो। मुफ्त में जरूरतमंदों को खिलाना सीखो। दान देना सीखो। चोरी, ठगी, लेन-देन आदि का बदला पहले या बाद में लेना-देना पड़ता है। अतः धन प्राप्त करने के लोभ से बचना चाहिए तथा दान, सेवा, त्याग आदि से अपना अज्ञात कर्जा चुकाना चाहिए। यही धर्म और मोक्ष का मार्ग है।

मोक्ष मार्ग में रूकावटें

1. जो मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार नहीं करता और दो-चार समझदार लोगों से पूछकर उसमें सुधार नहीं करता वह मोक्ष नहीं जा पाता।

2. जो मनुष्य धन के लोभ में दूसरों को अनीति से लूटता है वह मोक्ष नहीं जा पाता।

3. जो मनुष्य अपने धन, बल, बुद्धि और मान का दिखावा करता है उसकी बुद्धि का दिवाला निकल जाता है और उसका अहंकार उसे मोक्ष नहीं पहुँचने देता।

मोक्ष का दरवाजा

पश्चात्ताप से पाप कटता है तथा मोक्ष का दरवाजा खुलता है। पश्चात्ताप इस प्रकार किया जा सकता है–"अरे भाई मोहन ! मुझे क्षमा करो, मैंने बहुत पाप किए हैं। मैंने तुम्हें ठगा है, धोखा दिया है। उसके लिए मुझे धिक्कार है। मुझे माफ करो।

बहुत दिनों तक बार-बार इस प्रकार पश्चात्ताप करने से पाप नष्ट होते हैं। दृढ़ प्रहारी, अर्जुनमाली आदि ने इसी प्रकार पश्चात्ताप करते हुए अपने पूर्वकृत पापों को नष्ट किया और मोक्ष पद को प्राप्त किया।

किसी चिंतन की पुनरावृत्ति होना भूल नहीं है यह स्वाध्याय तप का अंग है।

भगवान महावीर के तीन सिद्धांत

1. महाहिंसा से बचो और अहिंसक बनो। मकान बनाने, जमीन खुदवाने, चुने आदि के भट्टे, भुजिया आदि बनवाना, बैल गाड़ियाँ किराये पर देना, दास-दासी का व्यापार आदि ये महाहिंसा के कार्य हैं। कसाईखाना, पशु-वध आदि महाहिंसा के कार्य हैं। इनसे बचो और अहिंसक बनो।

2. महापरिग्रह से बचो। जीवन की आवश्यकता पूरी हो उसी में संतोष रखो। अधिक धन, जमीन, मोटर गाड़ियाँ आदि मत रखो। अल्प परिग्रही बनो।

3. एकान्तवाद धर्म नहीं है। सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो सोचता हूँ या कहता हूँ या करता हूँ वही ठीक है इस एकान्तवाद को छोड़ो और अनेकांतवादी बनो।

सब कुछ नियत नहीं है। मैं जो करता हूँ, कहता हूँ वह गलत भी हो सकता है। दूसरों की बात सुनो, सोचो, समझो, यह अनेकांतवाद है। यदि सभी कुछ नियत होता तो कर्मो के दो भेद निकाचित और अनिकाचित क्यों किए जाते ? सर्वज्ञ नियत को नियत रूप में और अनियत को अनियत रूप में देखते हैं।

ध्यान एक अनुशीलन

ध्यान

ध्यान, ध्यान ही है। वह ध्येय नहीं है। वह साध्य नहीं है। वह अन्तिम लक्ष्य नहीं है। वह ध्येय साध्य या अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति का साधन है, क्रिया है, उपाय है, एक मार्ग है।

जिस प्रकार गंतव्य स्थान पर पहुँचने के अनेक मार्ग होते हैं जिनमें कोई लम्बा, कोई छोटा, कोई कठिन और कोई सरल व सुगम होता है उसी प्रकार जीवन के लक्ष्य प्राप्ति के भी अनेकान्त सिद्धान्तानुसार अनेक मार्ग हो सकते हैं। जैसे विपश्यना, त्राटक ध्यान, नासाग्र ध्यान, श्वास प्रक्रिया ध्यान, हठ योग, सहज योग, समीक्षण ध्यान आदि। इनमें से साधक अपनी-अपनी मान्यता, योग्यता एवं परिस्थिति के अनुसार किसी एक मार्ग को अपना लेता है और वह भी कुछ-कुछ परिवर्तन के साथ।

भगवान महावीर के जैन आगमों में चार ध्यान बताये गये हैं जिनके अनेक भेद-उपभेद हो सकते हैं। इन चारों में प्रथम दो आर्तध्यान और रौद्रध्यान सर्वथा हेय हैं और अंतिम दो धर्मध्यान और शुक्लध्यान उपादेय हैं।

ध्यान सूत्र—जिस विषय का ध्यान करना हो उसका एक छोटा-सा वाक्य या स्वाध्याय सूत्र बना लीजिये। कुछ सूत्र इस पुस्तक के अंत में दिये गये हैं।

स्थान—स्थान जहाँ तक हो सके शांत, एकान्त और मच्छर आदि के उपसर्गों से मुक्त होना चाहिए। वह शोर से दूर हो और मन को दूसरी ओर आकर्षित करने वाला नहीं हो।

आसन—शरीर स्थिर दशा में हो। ध्यान सीधे बैठकर, खड़े होकर या शरीर की कमजोरी के कारण लेटकर भी किया जा सकता है। चित्त शांत व स्थिर रह सके वह सुखासन ही उचित आसन है।

समय—रात्रि का समय या सवेरे उठते ही सूर्योदय से पहले उषाकाल का शांत वातावरण अधिक उपयुक्त है। ध्यान नियमित समय पर प्रतिदिन किया जावे।

पुनरावृत्ति—स्वाध्याय या साधना के सूत्रों को दिन में कई बार दोहराना चाहिये। केवल आधे घंटे धर्मध्यान और साढ़े तेबीस घंटे आर्त-रौद्रध्यान का अभ्यास साधक को कितनी सफलता देगा, यह आपके लिये

विचारणीय बात है। अपने सूत्रों को सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय स्मरण कीजिये। दिन में समय निकाल कर कई बार दोहराइये।

प्रारम्भिक तैयारी–दुःख चेतना, सुख-चेतना एवं आर्त-रौद्रध्यान से निवृत्ति की साधना के लिये अपने अवगुणों की सूची बनाइये। इनके संबंध में गहरा अध्ययन एवं चिंतन मनन कीजिये। इन अवगुणों को दूर करने के लिये कुछ संक्षिप्त छोटे वाक्य या सूत्र बना लीजिये। उन सूत्रों को कुछ महीनों तक बार-बार दोहराते रहने और जीवन में उतारने से आत्मा निर्विकार बन सकेगी।

साधना का प्रारम्भ--मन बहुत चंचल है। मन को वश में करने के लिये कई प्रकार के ध्यान किये जाते हैं। किन्तु आत्म-शुद्धि के लिये साधना करने वाले प्राणी को प्रारम्भ से ही किसी एक दुर्गुण-निवृत्ति की साधना के लिये अच्छा यह रहेगा कि प्रारम्भ से ही उस दुर्गुण के विरोधी भाव का अध्ययन, चिंतन, ध्यान, जप, स्वाध्याय एवं बार-बार स्मरण किया जावे और पूर्ण सजग रहकर जीवन की प्रत्येक छोटी या बड़ी सभी घटनाओं में उस दुर्गुण से बचा जावे।

सर्वप्रथम क्रोध निवृत्ति हेतु समता के किसी सूत्र का ध्यान करना प्रारम्भ किया जावे। इसका एक सूत्र है–"चोट, रोग या गरीबी को अपने पाप-कर्म का फल मानो। दुःख में समता रखते हुए दुःख को पाप-कर्म काटने की दवा मानो। उसमें निमित्त बनने वाले को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो।"

कुछ दिनों या महीनों की साधना के बाद क्रोध-निवृत्ति में सफलता मिल ही जावेगी। सफलता देरी से मिले तो भी धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहें।

क्रोध निवृत्ति के बाद किसी दूसरे विकार निवृत्ति की साधना प्रारम्भ कर दीजिये और उसमें सफलता मिलने के बाद किसी तीसरे अवगुण-निवृत्ति का प्रयास प्रारम्भ करें। इस प्रकार एक के बाद दूसरे की और दूसरे के बाद तीसरे की निवृत्ति में लगें।

साधना में सफलता के लिये जितनी आवश्यकता एकाग्रता की है उससे भी ज्यादा महत्त्व स्वाध्याय के सूत्रों की पुनरावृत्ति का है। "जितनी पुनरावृत्ति, उतनी ही सफलता।"

विकार निवृत्ति की साधना में निम्नलिखित शब्द-चित्र या मानस-चित्र भी काफी सहायक होता है।

क्रोध	दुःख-चेतना	अहंकार
दुर्भावना	सुख-चेतना	संग्रह
परिवार-मोह	इच्छा	विकथा

इस शब्द-चित्र या मानस-चित्र को बार-बार देखने से, बार-बार पढ़ने से, बार-बार लिखने से यह मानस पटल पर अंकित हो जाता है और बार-बार आँखों के सामने आने से अवचेतन मन में उतर कर आचरण का अंग बन जाता है।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान की निवृत्ति की साधना में धर्मध्यान की आधी से ज्यादा साधना तो बन ही जाती है। धर्मध्यान की साधना में भगवान महावीर की आज्ञाओं, उनके निर्देशों का प्रतिदिन स्वाध्याय किया जाना आवश्यक है।

साधक पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानों का भी अभ्यास कर सकता है। इनका वर्णन जैन आगमों में विस्तार से दिया गया है। यह पंचपरमेष्ठी के गुणों का चिंतन एवं ध्यान है।

नवकार मंत्र का बार-बार जप व ध्यान करना भी धर्मध्यान की साधना है। इसके लाख जप करने से तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन भी हो सकता है। ऐसा पुस्तकों में उल्लेख है।

ध्यान का प्रथम मूल लक्ष्य विकार-निवृत्ति ही है। विकार-निवृत्ति की विशेष साधना की विधि और उसके लिये कुछ स्वाध्याय-सूत्र इस पुस्तक के अन्तिम भाग में दिये गये हैं।

विकार निवृत्ति के बाद आत्म-ध्यान में काफी सफलता मिल सकेगी। आत्म-साधना के लिये प्रथम देहात्म-भेद-ज्ञान और आत्म ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है। उसके बाद आत्म-ध्यान प्रारम्भ करना ठीक है।

सब ध्यानों में निज आत्मा का ध्यान ही प्रधान है। इससे अंतर्मुखता, अंतर्मुखता से अनासक्ति, अनासक्ति से समता, समता से अहिंसक भाव और अंत में परमात्म-पद की प्राप्ति होती है।

देहात्म-भेद-ज्ञान

देह-आत्म-भेद-ज्ञान का महत्त्व सभी धर्मों ने माना है। जैनागमों में तो इसका इतना महत्त्व बताया गया है कि शिवभूति मुनि को शास्त्रों का

कुछ भी ज्ञान नहीं होते हुए भी केवल देहात्म-भेद-ज्ञान की अनुभूति से कि जिस प्रकार छिलके से दाल अलग होती है उसी प्रकार शरीर से आत्मा अलग है, उन्हें केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई थी।

शरीर और आत्मा दोनों ऊपर से एक ही शरीर के रूप में दिखाई देने पर भी वास्तव में दोनों अलग-अलग हैं। शरीर तो पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश—इन पाँच तत्त्वों से बना है। आत्मा अति सूक्ष्म अमूर्त चेतन द्रव्य है जो अशरीरी और पूर्णतः ज्ञान स्वभावी और आनन्दघन है। यह अजर, अमर, अविनाशी है, जिसका छेदन, भेदन आदि नहीं हो सकता।

बहुत से लोगों को शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने का पता भी नहीं है और जिन्होंने इस विषय में कुछ पढ़ा या सुना है उन्हें इसका विश्वास भी जल्दी नहीं होता। क्योंकि आत्मा प्रत्यक्ष रूप में दिखाई नहीं देती और जब तक लोग किसी चीज को देख नहीं लेते, उसकी अनुभूति नहीं कर लेते या उसके पुष्ट प्रमाण नहीं मिल जाते, तब तक वे सहसा उस पर विश्वास नहीं करते।

जिस प्रकार दूध में घी मिला हुआ रहता है किन्तु वह दिखाई नहीं देता उसी प्रकार शरीर में आत्मा व्याप्त है किन्तु वह दिखाई नहीं देती। किसी लोहार की दुकान में तेज आग में खूब तपा हुआ लाल-लाल लोहे का गोला देखने वाला मनुष्य समझ जाता है कि लोहा अलग चीज है और गोले की ललाई दूसरी चीज है। उसी प्रकार चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष समझता है कि मिट्टी की बनी हुई देह एक चीज है और इस देह को चेतना, जीवन, शक्ति आदि देने वाली आत्मा दूसरी चीज है। वह शरीर में होने वाली अनेक शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं के चिंतन-मनन द्वारा शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने की अनुभूति करने लगता है।

जिस प्रकार तिलों में तेल, वनस्पति में शहद, फूलों में सुगन्ध, काष्ठ में अग्नि, दूध में घी मिला हुआ है उसी प्रकार इस जड़ भौतिक देह में आत्म-प्रदेश मिले हुए हैं। कुछ भौतिक पदार्थों की मिलावट को तो अलग करके देखा जा सकता है किन्तु शरीर से आत्मा को पृथक् करके इन भौतिक आँखों से नहीं देखा जा सकता। आत्मा के अस्तित्व की तो केवल अनुभूति ही की जा सकती है। शरीर के अन्दर से आत्मा के निकल जाने पर शरीर की क्रियाएँ बंद हो जाती हैं। उसका हिलना-डुलना, बोलना, देखना आदि सब समाप्त हो जाते हैं और वह निर्जीव देह जला दी जाती है या गाड़ दी जाती है।

आत्मा की अमरता के कारण ही प्राणी संसार में बार-बार जन्म लेते हैं और अपने पिछले किए हुए पाप या पुण्य का फल अगले जन्मों में दुःख या सुख के रूप में भोगते हैं। वर्तमान काल में पाप करने वाले किसी प्राणी का अत्यन्त समृद्धिशाली होना और दूसरे पुण्य करने वाले प्राणी का सड़-सड़ कर जीवन बिताना आत्मा की अमरता और उस प्राणी के पुनर्जन्म लेकर पूर्व जन्मों के कर्म फल भोगने के ही प्रमाण है।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि आत्मा अमर होती और स्वर्ग-नरक होते तो हमारे पूर्वजों में से कोई तो कभी हमारे पास आकर हमें कुछ सूचना देता। इसके उत्तर में ज्ञानी पुरुषों का कहना है कि देवलोक इतना सुन्दर और सुखद है और मनुष्य-लोक उसकी तुलना में इतना दुर्गन्धमय और दुःखद है कि देवलोक के देवता यहाँ आना नहीं चाहते। फिर भी कभी-कभी देव आकर अपनों की सुधि लेते हैं। सभी धर्म ग्रन्थों में ऐसे उल्लेख मिलते हैं कि देवता अपने पूर्व जन्म के राग-द्वेष से जुड़े हुए प्राणियों की सुधि लेते हैं। जैन कथाओं में शालिभद्रजी को उनके पिता द्वारा देवलोक से अतुल धन सम्पत्ति के बराबर भेजे जाने का वर्णन आया है। और नरक से किसी को यहाँ आने नहीं दिया जाता।

ऐसी घटनाएँ भी घटी हैं जिनमें एक प्राणी ने अपने पूर्व जन्म के परिवार के लोगों को अच्छी तरह पहचान लिया है और उस जन्म की गुप्त घटनाओं का भी परिचय दिया है। ये सब बातें आत्मा के अस्तित्व की, उसकी अमरता की और उसके पुनर्जन्म की सत्यता को प्रमाणित करती हैं। किसी प्राणी का विकलांग, लूला, लंगड़ा, अंधा होकर जन्म लेना भी उसकी आत्मा के पूर्व में होने का ही प्रमाण है।

किसी केवलज्ञान प्राप्त व्यक्ति का आयुष्य जब पूर्ण होने को होता है और उसके कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो वह समुद्घात करती है, जिसे केवली सुमद्घात कहते हैं। इसमें वह आत्मा स्वयं का विस्तार करती है।

ऐसे अवसर पर उस आत्मा के प्रदेशों का कुछ भाग उसके शरीर में और शेष भाग बाहर आकाश तक फैल जाता है। इससे शरीर में आत्मा का भिन्न होना प्रमाणित होता है।

आत्मा-ज्ञान

आत्मा अति सूक्ष्म, अमूर्त, अशरीरी, ज्ञान-स्वभावी चेतन द्रव्य है। संसार की किसी भी वस्तु से इसका सादृश्य नहीं है। यह ज्योति है, एक

अद्‌भुत ज्योति है। किन्तु अग्नि, दीपक, बिजली आदि की ज्योति की भाँति इसको मानकर आत्म-ध्यान करना सही ध्यान नहीं है। वह आत्मा ध्यान नहीं है। ऐसा ध्यान तो मात्र पुद्‌गल का ध्यान नहीं है।

आत्मा अरूपी चेतन द्रव्य है। इसका लाल, पीला, सफेद आदि कोई रंग नहीं है। आत्म ध्यान करते समय किसी रंग का ध्यान करना जड़ पुद्‌गल का ध्यान ही है।

आत्मा अमूर्त है, अरूपी है। इसके कोई शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है। यह चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। संसार के किसी भौतिक पदार्थ से इसकी उपमा नहीं दी जा सकती। इसको केवल, ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है।

आत्मा के ध्यान करने के संबंध में इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि जिस प्रकार सिद्धों का ध्यान उनके गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है उसी प्रकार आत्मा का ध्यान भी आत्मा के गुणों के माध्यम से ही किया जा सकता है। आत्मा में चेतना, ज्ञान, संवेदनशीलता, शक्ति आदि हैं। उन्हीं के ध्यान से आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

आत्मा के स्वरूप का, उसकी शक्ति का यथार्थ ज्ञान ही आत्म-दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

मन सूक्ष्म होते हुए भी पुद्‌गल है। वह अमूर्त, सूक्ष्म चेतन आत्मा को नहीं देख सकता। महात्मा विनयचंदजी ने कहा है–

अनंत जिनेश्वर नित नमूं, अद्‌भुत ज्योति अलेख।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।।
सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद् रूप।
पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप।।

असल में दीर्घकाल के आत्म-ध्यान के अभ्यास से आत्मा स्वयं ही स्वयं को जान व पहचान सकती है।

आत्मा के ध्यान में मुख्य रूप से तीन बातों की साधना करनी चाहिये। प्रथम, शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। दूसरी, यह शरीर मेरा नहीं है। तीसरी, इस शरीर में जो चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।

आत्म ध्यान की विधि

1. आप सीधे खड़े होकर या सीधे बैठकर या सीधे लेटकर, अपने शरीर को देखकर सोचिये–"यह शरीर मैं नहीं हूँ। यह शरीर अलग है, मैं

अलग हूँ।" फिर शरीर के किसी भाग को छू कर उसमें व्याप्त सूक्ष्म चेतना की अनुभूति करते हुए सोचिये–"इस शरीर में यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।" कुछ समय तक इस चेतना की एकाग्रतापूर्वक अनुभूति करते हुए चिंतन करते रहिये–"यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मैं हूँ।"

मनोविज्ञान बताता है कि मनुष्य जिस विचार को बार-बार दोहराता है वह विचार उसके मन में स्थायी रूप से जम जाता है। वह स्थायी संस्कार बन जाता है। वह अवचेतन मन में उतर जाता है और साधक के जीवन में आचरण का अंग बन जाता है।

प्रारम्भ में देहात्म-भेद में श्रद्धा नहीं होने वाले व्यक्ति भी यदि इस साधना में कुछ महीनों तक लगे रहें तो मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार उनमें श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी।

इसी प्रकार इस मानव देह में व्याप्त संवेदनशीलता, शक्ति, जीवन व अन्य गुणों की अनुभूति द्वारा आत्मा को अर्थात् स्वयं को जानें, समझें व पहिचानें। स्वयं के स्वरूप एवं शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें जिससे धीरे-धीरे देहासक्ति घटे और आत्मा का विकास हो सके।

जिस प्रकार गुणों के चिंतन से सिद्धों का रूपातीत ध्यान किया जाता है उसी प्रकार ज्ञान, सुख, अगुरुलघुत्व अपने शरीर प्रमाण अपनी अवगाहना आदि के चिंतन द्वारा आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

स्वयं को कर्म मुक्त मानकर, कल्पना द्वारा लोक के अग्रभाग में स्थित मानकर, सिद्धों की भाँति स्वयं का भी सिद्ध रूप में ध्यान किया जा सकता है।

2. कल्पना कीजिये कि आपके सामने आपका कोई मित्र या कोई मनुष्य बैठा है। आप उसके शरीर में व्याप्त, किन्तु उसके शरीर से भिन्न उसकी आत्मा की कल्पना कीजिये। चिंतन कीजिये–"इस मनुष्य में चेतना है, संवेदना है, शक्ति है, ज्ञान है, जीवन है, वही इसकी आत्मा है। मूलतः इस प्राणी की आत्मा और सिद्धों की आत्मा समान है। कर्म-मुक्त होने पर यह भी सिद्ध बन सकेगा।" आप उसके शरीर का, उसके दोषों का चिंतन नहीं करें। किन्तु उसके आत्म तत्त्व का चिंतन करें। इससे दो लाभ होंगे। प्रथम देहात्म भेद श्रद्धा बढ़ेगी। दूसरे, उससे राग-द्वेष की संभावना घटेगी। इस चिंतन में दोनों का ही लाभ होगा।

यहाँ इस बात का ध्यान रखें कि पुरुष, पुरुषों के शरीर में और स्त्रियाँ, स्त्रियों के शरीर में आत्मा के अस्तित्व का चिंतन करें।

3. पशु-पक्षियों के शरीर में आत्म तत्त्व का चिंतन करने से उनके प्रति आप में दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीड़ों-मकोड़ों में आत्म तत्त्व का चिंतन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियों की अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

4. पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एवं वायुकाय में भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

5. आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है–"इस शरीर में संवेदनशीला है वही मैं (आत्मा) हूँ।"

6. इस शरीर में जो क्रिया-शक्ति है वही मैं हूँ।

7. इस शरीर का संचालक मैं ही हूँ।

8. इस शरीर में जो जीवन है वही मैं हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, बेकार हो जाता है।

9. जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी है, चिंतन के साथ-साथ जिसमें ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भंडार मैं हूँ।

10. जो स्वयं का ध्यान करते हुए स्वयं में लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही मैं (आत्मा) हूँ।

11. आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, देह से मैं भिन्न हूँ।
कर्म मुक्त होने पर, मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ।

विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भाँति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारों को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमें 1. अपने अवगुणों की सूची बनाई जावे। 2. उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3 किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये मीठा या नमक छोड़ना, तप करना, दान देना आदि। 4. उन विकारों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जैसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, हानि, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हैं। उनसे निवृत्त होने के उपाय खोजे जावें। 6. निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना में स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। हमारे अन्दर साधारणतया जो अवगुण पाये जाते हैं उनमें से कुछ से निवृत्ति पाने के लिये कुछ सूत्र यहाँ दिये गये हैं जिनका नित्य दिन में कई बार चिंतन व स्वाध्याय किया जावे।

अलग हूँ।" फिर शरीर के किसी भाग को छू कर उसमें व्याप्त सूक्ष्म चेतना की अनुभूति करते हुए सोचिये–"इस शरीर में यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मैं (आत्मा) हूँ।" कुछ समय तक इस चेतना की एकाग्रतापूर्वक अनुभूति करते हुए चिंतन करते रहिये–"यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मैं हूँ।"

मनोविज्ञान बताता है कि मनुष्य जिस विचार को बार-बार दोहराता है वह विचार उसके मन में स्थायी रूप से जम जाता है। वह स्थायी संस्कार बन जाता है। वह अवचेतन मन में उतर जाता है और साधक के जीवन में आचरण का अंग बन जाता है।

प्रारम्भ में देहात्म-भेद में श्रद्धा नहीं होने वाले व्यक्ति भी यदि इस साधना में कुछ महीनों तक लगे रहें तो मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार उनमें श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी।

इसी प्रकार इस मानव देह में व्याप्त संवेदनशीलता, शक्ति, जीवन व अन्य गुणों की अनुभूति द्वारा आत्मा को अर्थात् स्वयं को जानें, समझें व पहिचानें। स्वयं के स्वरूप एवं शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करें जिससे धीरे-धीरे देहासक्ति घटे और आत्मा का विकास हो सके।

जिस प्रकार गुणों के चिंतन से सिद्धों का रूपातीत ध्यान किया जाता है उसी प्रकार ज्ञान, सुख, अगुरुलघुत्व अपने शरीर प्रमाण अपनी अवगाहना आदि के चिंतन द्वारा आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

स्वयं को कर्म मुक्त मानकर, कल्पना द्वारा लोक के अग्रभाग में स्थित मानकर, सिद्धों की भाँति स्वयं का भी सिद्ध रूप में ध्यान किया जा सकता है।

2. कल्पना कीजिये कि आपके सामने आपका कोई मित्र या कोई मनुष्य बैठा है। आप उसके शरीर में व्याप्त, किन्तु उसके शरीर से भिन्न उसकी आत्मा की कल्पना कीजिये। चिंतन कीजिये–"इस मनुष्य में चेतना है, संवेदना है, शक्ति है, ज्ञान है, जीवन है, वही इसकी आत्मा है। मूलतः इस प्राणी की आत्मा और सिद्धों की आत्मा समान है। कर्म-मुक्त होने पर यह भी सिद्ध बन सकेगा।" आप उसके शरीर का, उसके दोषों का चिंतन नहीं करें। किन्तु उसके आत्म तत्त्व का चिंतन करें। इससे दो लाभ होंगे। प्रथम देहात्म भेद श्रद्धा बढ़ेगी। दूसरे, उससे राग-द्वेष की संभावना घटेगी। इस चिंतन में दोनों का ही लाभ होगा।

यहाँ इस बात का ध्यान रखें कि पुरुष, पुरुषों के शरीर में और स्त्रियाँ, स्त्रियों के शरीर में आत्मा के अस्तित्व का चिंतन करें।

3. पशु-पक्षियों के शरीर में आत्म तत्त्व का चिंतन करने से उनके प्रति आप में दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीड़ों-मकोड़ों में आत्म तत्त्व का चिंतन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियों की अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

4. पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एवं वायुकाय में भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिंसा से बच सकेगा।

5. आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है–"इस शरीर में संवेदनशीला है वही मैं (आत्मा) हूँ।"

6. इस शरीर में जो क्रिया-शक्ति है वही मैं हूँ।

7. इस शरीर का संचालक मैं ही हूँ।

8. इस शरीर में जो जीवन है वही मैं हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, वेकार हो जाता है।

9. जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी है, चिंतन के साथ-साथ जिसमें ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भंडार मैं हूँ।

10. जो स्वयं का ध्यान करते हुए स्वयं में लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही मैं (आत्मा) हूँ।

11. आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, देह से मैं भिन्न हूँ।
कर्म मुक्त होने पर, मैं सिद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ।

विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भॉति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारों को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमें 1. अपने अवगुणों की सूची बनाई जावे। 2. उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3. किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये मीठा या नमक छोडना, तप करना, दान देना आदि। 4. उन विकारों के बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जैसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, हानि, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हैं। उनसे निवृत्त होने के उपाय खोजे जावें। 6. निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना मे स्वाध्याय का प्रमुख स्थान है। हमारे अन्दर साधारणतया जो अवगुण पाये जाते हैं उनमें से कुछ से निवृत्ति पाने के लिये कुछ सूत्र यहां दिये गये है जिनका नित्य दिन में कई बार चिंतन व स्वाध्याय किया जावे।

स्वाध्याय सूत्र

1. क्रोध–चोट, रोग, गरीबी और कष्ट को अपने पाप-कर्मों का फल मानो। दुःख में समता रखते हुए दुःख को पाप-कर्म काटने की दवा मानो। उसमें निमित्त बनने वाले प्राणी को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो। इससे दुःख चेतना और क्रोध से बचो।

2. दुर्भावना–दूसरों को दुःख देने का विचार करने वाला और दूसरों को दुःख में देखकर खुश होने वाला और केवल दुर्भावना के कारण ही भयंकर नरक गति के कर्मों का बंध करता है। दुर्भावना की निवृत्ति के लिये हमेशा दस-बीस मिनट इस सूत्र को दोहराया जावे–"सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।"

3. परिवार-मोह–किसी प्राणी को उसके पाप-कर्म-फल-भोग से तीर्थंकर भी नहीं बचा सकते। परिवार बेचारा क्या करे ?

4. सुख चेतना–भौतिक सुख और काम वासना सुख नहीं है, सुखाभास है। सभी शारीरिक सुख प्रारम्भ से अंत तक दुःखों से भरे हैं।

"खणमेत सोक्खा, बहुकाल दुक्खा।"

"थोड़े समय का सुख, बहुत समय का दुःख।"

5. इच्छा–यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुख-सम्पत्ति की वर्षा होने लगती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा करने पर और कठोर पुरुषार्थ करने पर भी सुख नहीं मिलता। फिर इच्छा-निरोध-तप करके कर्म क्यों नहीं काटते ?

6. अहं–एक प्राणी को भी तुम उसके पाप-कर्म-फल-भोग से नहीं बचा सकते। फिर शक्ति का अहंकार क्यों करते हो ?

अपने निकाचित कर्मों को तीर्थंकर भी उन्हें भोगे बिना कठोर तप से भी नहीं काट सकते। तुम अपनी शक्ति का अहंकार क्यों करते हो ? तुम्हारे विनाशकाल में तुम्हारी ही बुद्धि तुम्हारा विनाश कर देती है। फिर बुद्धि का अहंकार क्यों करते हो ?

7. संग्रह–धन, सम्पत्ति, परिग्रह आदि का संग्रह मत करो। इनको दान, पुण्य, परमार्थ, धर्मार्थ में दो। जो दान में दोगे वही तुम्हारे साथ जावेगा और पर-भव में तुम्हें मिलेगा।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, बिच्छु, छिपकली, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, कौवा, भूत, प्रेत आदि बनकर यहीं

मंडराते रहोगे और दुःख पावोगे। दान दो, दान दो, दान दो, संग्रह मत करो, दान दो।

8. विकथा–दूसरे लोगों की बातों की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषों का कथन, श्रवण, दर्शन, चिंतन, दुनिया भर को स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपातपूर्ण गन्दी राजनीति आदि की बातों के सच्चे-झूठे समाचार, लेख, भाषण एवं आलोचनाओं को पढ़ना और उनके संबंध में राग-द्वेषात्मक विचारों में पड़ना विकथा अर्थात् व्यर्थ की कथा है। यह भाव हिंसा है, अनर्थ दण्ड है, प्रमाद है, असत्य आचरण है। इससे बचने का साधारण उपाय है–मौन और मित-भाषण (कम बोलना) और वास्तविक अचूक उपाय है सत्संगति, सत्साहित्य का पढ़ना, स्वाध्याय, आत्म-चिंतन, आत्म-ध्यान एवं निस्वार्थ निष्काम शुद्ध पर-सेवा में लगे रहना। विकथा भयंकर मानसिक रोग है, इससे बचिये, बचिये, बचिये।

मुनि गजसुकुमाल आदि के गुणों का चिंतन कथन विकथा नहीं है। यह गुणानुराग है, प्रमोद भावना है, कर्मो की निर्जरा है और धर्मध्यान है।

9. शील-पालन–सेठ सुदर्शन की शील रक्षा की और विजय सेठ और विजया सेठानी के अखंडित शील-पालन की कथा का श्रवण कथन, अध्ययन, अनुमोदन एवं ध्यान करने से उत्पन्न होने वाली शील तरंगों से दृढ़ बनी शील-भावना को संसार की कोई भी शक्ति खंडित करने में समर्थ नहीं है।

10. "शील, शील, शील" की ध्वनि से, जप से, ध्यान से शील के पुद्गल हमारे पास एकत्रित होकर हमें शील पालन में दृढ़ बनाते हैं।

11. "समता, समता, समता" की ध्वनि, जप व ध्यान से समता के सूक्ष्म पुद्गल आकर हमें समता पालन में दृढ़ बनाते हैं।

12. सत्य–साधारण मनुष्य से देवता में, देवता से तपस्वी में, तपस्वी से सत्यवादी में अधिक शक्ति होती है। सत्य में हजार हाथियों का बल होता है। सत्यवादी की देवता भी सहायता करते हैं।

13. देहासक्ति हटाने का सूत्र–यह शरीर मेरा नहीं है। यह नाशवान है। यह रोगों का घर है। यह दुःखों की खान है।

14. परिवार मोह हटाने का सूत्र–जब पुण्य तुम्हारे पास नहीं, परिवार तुम्हारा क्या करे ?

अटल सत्य

इस संसार का कोई भी मनुष्य निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि जो कुछ होना है वह अनादिकाल से नियत है। यदि सब कुछ नियत है तो उस नियत काम के हो जाने के बाद फिर संसार में कुछ रहेगा ही नहीं। अनेकों घटनाएँ नियत नहीं हैं। वे अनेक प्रकार से हमारी जिन्दगी में घटती रहती हैं तथा संसार को बढ़ाती रहती है। इसी से संसार चलता रहता है। वास्तव में मनुष्य को व्यवहारवादी होना चाहिए। व्यवहारवाद ही संसार है और यही अनुकम्पा की जननी है। यही धर्म यही अटल सत्य है।

मेरी लिखी हुई कषाय-मुक्ति की पुस्तकों को प्रकाशित करने तथा प्रभावना आदि के रूप में बँटवाने की सभी सज्जनों को छूट है।

— प्रतापचन्द भूरा